आरती
साहिब सतगुरू परमहँस जी की

जय सतगुरू देवा – दाता जय सतगुरू देवा
सब कुछ तुम पर अर्पण – 2, करूं हर पल सेवा

1 जो ध्यावे सुख पावे , दुख मिटे तन का – साहिबा –
वचन सुनत तम नासे – 2, सब संशय मन का – साहिबा –
2 मात पिता तुम मेरे, शरण पड़ी तुमरे – साहिबा –
तुम बिन और ना दूजा – 2, आस करूं मैं जिसकी – साहिबा –
3 गुरू चरणामृत निर्मल, सब दोषक हारी – साहिबा –
सब्द सुनत भ्रम नासे – 2, सब बंधन टारे – साहिबा –
4 तन मन धन सब अर्पण, गुरू चरणन कीजे – साहिबा –
सतगुरू देव परम पद – 2, मौक्ष गति लीजे – साहिबा –
5 काम क्रौध मद्य लौभ, तृष्णा अति भारी – साहिबा –
सुरत सब्द को देकर, सार सब्द को देकर, संत सब संहारें – साहिबा –
6 ध्यानी योगी ज्ञानी, सब हरि गुण गावें – साहिबा –
सब का सार बता कर – 2, संत मार्ग लावें – साहिबा –
7 मन माया निज घेरा, जीव बहे सारे – साहिबा –
सुरत सब्द को देकर, सुरति जहाज चढ़ा कर, संत पल में तारें – साहिबा –
8 संत बिन दान ना होवे, साहिब ब्ख़ान करें – साहिबा –
संत बिन ज्ञान ना होवे, संत बिन मौक्ष ना होवे, यत्न बहुत कीने – साहिबा –
9 दीन बन्धु दुख हर्ता, तुम रक्षक मेरे – साहिबा –
विषय विकार मिटाओ – 2, तुम दर्शक मेरे – साहिबा –
10 सुरत कमल के दाता, तुम रक्षक मेरे – साहिबा –
मौक्ष पद दिलाओ – 2 , तुम कर्ता मेरे – साहिबा –

जय सतगुरू देवा – दाता जय सतगुरू देवा
सब कुछ तुम पर अर्पण – 2, करूं हर पल सेवा

—0—

सत्तगुरू सुरति महिमां

चरण कमल चित्र

सतगुरू साहिब '' वे नाम परमहंस जी''
के चरण कमलों में साधकों के श्रद्धा सुमन

सतगुरू सुरति ज्ञान भण्डार संग्रह

साहिब जी कौटि कौटि प्रणाम
अपने चरणों में दो स्थान

सतगुरू सतनाम जी

अमृत सार

हे जगत की प्यारी जीव आत्माओं,

आप तन और मन नहीं हो, आप सब तो मूलतः साहिब सत्तपुरूष जी के अंश हंसा ही हो । हे हंसो, हम एक ही मूल से आए हैं और उसी मूल में जा समाना ही (मौक्ष) मानव जीवन का मात्र एक लक्षय है । यह महान ग्रंथ सब हंसों के लिए, सब हंसों के द्वारा सुरति सूं लिखा गया और सब हंसों को सुरति से ही समर्पित किया गया है। मूलतः यह ग्रन्थ किसी एक संप्रदाए, मत्त व धर्म का ना हो के सभी जीव आत्माओं के कल्याण हेतु समर्पित है ।आज के इस आधुनिक युग में मानव समाज ने अत्यधिक भौतिक उन्नति तो कर ली, कहने को वह उन्नतशील मानव समाज ही का हिस्सा हो गया । परन्तु आज के समाज में मानव ने अपना संपूर्ण पतन ही कर डाला। भौतिकता की चकाचौंध में, 'मैं' के अहम में स्वार्थी बना मानव सब को संशय भरी दृष्टि् से देखता है। मां बाप और बच्चों के नातों में संशय, भाई बन्धु व मित्र सम्बधियों के नातों में संशय, यहां तक कि अपने जीवन साथी के साथ दिखावे का प्रेम, पर भीतर संशय ही संशय। इस संशय से भरी ज़िन्दगी में प्रेम प्रीत की भावना ही लुप्त हो गई।

यही स्वार्थ व संशय से भरा मानव समाज पूर्ण सत्तगुरू की शरण में आकर भी संशय और अहम को नहीं छोड़ता। अक्सर स्वार्थ सिद्धी करने में ही लगा रहता है तभी तो वह बारम्बार जन्म लेता है पर मौक्ष को नहीं पाता । कोई बिरला ही स्वार्थ रहित होकर संपूर्ण सत्तगुरू की शरण में आकर अपने मूल (मोक्ष) को पाता है। मानव की इस दुख भरी जन्म मरन की अवस्था से ना उभरने के कारण संपूर्ण संत्त समाज चिंतित व व्यथित और उनके उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहता है। जगत में संशय और स्वार्थ ना छोड़ना ही मानव के कष्टकारी आवागमण का कारण बनता है।

—0—

भुमिका

प्यारे जगत वासी पाठको, इस शब्दकौष को कलमबद्ध करने के पीछे अभिप्रायः यह है कि सभी मानव मोक्ष पायें, माया से मुक्त होकर मूल में जा समायें। वर्तमान के पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी जाने पर ही हम मानव त्रिलोकी माया भक्तियों के भ्रम का एहसास कर पाऐ। जीवन में अधिकांश मनुष्यों ने गुरू धारण किये हैं, मानव समाज में जिन्होंने गुरू नहीं धारे वे भी सर्गुण या निर्गुण किसी ना किसी ईष्ट की पुजा–भक्ति–वंदनाऐं तो करते ही आ रहे हैं।

मानव अधिकांशता कर्मयोगी, साधक, भक्त व पूजा पाठी होता हुआ भी काम–क्रौध, विषय–वासना से मुक्त नहीं हो पा रहा। जीवन में स्थिरता, शांति, ठहराव आये, इस सब के विपरीत जिस किसी ने भी गुरू धारे या भक्ति की, वह साधारण मनुष्य से भी अधिक असंयमी, अहमी, स्वार्थी व द्वैषी होता जा रहा है। ऐसा इसलिए है कि मानव, जगत में माईक लगा कर ज़ोर शौर से अज़ानें देना, भजन गाना, जगराते व झांकियों की प्रथा (दिखावे की भक्ति) व ऐसी कंई अन्य धारणाओं में ऊलझा हुआ है। जो चन्द मनुष्य ध्यान लगाते भी हैं वे भी सर्वश्रेष्ठ होने के अहम से युक्त हैं, अर्थात जगत की भौतिक–भक्तियां तो भक्ति है ही नहीं बल्कि केवल दिखावा भर ही है। शारीरिक अंगों से परिश्रम (योगासन), मुख से बोलना (जपना), मन से ध्याना, शरीर, मुख व मन तीनों ही माया, देवी–देव तथा निराकार (ऊँ, खुदा, अल्लाह, ईश्वर, रब, वाहे–गुरू, भगवान तथा निरंकार सबै) सभी माया ही है, माया से माया की भक्ति करने से माया ही से मुक्ति कैसे संभव है, इन भक्तियों से तो भौतिक जगत माया अर्थात काम, क्रौध, लोभ व तृष्णा की वृद्धि होती है।

तो फिर भक्ति कैसी और किसकी की जानी चाहिए ? मुख व मन से भक्ति माया जाल उलझाव है। भक्ति तो काया भीतर चेतन सत्ता अर्थात आत्मां द्वारा परमात्मां साहिब सतपुरूष जी की की जानी चाहिए। आत्मां तो सुरति है और साहिब सतपुरूष जी पूर्णतः मूल सुरति पुण्झ हैं। आत्मां की भाषा सुरति है, संसारिक भाषा तथा शब्दों का पसार ही तो जगत मोहिनी माया है, अति शाब्दिक ज्ञानी तो अहम से युक्त होने के कारण भक्ति से कौसों दूर हो जाते हैं, कर्म–ईंद्रियां व मन तो शरीर अर्थात माया है। सुरति क्या है ? कैसे चेतन होती है ? और इससे भक्ति कैसे संभव हो सकती है ? वर्तमान युग के साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी आये बिन सुरति ज्ञान संभव ही नहीं चाहे कोई कितना भी यत्न प्रयन्न क्युं ना कर ले।

हे प्यारी आत्मांओ, जग हंसाथियो, सारा जगत ही तो भ्रम है, पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी आओ, निज हंस रूप को जानो, माया मुक्त हो कर हंसा बनो और अपने मूल साहिब सतपुरूष जी(सतलोक) को पा जाओ।

–0–

संदेश

हे साहिब जी की प्यारी हंस–आत्मांओ, सतगुरू सतनाम जी !

इस शब्दकोष में ये आलोकिक भाव–विचार जीव आत्मांओं को प्रेम–भाव व सत्त–सुरति संदेश देना कि माया मुक्त हो सब हंसा बनें, इसी एक मात्र भाव से कलमबद्ध किये गये हैं। ये सारे के सारे लेखनी–बद्ध–भाव व विचार साहिब ''वे नाम परमहंस जी'' के अमृतमयी प्रवचनों तथा उनके सानिध्य से व गौष्टि्ठयों से ग्रहन कर संक्षिप्त रूप में शब्दों में पिरोये हैं। अधिकांशतः कलमबद्ध विचार तो सतपुरूष रूप पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के मुखारबिंद से प्रकट हुए विचारों में से हैं। लगभग तीस प्रतिशत विचार व भाव सतगुरू जी द्वारा सुरति से अंताकरण में संदेश व भावों के रूप में प्रकट किए गये, जिन्हें भी इस पुस्तक में पाठकों की जिज्ञासा शांत करने हेतु कलमबद्ध किया गया है।

सहज सत्तमार्ग के वर्तमान काल के पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की सुरति से भरपूर अमृतमयी वाणी श्रवन करने से ही जीव आत्मां माया जाल से मुक्त हो मोक्ष पथ पर अग्रसित होती है। सतगुरू जी की वाणी अनुसार ये शब्द ज्ञान ही तो जगत में माया रूपी भ्रम मानव के भीतर उपझा रहे हैं। शब्दों में पिरोया ज्ञान ही तो मानव के भौतिक व आध्यात्मिक विनाष के पतन का एकमात्र कारण है। 52 अक्षरों (सब्द) से ही संसार में त्रिलोकी महां काल विस्तार है, इन 52 अक्षरों से परे आलोकिक शब्द 'ऊँ' ही 'ईक औंकार' निराकार है। सब शब्दों व भाषा से परे सुरति ही तो हंसा (आत्मां–माया=हंसा) है व 'हंसा' मूल–साहिब–सतपुरूष जी ही सत्तलोक हैं।

बिन पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी आए, मानव संसारी प्रवृति से सुरतिवान नहीं बन सकता ! बिन सुरति मोक्ष कहां ?

हे जगत वासी मानव साथियो आओ, सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी आओ ।

आओ सभी 'हंसा' मिल सुरति–लोक सतलोक चलें !

–0–

मूल सार

हे प्यारी जीवात्माओं (माया लिप्त हंसो),

हम सब प्रायः त्रिलोकि की भ्रमित कर देने वाली माया (सुख साधन) ईकट्ठी करने व भौगने में ही अनमोल जीवन काल व्यतीत कर देते हैं। हमने मानव जन्म क्या माया में रमने व समय व्यतीत करके मर जाने के लिए पाया है ? अथ्वा क्या जग में डाक्टर, इण्जिनियर, वैज्ञानिक, नेता, व्योपारी बनने और सुख साधन कमाने व भौगने के लिए ये इसे पाया है ? क्या केवल नाम ख़्याति जग में पाना ही हमारा एक मात्र लक्ष्य है ?

हे मूड़मति मानवो ! एक साधारण से साधारण मानव भी जग में जानता है कि ये जग चलोचली का मेला है, अथ्वा मानव–शरीर इस धरा पर खाली हाथ, नग्न अवस्था में ही पैदा होता है व यहां जो भी निज कमाई व सारी चेष्टठाओं से ईक्कट्ठी की गई धन–संपदा, भौतिक संसाधनों और रिश्ते नातों को यहीं पे तज कर खाली हाथ ही लौटना है। हमारे पूर्वजों ने भी यही किया, हमारे जीते जी यही हुआ, हम भी यही तो कर रहे हैं और हमारे चले जाने के उपरांत भी यही क्रम निरंतर चलता रहेगा। जगत में चेतना धारी अर्थात आत्म युक्त जीव काया ही निरंतर भौतिक जगत क्रमः (आवागमण, सुख दुख) का अंग बनी रहती है व इसे चलाऐमान रखती है। बिना चेतनता (आत्म सुरति) धरा पर सब अनुकूलता युक्त वातावरण व संसाधन होने पर भी काया कुछ भी भौगने व क्रिया करने की सामर्थता नहीं रखती।

भाई मेरे, ज़रा गौर तो करें ! सारी की सारी त्रिलोकि, सारे के सारे ईष्ट और आराध्य मिल कर भी काया को क्रियाशील नहीं कर सकते, चाहे कितने भी यत्न प्रयत्न व संसाधनों का प्रयोग क्यों ना कर लें। अर्थात ये चेतना (आत्मां) ही जगत में सर्वश्रेष्ठ व सर्वोपरि है। इस आत्म पर त्रिलोकि सृजनहार निरंकार का वश नहीं चलता, तभी तो ये त्रिलोकि का भ्रमित कर देने वाला सम्मोहन से युक्त मोहिणी माया का पसार (21 लोक विस्तार, अण्ड मण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड, सात द्वीप नौ खण्ड, 33 कौटि देवी देव, 84 लाख योनियां, बाहरमुखि भौतिक जगत विस्तार के संग–संग ये सारा विस्तार वैसा ही मानव काया पिण्ड के भीतर भी रच डाला) रच डाला। कहने का अभिप्रायः यह है कि मानव बाहरमुखि भौतिक जगत माया चकाचौंध में तो उलझा ही है, इसके संग–संग मानव काया के भीतर भी भौतिकता जैसा त्रिलोक ही रच दिया गया है अर्थात मानव बाहर से तो भ्रमित है ही परन्तु भीतर से भी भ्रमित हो गया है।

इतने पर भी निरंकार भगवान जी कहां रूके ! उन्होंने इस चेतनता (आत्म सुरति) को वशिभूत करने के लिए, सभी जीव आत्मांओं को अंदर बाहर से भ्रमित करने हेतु, जीव काया के भीतर अंतःकरण में ही स्वंय को मन रूप में स्थापित कर लिया।

माना, निरंकार भगवान ने ऐसी मोहिणी माया रची कि (सारे के सारे हंसा) जीवात्मां निज सत्ता व अपनी मूल सत्ता को भूल कर त्रिलोकि माया में मग्न हो गई। एक महां भंयकर अनर्थकारी मानव प्रवृति तो देखें ज़रा ! सभी जानते व कहते हैं इस माया सूं मुक्त होना ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, परन्तु सारा जीवन भर का समय माया कमाने, भौगने व अंततः इसी माया की तृष्णा लिए वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। काया से मुक्त होने पर भी आत्मां तृष्णा नहीं तजती जिस कारण फिर से काया धारती है अर्थात जन्म लेती है। सर्वदा ज्ञात रहे आत्म–सत्ता तो निरंकार–सत्ता से अति श्रेष्ठ है, बिन आत्म मौन स्वीकृति के निराकार भगवान अपनी मन मरजी नहीं चला सकते। मृत्यु उपरांत आत्मां शरीर से मुक्त होने पर कुछ पल तक भी आशा तृष्णा नहीं तजती, इसी कारण आत्मां मुक्त नहीं हो पाती और अंततः आशा–तृष्णा वशिभूत अपने मृत्यु पूर्व के संबधियों के पास लोट आती है। चाहे उसे मानव शरीर या किसी भी जीव का शरीर क्युं ना मिले, आत्मां निज दुर्दशा के लिए स्वंय ही दोषी है। आत्म किसी भी शरीर को धारे, वह जिन कारणों से मोह ममता में खिंची चली आती है, उन्हें भूल कर नई काया में रम कर, पिछले सम्बंधों को भूल कर अज्ञानता वश नये शरीर के रिश्ते निभाने लगती है।

उदाहरण के तौर पर एक आत्मां मानव शरीर तज मृत्यु उपरांत तीव्र तृष्णा कारण छिपकली का शरीर धारण कर अपने पूर्व सबंधियों के पास लोट आती हैं। एक विचित्र विस्मयकारी विडंम्बना देखें जिनकी तृष्णां में ये जीवात्मां नया जन्म धारण किया, अब वही जीवात्मां पूर्व जन्म के मानवों को अपना ना समझ कर छिपकली परिवार के रिश्ते नाते निभाने में रम जाती है।

देखा ! यह कैसा माया जाल जंजाल उलझाव है !
ये क्रम प्रथम सृष्टि रचना से लेकर आज तक चलता आ रहा है।

जगत में सारी की सारी पूजा, आराधना, सजदे करने वाला मानव, अपने–अपने धर्म व मत अनुसार, अपने भौतिक शरीर तथा भौतिक संसाधनों से अपने–अपने ईष्टों को भजने, प्रसन्न करने व रिझाने में लगा है। भौतिक जगत तो माया रूपी निरंकार पसार है, बाहरमुखि पूजा तो निरंकार तक ही पहुंचाती है। एक अदभुत विचित्र विडंबना है कि जगत में कुछ कथा वाचक, गुरूजन व विध्वजन भौतिकता को तज कर, मन की गहराई से ध्यान व जप तप करने तथा अपने ईष्ट को मन में बसाने की बाते कहते हैं। अरे मेरे भाई ! मन भी तो निरंकार रूप है, सारे के सारे निर्गुण ईष्ट भी तो निराकार भगवान के ही रूप हैं। ऐसी सभी प्रकार की भक्तियां, प्रार्थनाऐं, सजदे व बंदगियां जो घर के बुजुर्गों व दूसरों की देखा देखी में जगत कर रहा है, वह भी तो निरंकार के किसी न किसी रूप की ही पूजा

है। भौतिक शरीर व भौतिक संसाधनों से की गई पूजा सर्गुण कहलाती है तथा मन से ध्यान द्वारा की गई पूजा भक्ति निर्गुण भक्ति कहलाती है। माया रूपी शरीर, माया रूपी ईष्ट और माया रूपी संसाधनों के प्रयोग से माया रूपी काल–विक्राल महाकाल निरंकार की यह प्रोक्ष या अप्रोक्ष पूजा है। इन से माया रूपी संसारिक फल जैसे मन–मोहक मज़े वाले स्वर्ग व ऋद्धियां–सिद्धियां इत्यादि तो मिल सकते हैं, पर पूर्ण मोक्ष अथ्वा आवागमण से मुक्ति संभव ही नहीं। तो प्रशन उठता है कि भक्ति क्युं और कैसे करें जिससे मानव जीव मोक्ष को पा सके ? ऐसा कोन सा मार्ग है जिस पर जीव चल कर मोक्ष पा सकता है अर्थात आवागमण से मुक्त हो सकता है ?

जगत में सर्गुण भक्ति करने वालों की भरमार है, इन सर्गुण भक्ति करने वालों के संग–संग निर्गुण भक्ति करने वालों के ईष्ट् भी निराकार के ही रूप होते हैं। जगत में बहुत से पैग़म्बर, अवतार तथा धर्म के प्रचार करने वाले हमेशा से धरा पर विद्यमान रहे हैं और सदा ही रहेंगे। आध्यात्म का प्रचार करने वाले प्रचारक गुरू, संतजन, योगी यति, सन्यासी व भद्रजन पूजनीय और वंदनीय तो हैं ही, ये मानव तन धारी अपने निज भक्ति अनुभव के कारण ही इस उच्च अवस्था को प्राप्त कर पाते हैं। वे अपने निज जीवन की कठिनाईयों को सहते हुए अपने अनुभव के अनुसार ही निरंकार की सत्ता का गुणगान करते हैं। दूसरी श्रेणी में रहनुमा, पैग़म्बर और अवतार आते हैं। जो किसी भी ईष्ट् का रूप होते हैं, इसी कारण ये साधन संपन्न व सामर्थशाली अवस्था में धरती पर अवतरित होते हैं। दूसरी श्रेणी के रहनुमा जीवन में मर्यादावान, पथ प्रदर्शक व उच्चतम अवस्था से युक्त होते हैं क्योंकि ये मायाधारी ईष्टों के रूप होने के कारण सामर्थशाली होते हैं। इन्हें अपने जीवन में घौर विपत्तियों को नहीं झेलना पड़ता, परन्तु पहली श्रेणी वालों को माया के झंझटों को झेलते हुए भी स्वंय को उच्च अवस्था तक लाना पड़ता है, परन्तु याद रहे कि ये अवतार पैगम्बर नहीं होते। एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि अवतार अथ्वा पैग़म्बर कभी भी दयनीय अवस्था में इस संसार में नहीं आते। संसार में बहुत से गुरू, प्रचारक, योगी यति, सन्यासी व भद्रजनों का स्थान तो ईष्टों से भी बड़कर है और इनकी भी जगत में पूजा की जाती है। इनकी महान अवस्था का ब्खान ग्रंथों में इस प्रकार किया गया है :–

''गुरू गोविंद दोनों खड़े, किस के लागूं पांव।
गुरू बड़े गोविंद से, जिन गोविंद दियो मिलाये।।''

अवतार, पैग़म्बर, ईष्टों का रूप होने के कारण सर्व–सामर्थ होते हैं तथा वे अपने किसी निर्धारित लक्ष्य व उद्धेष्य की पूर्ती हेतु अवतरित होते हैं। यूं तो जगत में अनगिनत ईष्टों के अवतार अवतरित हुए परन्तु सभी देवी–देवों और ईष्टों के अधिष्टा स्वंय 'नारायण' भगवान निरंकार (ॐ) हर सृष्टि्–सृजन उपरांत, 'राम और कृष्ण' के रूप में ही अवतरित होते हैं। (पंडितों और कथा वाचकों ने अल्प ज्ञान के कारण 'नारायण' की व्याख्या 'विष्णु जी' से जोड़ दी, जो सर्वथा अनुचित है। सत्य तो यह है कि 'निरंकार भगवान' को 'नारायण' नाम से भी संबोधित किया जाता है।) भगवान राम द्वारा स्थापित मर्यादाओं ने उस युग से लेके आज तक के मानव को उच्च मर्यादाओं में बांध के रखा है। यह मर्यादायें जितनी उस काल में प्रासंगिक थी, आज भी हैं और सदा आगे भी हर काल में प्रासंगिक रहेंगी। ठीक वैसे ही भगवान 'श्री कृष्ण जी' द्वारा कर्मयोगी होने का उपदेश भी हर काल में यथा स्थिति ऐसे ही प्रासंगिक रहता है। निराकार भगवान का गुणगान यूं तो

जगत गुरू संतजन और कथा वाचक सदा से करते रहे हैं जिससे मानव अपने–अपने ईष्टों को प्रसन्न कर के अपने स्वार्थ सिद्धि को पूरा करते रहे हैं। इस स्वार्थ सिद्धि के वशिभूत वे कभी भी मोक्ष पथ की और अग्रसित ही नहीं हो पाते। स्वंय निराकार के अवतार भगवान 'श्री राम जी' ने 'योग–वशिष्ठ' ग्रंथ में मुक्ति हेतु, फल की ईच्छा–रहित भाव से कर्म करने व विधि के विधान के अधीन हो कर निष्काम कर्म करने का उपदेश जगत को दिया। ठीक वैसे ही भगवान 'श्री कृष्ण जी' ने गीता–उपदेश में कर्मयोगी बनने व स्थित–प्रज्ञ होने और कर्म के कर्तापन से विमुख रह कर मुक्ति मार्ग का उपदेश दिया।

जगत में निरंकार भक्ति के ये दो उपरोक्त उच्चतम ग्रंथ निरंकार दायरे के अल्प 'मुक्ति–मार्ग' को तो सीधे तौर पर परिभाषित करते हैं परन्तु पूर्ण मोक्ष के लिए तो केवल ढके छुपे संकेत ही दे पाये हैं। जगत जीवों द्वारा स्वार्थ तजा ही नहीं जा सकता क्योंकि स्वार्थ ही तो भ्रमित कर देने वाला माया जाल है। जीव की काया भी माया, मन भी माया, जगत में प्रयोग किये जाने वाले साधन भी माया और सभी देवी–देव व ईष्ट भी निरंकार की ही माया हैं। माया रूपी मन व माया से युक्त संसाधनों से, माया रूपी देवी–देव व ईष्टों की ही भक्ति कर के माया से रहित इन अवस्थाओं को प्राप्त करना संभव ही नहीं है। जीवात्मां तो कई प्रलयों से निरंतर सम्मोहनी माया की गहरी तंद्रा वृतियों में लिप्त हुआ अपने आप को काया ही समझ बैठा है। बिन सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँस कृपा के जीवात्मां तो इस तंद्रा वृति नींद से मुक्त हो ही नहीं सकती।

जगत में निरंकार रूपी देवी–देवों, ईष्टों–आराध्यों की पूजा, वंदनाओं, सज्जदों से विलासता भरे सुख साधनों से युक्त स्वर्ग व सुन्न लोक तो प्राप्त किये जा सकते हैं, परन्तु निरंकार रूपी मन से जीव मुक्त नहीं हो पाते। ये मन तृष्णा व वासना में लिप्त होके जीव की अवोगति का कारण बनता है जिससे जीवात्मां स्वर्ग भौग के उपरांत पुनः जन्म मरन में लोट आती है अर्थात निरंकार के दायरे में पूर्ण मोक्ष संभव ही नहीं होता। अल्प मुक्तियां जैसे स्वर्ग व सुन्न लोकों में जीव लम्बे काल तक तो रह सकता है परन्तु श्रेष्ठ कर्मों के फल की समाप्ति उपरांत जीवात्मां को मृत्यु लोक में पुनः लोटना ही पड़ता है।

बिन सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँस की शरणी आये जीव मोक्ष मार्ग पे अग्रसित हो ही नहीं सकता। जहां निरंकार भक्ति एक ओर मुख व मन से ध्यान द्वारा की जाती है वहीं दूसरी ओर सहज सतमार्ग भक्ति सतगुरू परमहँस कृपा से मुख, मन व निज काया से परे 'सुरति' द्वारा की जाती है। जहां निरंकार भक्ति के गुरू पहले से ही धर्म ग्रंथों में प्रचलित पंच शब्दों और ईष्टों के नामों को ही दीक्षा में प्रदान करते हैं, वहीं सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँस स्वयं अपने आप में 'पूर्ण साहिब सतपुरूष जी' रूप ही होते हैं तथा वे तो अपने शिष्यों को 'साहिब सतपुरूष जी' से प्रदत 'सब्द विदेह' ही सुरति द्वारा दीक्षा में प्रदान करते हैं। यह 'सब्द विदेह बोल भाषा से परे होता है और इसका कहीं भी किसी भी ग्रंथ में वर्णन तक नहीं मिलता। इस 'सार सब्द' विदेह दात में स्वंय 'साहिब सतपुरूष जी' का वास होता है। 'साहिब सतपुरूष जी' की सत्ता निरंकार दायरे से कहीं उच्चतर पूर्ण सत्ता है। हंसा (आत्मां–माया=हंसा) 'साहिब सतपुरूष जी' का ही निज सुरति अंश है, वह तो अज्ञानता वश निरंकार की मोहिनी माया में उलझा हुआ निज रूप को ही भुलाये बैठा है। जहां निरंकार भगवान अपने भक्तों को उनके आराध्यों, ईष्टों के

रूप में स्वंय दर्शन दे कर कृतार्थ करते हैं, वहीं सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँस अपने आप में 'साहिब सतपुरूष जी' ही होते हैं, तभी तो सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँसों को 'साहिब जी' कह के भी संबोधित किया जाता है।

बिन 'साहिब जी' (पूर्ण सतगुरू परमहँस) की शरणी आये पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष संभव ही नहीं ! चाहे जगत में निज को भूली जीवात्मायें माया में लिप्त होने के कारण पूर्ण मोक्ष की ओर अग्रसित नहीं हो पाती परन्तु जगत में ईक्का–दुक्का बिरले बड़भागी जन सतगुरू परमहँस जी की शरणी आकर सदा से इस मार्ग की ओर अग्रसित होते ही रहे हैं।

हे माया में भ्रमित हंसो ! माया मोह तजो, और वर्तमान के संपूर्ण संत शिरोमणि साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी में आओ। सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी आकर अपने मूल लक्ष्य मोक्ष को पाकर जीवन को सार्थक बनायें।

हे जीवात्मांओ, आप सभी से करबद्ध विनम्र निवेदन है कि :–

आओ सब मिल कर सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी चलें और मोक्ष को पा जायें ।

साहिब प्यारे हंसो :–

साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी में ही मिलता है निजधाम, इस धरा पर एक मात्र सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' ही हैं सतपुरूष रूप निजधाम !

सतगुरू सतनाम जी–सतगुरू सतनाम जी–सतगुरू सत्तनाम जी

–0–

साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी''
के चरणों में शत शत प्रणाम

महां काल चक्र

'वे नाम' कहें, आदि अंत का सृजनहारा परमपुरूष प्यारा।
वो ही शुरू वो ही मध्य वो ही अंत, उन्हीं से सब परिवारा।।

1 – द्वैत पसार

यह सारी त्रिलोकि निरंकार माया नगरी द्वैत पर आधारित है अर्थात हर क्रिया की प्रतिक्रिया या यूं कहें, 'जैसी करनी वैसी भरनी'। पाप है तो पुण्य, जड़ है तो चेतन, भूख प्यास तृष्णा है तो तृप्ति, दृष्य है तो अदृष्य भी, प्रचण्डता है तो शीतलता भी, क्रूर अभद्रता है तो सज्जनता व साधुवाद भी, काम, क्रोध, छल, कपट, वासना, व्यभचार, लोभ, दुष्टता, घृणा (नीच भाव) हैं तो शांति, त्याग, तप, ब्रह्मचार्य, दयालुता, सब्र, सहनशीलता, परहित–कार्य व वसुदेव कटुम्भ भाव भी है। ठीक ऐसे ही यह त्रिलोकि है तो सत्तलोक भी है। जहां द्वन्द, क्लेश, कर्म क्रिया फल रूपी त्रिलोकि है, वहां एकाग्रता–मय, शांतमय, ठहराव भरा सत्तलोक (हँस लोक) भी है। संक्षेप में कहें तो यह सारी की सारी त्रिलोकि द्वैत भाव को अपने में समोहे हुए है। सब की सब त्रिलोकि की गतिविधियां कर्म व प्रालब्ध पे आधारित हैं। सारी की सारी त्रिलोकि निरंकार की निज मोहनी माया रूपी हंसा को भरमाने हेतु रची गई है। ये विक्राल महांकाल रूपी भ्रमित कर देने वाली काल नगरी है। सुख ही सुख जगत में मिले, इस भाव से ही मानव तो हर कार्य करता है। पर सृष्टि् का द्वैत स्वभाव होने के कारण सुखों के संग संग मानव दुख भी पाता है। द्वैत ही इस त्रिलोकी में मन मोहनी माया भ्रम का मुख़्य स्तम्भ है

ऐसा भी नहीं कि मानव अपनी समर्थता से इस भयवाह विक्राल महांकाल पर सम्मोहन भरी मोहनी माया से पार ना पा सके। सारी की सारी त्रिलोकि बिन आत्म सुरति (चेतना) निर्जिव जड़ व बेजान है। यह सारा खेल भगवान निराकार ने आत्म को इस माया नगरी के भूल भुल्लेयां जाल में भरमाने हेतु रचा है।

मन ही सरूपी काल निरंजन, सबै रहा भरमाई।
हंसा तूं तो अमरलोक का, पड़ा काल वश आई।।

2 – त्रिलोक पति (महांकाल) आयु

इस माया नगरी की आयु सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहँसों की वाणी अनुसार 17 आयोजन कोड़ी (17,00,00,00,00,00,00,00,00,00,00,00,000) वर्ष काल है।

मानव गणित सैंकड़ों, हज़ार, लाख, करोड़, अरब, खरब, पदम, नील, संख्य, असंख्य, कोड़ी आयोजन उपरांत समाप्त हो जाती है। एक मानव की औस्त आयु केवल सौ वर्ष के लगभग है। 84 लाख योनियों में केवल मानव योनी ही कर्म करने को स्वतंत्र है। बाकी सभी योनियां मानव जन्म में मानव द्वारा किये कर्मों का फल भोगने हेतु भौग योनियां भर ही हैं। संत सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार कर्मों के भौग के लिए इस धरा के ईलावा ब्रह्मण्ड में 5500 और भी धराऐं और नक्षत्र हैं जहां जीवात्मां अपने मनुष्य जन्मों के कर्म फल अर्थात प्रालब्ध भौगने हेतु इस विशाल ब्रह्माण्ड में विचरण करता है। त्रिलोकि का यह काल पसारा केवल बस केवल हंसा को (आत्म–माया=हंसा) निजरूप व सामर्थ भूलने हेतु रचा गया महां शाहकार है।

सभी ऋषि, मुनि, साधु ,संत, कथा वाचक व विद्वान जन निरंकार दायरे के गुरूओं व सहज सतमार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों ने भी, बारम्बार ना मिलने के कारण इस मानव जन्म को अनमोल अति दुर्लभ कहा है। मानव जन्म की कद्र ना जानते हुए संसारी जन माया में फंसे, झूठे जग नातों व माया एकत्र करने हेतु अपने दुर्लभ जन्म को व्यर्थ में गंवा देता है। ना जाने कितने भंयकर कष्टों, तकलीफों व यातनाओं सहित चौरासी लाख योनियों की कष्ट भरी भूल भुलेईयों को भुगतने उपरांत मानव जन्म मिलता है। इस कारण हे सर्व सामर्थवान हंसा, हे मानव ! अपने जन्म को व्यर्थ माया में उलझे–उलझे ही मत गंवा। 'मै', 'मेरी' व जग अहम को तज कर निज अपने हंसा रूप को पाने के लिए सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणागत हो जा। वो ही तुझे अपनी निज सुरति आभा और अनुभव से अर्जित 'सार सब्द' दात प्रदान करके, इस जग के भवजल से पार हंसा रूप दे के निजधाम सतलोक पहुंचाऐंगे अर्थात तूं मोक्ष को पा आवागमण के कष्टों सूं मुक्त हो जाएगा। केवल, बस केवल सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस ही मानव का पूर्ण कल्याण कर सकते हैं। जगत गुरूओं की शरणी में स्वर्ग या अल्प काल की मुक्तियां तो मानव पा सकता है, पर पूर्ण मोक्ष तो सहज सतमार्ग के पूर्ण संतों व सतगुरू परमहंसों के सानिध्य व शरणी में ही मिलता है।

नोट :– सहज सतमार्ग के पूर्ण ज्ञान व जगत गुरूओं के मार्ग और सहज सत्त मार्ग के सत्तगुरू परमहँसों के बारे में पूर्ण ज्ञान हेतु संत शिरोमणि साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' द्वारा रचित अमृतमयी आलोकिक ग्रंथ ''अमर सागर'' को पढ़ें।

3 – अल्प मानव जीवन

हे मानव ! एक प्रलयः (कयामत) काल में जीवात्मां को केवल सात बार ही मानव जन्म मिलते हैं। प्रलयः काल का एक दिन, चार अरब बत्तिस करोड़ वर्ष का व इतने ही काल की अहोरात्री अर्थात निरंकार का एक दिन–रात होता है। निरंकार भगवान की शासन अवधि सत्रहं (17) आयोजन कौड़ी वर्ष काल है। मानव के सौ साल का जीवन निरंकार रूपी देवों का एक दिन के बराबर है, तभी तो वेदों में सौ वर्ष की मानव की आयु की कामना की गई है। (जीवेम शर्दा शतमः)।

मानव की सौ वर्ष तक स्वस्थ व जागरूक अवस्था में जीने की कामना की गई है। माना, आत्मां निरंकार रूपी मन माया के वशिभूत निज को भूली हुई है। निरंकार भगवान की इस महां क्रूर पर सोम्य, सम्मोहन व लुभावनी भरी त्रिलोकि में हंसा, निज को भूला हुआ माया में लिप्त 'आत्म' बन बैठा है। बात यही नहीं, मानव अपना आत्म रूप भी भूला हुआ निज को शरीर ही समझ कर सभी क्रिया, कर्म व व्योवहार किये जा रहा है। इस त्रिलोकि में सदा से सब कुछ ही हंसा–सुरति से चलाऐमान है। इस त्रिगुणि–त्रिलोकि में एक तो मानव निज को काया समझ रहा है, दूजा भौतिक संसार के रिश्ते नातों व संसार को अपना समझ रहा है, तीसरा कभी कभार सत्संगों में अमृतमयी प्रवचनों को सुनकर अथ्वा किसी शव यात्रा के समय क्षन भर वैराग्य की अवस्था उभरने पर अनजाने वश आत्मां की बात तो करता है, पर हंसा रूप के बारे में कभी सोचता भर भी नहीं। इस त्रिगुणि माया से मुक्त होना, जग पूजा, वन्दनाओं, आराधनाओं, संध्या, जप, तप, हवन, ध्यान आदि द्वारा संभव ही नहीं। क्योंकि मन रूपी निरंकार से की गई पूजा, आराधना, ध्यान, जप–तप से सन्यासी, ऋषि–मुणि योगी–योगेश्वर बन जाने पर भी, निरंकार रूपी मन कुछ काल के लिए शांत तो हो जाता है पर मिटता कदापि नहीं। बिन पूर्ण मन मिटे सुरति द्वारा आत्मां निज हंसा रूप धारण नहीं कर पाती। तभी लम्बे जप–तप ध्यान उपरांत भी अहम (मन का विक्राल रूप व नीचता की ओर धकेलने वाली मन तरंग) जाग जाता है। महां–ज्ञानियों, महां–ध्यानियों व ऋषि मुणियों की भी काम क्रौध विषयों में उलझने की संभावनाऐं बनी रहती हैं। इस त्रिगुणि माया चक्कर से बच कर कैसे मोक्ष राह पर चला जा सकता है ?

निराकार भगवान की अदभुद विशालता देखें, उन्होंने केवल त्रिलोकि व सृष्टि ही नहीं रची अपितु इन सब संरचनाओं के साथ–साथ काल क्रम की प्रचण्ड सू–व्यवस्था भी की है जो अति सुचारू, सटीक, अति सूक्ष्म, अति विशाल व अति अधिक भव्यता लिये हुऐ हैं जिसे स्वंय भगवान निराकार ही चला रहे हैं। तभी तो निरंकार को महांकाल भगवान या काल पुरूष नामों से भी संबोधित किया जाता है। निरंकार दायरे के महांज्ञानी ऋषि–मुणियों द्वारा देवी देवों के एक–एक दिन की भी काल गणना की गई है परन्तु ये सभी तेतिस कौटिन देवी–देवता निरंकार भगवान ने अपनी शक्ति द्वारा उत्पन्न किये जो आगे चल कर इस विशाल त्रिलोकि व जगत संचालन की व्यवस्था में सहायक हुए। ये सभी देवी–देव निरंकार के 'शब्द पुत्र' या 'शब्द शक्ति' से ही उत्पन्न हुऐ।

एक बात सर्वदा ज्ञात रहे सभी देवी–देव भगवान निरंकार ने अपनी शब्द व शक्ति द्वारा ही उत्पन्न किये, इसी कारण सभी देवी–देव निरंकार भगवान के ही शक्ति स्वरूप

अति सुन्दर व हृष्ट–पुष्ठ काया से युक्त हैं। सभी के सभी देवी–देव सुन्दर आकृति तथा मनमोहक माया रूप से युक्त हैं। इन सब का धरा पर मानवों द्वारा बनाया गया मूर्ती तथा चित्रों का रूप केवल कोरी कल्पनाओं पर ही निर्भर है। जगत में पुराण–रूपी ग्रंथों ने अनुचित रूप में देवी–देवों को बड़ी ही बेडोल काया और यहां तक कि उन्हें पशु–पक्षियों की काया से भी युक्त छवी के रूप में प्रस्तुत किया। ये छवियां और आकार आगे चलकर स्थापित होते–होते वर्तमान काल की मूर्त्तियों और चित्रों में परिवर्तित हुई हैं। देवी–देवों के ये आकार व छवियां अधिकतर सत्य से एकदम परे अर्थात बस केवल कल्पनाऐं मात्र ही हैं।

भक्ति में अंतःकरण के भावों की बहुत अधिक महत्वता है। एक बार निरंकार दायरे की भक्ति में किसी ईष्ट की छवि मन मंदिर में बस जाये तो वे जीवन भर कभी भी नहीं मिटती। बड़े–बड़े ऋषि–मुणि, ब्रह्मचारी–सन्यासी व योगी–योगेश्वर ज्ञानवान होने के उपरांत भी ईष्टों की छवियों से बाहर नहीं आ पाते, जबकि वे जानते हैं कि सभी देवी–देव व ईष्ट, भगवान निरंकार के ही विभिन्न रूप हैं। उदाहरणतः राम चरित मानस के रचियता गोस्वामी तुलसीदास जी जब मथुरा के बांके बिहारी मंदिर में पहुंचे, वहां विराजत मूर्ती को देख कर वो अति मायूस हुऐ। निराशा में वो बोले मैं तो धनुषधारी राम को ही शीष निवाऊंगा। अंतःकरण में शुद्ध भक्ति भाव से युक्त होने के कारण तुरन्त ही निराकार भगवान कृष्ण जी के रूप को त्याग कर राम जी के आकार में धनुषबाण लिए प्रस्तुत हुए। तभी तुलसीदास जी ने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया और प्रसन्नचित हो कर विदा हुऐ। कहने का अभिप्रायः यह है कि घर व मंदिर की मूर्तियां तो शिल्पकार की कल्पनाओं पे ही आधारित होती हैं तथा ये कलाकार तो भक्ति से कौसों दूर केवल अपनी जीविका की पूर्ती के लिए ही मूर्तियां व चित्रों का निर्माण करते हैं। तभी तो किसी भी देवी–देवताओं की मूर्तियां, उनके आकार व नैन–नक्ष एक मंदिर से दूसरे मंदिर की मूर्तियों से अक्सर भिन्न ही होती हैं परन्तु भक्ति भाव से युक्त भगत को वे एक सी ही प्रतीत होती हैं।

सभी देवी–देवताओं व ईष्टों के अनेक रूपों में पूजा स्थलों में स्थापित की गई मूर्तियां यथार्थ से परे केवल मानव की कल्पना भर ही हैं। निरंकार भक्ति में जो जो भी निरंकार भगवान को श्रद्धा से जिस–जिस भाव व रूप में पूजते हैं निराकार भगवान उन्हें उसी रूप में ही दर्श देते हैं।

स्वर्ग काल की गणना

धरती का सौ वर्ष काल, पित्र लोक का एक दिन ।
पित्र लोक के सौ वर्ष, ब्रह्मां जी का एक दिन ।
ब्रह्म लोक के सौ वर्ष, विष्णु जी का एक दिन ।
बैकुण्ठ के सौ वर्ष, महादेव जी का एक दिन ।
शिव लोक के सौ वर्ष, आद्य्–शक्ति का एक दिन ।
आद्य्–शक्ति लोक के सौ वर्ष, निरंकार भगवान का एक दिन ।
कर्म फल भौग के प्राणी, फिर मृत्यु लोक में जन्मे एक दिन ।।

4 – बीज रूपी कर्म

हे मानवो, एक अनोखी परन्तु शास्वत सत्य बात सदा ध्यान रहे कि भगवान निरंकार ने यह मानव काया हम सब को बीज रूपी कर्म करने के लिये ही प्रदान किया है। ये मानव जन्म अत्यधिक फलदायक है और इसमें किये गये कर्म केवल फलिभूत ही नहीं होते अपितु ये कंई हज़ारों गुणा बड़ कर फलदायक होते हैं। ये जन्म तो केवल बीज रूपी कर्मों को बीजने के लिये ही मिला है। इसलिये हे मानवो, मानव जीवन बड़ा ही अनमोल, दुर्लभ एवम बारम्बार ना मिलने वाला है। जैसे एक वृक्ष का बीज बोये जाने पर वह फलदायी वृक्ष का रूप ले कर अनगिनत बीजों को जन्म देता है ठीक उसी प्रकार मानव जन्म में किये गये कर्म भी सैंकड़ों ही नहीं हज़ारों गुणा बड़ कर फलिभूत होते हैं। तभी तो हे मानवों, अपने स्वार्थ से भरपूर दुष्ट प्रवृत्ति के कर्मों को त्याग ! क्युंकि चन्द छोटे छोटे स्वार्थों की पूर्ती के लिये किये गये कर्म मानव के लिये घौर लम्बे काल तक की यात्नायें ले कर आते हैं। जैसे निज स्वार्थ सिद्धि हेतु इस चन्द वर्षों के जीवन काल में दुष्ट भाव से किये गये कर्म हज़ारों वर्षों तक नर्क भौगने का कार्य करते हैं ठीक वैसे ही निरंकार दायरे की भक्तियों में छोटे छोटे परहित भाव से किये गये दान पुण्य, पूजा पाठ व सेवा सबूरी से किये गये कार्य मानव को हज़ारों वर्षों के लिये स्वर्गों में वासा दिलाते हैं। निरंकार दायरे की भक्ति अनुसार मानव उच्च अवस्था प्राप्त करने पर चार प्रकार की मुक्तियों को (स्वर्ग) भौग सकता है। परन्तु साधक कितनी भी उच्च अवस्था को क्युं न प्राप्त किये हो, कर्म फल समाप्ति उपरांत पुनः चौरासी के आवागमण जाल में लौट ही आता है। जहां पूर्वतः की भांत्ति वह फिर से मानव जन्म प्राप्त होने पर बीज रूपी कर्मों को करने में संलग्न हो जाता है। ये क्रम प्रथम सृष्टि रचना से लेकर वर्तमान काल तक निरंतर जारी है और आगे भी रहेगा। अगर यूं कहें कि केवल मानव योनी को छोड़ कर बाकी ये सारी त्रिलोकी कर्म प्रालब्ध भौग स्थान ही है तो अनुचित नहीं होगा।

परन्तु सहज सत्त मार्ग के संतों व सतगुरू परमहंसों ने काल गणना का कुछ इस प्रकार से वर्णन किया है :– सारे सरंचना काल से महांप्रलय काल तक मानव की औसत आयु सौ वर्ष काल है व निरंकार के एक दिन चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष काल तथा इतने ही काल की अहोरात्री अर्थात आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्ष का एक दिन रात है। निरंकार भगवान द्वारा रचित त्रिलोकि की आयु सत्रहं आयोजन कौड़ी वर्ष काल में से तीन आयोजन कौड़ी काल तो गुज़र चुका है तथा अभी चतुर्थ आयोजन कौड़ी का प्रारम्भिक काल ही चल रहा है। पर मानव सब कष्ट झेलने को तो तैयार है परन्तु मुक्ति पथ की ओर चलता तक भी नहीं। यही सहज सत्त मार्ग के संतों व सतगुरूओं की व्यथा का एकमात्र कारण है। तभी तो सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' निरंतर दिन रात जग जीवों को जगाने व उनके कल्याण हेतु प्रयासरत हैं।

5 – तेतिस कौटिन देवी देव

एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि निरंकार दायरे के अधिकांश गुरूआजन, कथावाचक और पंडितजन बिना किसी निज अनुभव के ही अपना–अपना राग अलापे जा रहे हैं और अगर इनमें से किसी का कोई निज अनुभव है भी तो वह भी लेष मात्र लगभग ना के बराबर ही होता है। 95 प्रतिशत गुरूआजन, पंडित व कथावाचकों का अपना निज अनुभव ना होने के कारण सर्व साधारण मानवों को अपने प्रवचनों में कथाओं और किस्सों में ही उलझाये रखते हैं जिससे वो उन्हें प्रभावित कर सकें ! प्रवचनों व कथाओं के दौरान अर्जित किये धन से ही वे अपनी जीविका चलाते हैं। इन सभी विद्वान वक्ताओं ने कुछ ग्रंथ स्वःध्याये किये होते हैं तथा महांपुरूषों के प्रवचनों में से इन्होंने अनगिनत किस्से, कहानियां और उपमाऐं तक भी कण्ठस्त की होती हैं जिन को वह अपने प्रवचनों में श्रोताओं को प्रभावित करने के लिए प्रयोग में लाते हैं। इनके द्वारा अज्ञानता वश कुछ ऐसी धारणाऐं व मान्यताऐं प्रचलित कर दी गई हैं जो सत्य से बिल्कुल विपरीत हैं तथा इन्हीं द्वारा फैलाई गई झूठी धारणाओं से साधारण मानव भ्रमित हो जाते हैं। इन्हीं धारणाओं में से एक धारणा 'नारायण' नाम से भी है।

अल्प ज्ञान होने व भगवान निरंकार का पूर्णतः ज्ञान ना होने के कारण 'नारायण' शब्द का मूल सम्बंध जो केवल भगवान निराकार से है उसे साकार व सगुण पूजा करने वाले पंडित जनों ने त्रिदेवों में से एक देव 'विष्णु जी' के नाम से जोड़ दिया है। जिसने आगे चल कर समाज को इस महां भ्रम में उलझा के रख दिया। इन्हीं अल्प ज्ञानी पंडितों ने एक और महां भंयकर भ्रम को समाज में यह कर प्रचलित कर दिया कि हिन्दुओं के 33 कौटिन देवी–देव नहीं अपितु 33 करोड़ देवी–देवता हैं। 'कौटिन' शब्द संस्कृत का शब्द है जिसका भावार्थ अलग–अलग 'किस्में' अर्थात 'प्रकार' से है परन्तु आम व साधारण समझने और समझाने वालों ने इस 'कौटिन' शब्द की संज्ञा को 'प्रकार' के स्थान पर 'करोड़' कहना और लिखना प्रारम्भ कर दिया जिसने आगे चल कर सारे के सारे भाव को पूरी तरहं से बदल के ही रख दिया।

33 कौटिन देवी–देवताओं को इस प्रकार से वर्णित किया गया है :–

1	आदित्य	2	धाता	3	मित	4	आर्यमा
5	शक्रा	6	वरूण	7	अँशभाग	8	विवास्वान
9	पूष	10	सविता	11	तवास्था	12	विष्णु
13	वासु	14	धरध्रुव	15	सोम	16	अह
17	अनिल	18	अनल	19	प्रत्युष	20	प्रभाष
21	रूद्र	22	हरबहुरूप	23	त्रयँबक	24	अपराजिता
25	बृषाकापि	26	शँभू	27	कपार्दी	28	रेवात
29	मृगव्याध	30	शर्वा	31	कपाली	32	अश्वनी
33	कुमार						

33 कौटिन देवताओं का सत्य जानने के उपरांत भी जब हम धर्म सम्मत कार्यों को भी उचित ढंग से ना करें और किसी भी कार्य को करने के लिए अनुचित शब्दों का प्रयोग करने लग पड़ें तो ये त्रुटि भी एक प्रकार का महां गुनाह ही है। सब ज्ञान होने पर भी जानबूझ कर ऐसा अनुचित प्रचार प्रसार करने पर हम धन तो अर्जित कर सकते हैं परन्तु आध्यात्मिक उन्नति तो कभी भी नहीं कर पाते। जहां भी 33 करोड़ देवी–देवताओं का वर्णन आये तो इस विचार और भाव को कौटिन का प्रत्यक्ष और उचित भावार्थ ही अपने अंताकरण में उतारें और समझें कि कौटिन से 'करोड़' नहीं अपितु 'प्रकार' को ही अभिव्यक्त किया जाये।

मोहनी माया देह पाश में, साधु संसारी सब भटके।
सगुण निर्गुण भक्ति तो बंधन, जीव सभी इसमें अटके।।

आदिकाल के प्रारम्भ में मानव की आयु बहुत ही कम थी क्योंकि तब परिस्थितियां व वातावरण विकसित होने का क्रम चल रहा था, तथा मानव असंगठित, कम बुद्धि युक्त व आश्रय विहीन था। इन परिस्थितियों के कारण मानव की आयु सीमित ही थी। ज्युं–ज्युं मानव सभ्य होता गया त्युं–त्युं इसकी आयु बड़ती चली गई। मानव सभ्यता काल को चार युगों में विभक्त किया गया है। सतयुग में मानव की औसत आयु लगभग दो सौ वर्ष काल से अधिक थी जो त्रेता युग में एक सौ पच्चास वर्ष काल से अधिक रह गई। द्वापर युग के आते–आते मानव की औसत आयु एक सौ बीस वर्ष के आस–पास थी और कलयुग के प्रारम्भ में ये आयु लगभग सौ वर्ष की थी। इस वर्तमान कलयुग के अंतिम पड़ाव पर मानव की औसत आयु सत्तहर वर्ष के आस–पास है। ऐसा भी नहीं की मानव औसत आयु से अधिक ना जी पाता हो। प्राचीन काल में ऋषि–मुनि सन्यासी व योगी, योग व ब्रह्मचर्य बल से अध्यात्मिक व मानसिक रूप से उन्नत होकर पांच सौ वर्ष तथा इससे भी अधिक काल तक जीवन जीते रहे। ये औसत आयु चंद उपमाओं को छोड़ के सर्व साधारण मानवों की अपने–अपने युग में रही। ऐसी ईक्का दुक्का घटनाऐं आज के वर्तमान युग में भी मिल जाती हैं। यदा–कदा आज भी बुजुर्ग वृद्ध जनों के सौ से डेढ सौ वर्ष तक जीने के कई उदाहरण मिल जाते हैं। परन्तु गृहस्थ मानवों की काया उनके दैनिक जीवन शैली के कारण लगभग सौ वर्ष के उपरांत निरोगी नहीं रह सकती। 'जीवेम शरदः शतम' का भाव कहीं ना कहीं महान वेदों से प्रेरित मानव की कुल औसत स्वस्थ आयु से प्रभावित कथन लेख है।

आध्यात्मिक रूझान वाले मानव अक्सर जन्म से पहले और मृत्यु उपरांत व अपने ब्रह्माण्ड की उत्पति (सृजनता) को व प्रलयः काल उपरांत जानने को उत्सुक व प्रयत्नशील रहते हैं। बहुत कम ही इन बातों को ग्रंथों, शास्त्रों, उपनिषदों अथ्वा किसी भी धार्मिक पुस्तक में वर्णित किया गया है। महान चारों वेद भी बहुत कम परन्तु ना के बराबर इस त्रिलोकि सृजन और विनाष का उल्लेख करते हैं। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की सुरति द्वारा प्रदत ज्ञान भण्डार के अनुसार इन सारे रहस्यों का उल्लेख, मात्र एक प्रयास भर है। निरंकार महिमां का वर्णन अति विशालता व प्रचण्डता से भरपूर है जो लेखनी में समाया ही नहीं जा सकता, हां अपितु संक्षेप में इस का प्रयास भर किया जा सकता है।

भगवान निरंकार साहिब सतपुरूष जी के शब्द से प्रकट (उत्पन्न) हुए हैं। पर 'हंसा' (आत्म–मन=हंसा) साहिब सतपुरूष जी का निज अंश है इस कारण 'हंसा' (हंसा+मन=आत्मां) मन माया यहां तक की सृष्टि सृजनकर्ता निरंकार से भी श्रेष्ठ है। तभी तो हंसा जीवात्मां के रूप में माया का उपयोग करते हुए भी निर्लेप है। हां, हंसा तो निज को काया समझ मन के अधीन हुआ, माया के भ्रम में भ्रमित हुआ आत्म रूप है। जैसे ही हंसा को निज स्वरूप का आभास होता है वैसे ही वह सभी माया भ्रम को तज मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। संत सतगुरू परमहँस जन सतयुग से ही जग मानवों को मोक्ष पर चलने हेतु प्रेरित व प्रयत्नशील रहे और आज भी इसी उद्धेश्य के लिए प्रयासरत हैं। एक सांसारिक माया मन से भ्रमित मानव निज को ना पहचानता हुआ अपने आप को काया मान कर निरंकार रूपी देवी–देवों व अपने–अपने ईष्टों की पूजा करके जगत माया ही मांगे जा रहा है। यही तो मानव के दुखों कष्टों व आवागमण का एकमात्र कारण है। इस भ्रम में मानव अधिकतर निरंकार रूपी सर्गुण निर्गुण देवी–देवों व ईष्टों को भजने वाले गुरूओं, ऋषियों–मुनियों व कथा वाचकों की शरणी में जा–जा के अंतहीन आवागमण चक्र से मुक्त नहीं हो पा रहा। माया में मगन कंई कंई जन्मों से भ्रम में पड़ा मानव माया ही ओड़ता, बिछाता, खाता, पीता व इसी में जीवन जीता आ रहा है। आज का मानव माया में रमा निज से अति दूर कष्ट क्लेशों व अंतहीन पीड़ा में ही मगन हो कर जीऐ जा रहा है तथा इस से निकलने की वह कोई ईच्छा ही नहीं रखता। इससे छूटना तो क्या, छूटने के प्रयास के बारे में भी कभी सोचता विचारता नहीं। इस माया रूपी भव बंधन से छुटकारा कैसे मिले !

नोट :– इसके लिए त्रिलोकि निरंकार व साहिब सतपुरूष जी के पूर्ण ज्ञान से भरपूर साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' द्वारा रचित अमृतमयी ग्रंथ 'अमर सागर' में विस्तार पूर्वक पढ़ें।

जगत प्राणी निज भूले, लोभ काम विषय लार के सदके।
मोहनी माया पाश भरमावे, सब के सब काया में अटके।।

ज़र ज़ोरू धन कंचन काया, निरंकार की मोहनी माया।
ऋषि मुणि सिद्ध ध्यानी, महांकाल कोई जान ना पाया।।

छल कपट सूं माया पाई, हो गया अभिमान।
सतगुरू परमहंस सूं प्रीती लागी, छूट गया अभिमान।।

मोह माया बंधन तोड़ो, 'मै' 'मेरी' का अहम छोड़ो।
लाखों जन्म व्यर्थ गंवायो, अब सतगुरू सूं नाता जोड़ो।।

6 – सत्त भक्ति में निरंकार का सहयोग

काया भ्रम भरमावे, सिद्ध योगी यति परमज्ञानी ध्यानी।
परमहंस शरणी बिना, कोई निरंकार महिमां ना जानी।।

यह सारी सृष्टि ही नहीं, सारे का सारा ब्रह्मण्ड भी प्रलयः काल में नष्ट हो जाता हैं, फिर पूर्वता की भांति निरंकार भगवान इसकी पुनः संरचना करते हैं। इस एक बार की रचना व प्रलयः काल निरंकार भगवान का एक दिन है। निरंकार का एक दिन 4 अरब 32 करोड़ वर्ष काल का व एक अहोरात्रि भी इतने ही काल की होती है। अर्थात 8 अरब 64 करोड़ वर्ष काल निरंकार का एक दिन–रात होता है। तभी तो पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जन मानव को इस अंतहीन माया चक्र को छोड़ कर निज को जानने के मार्ग अर्थात मोक्ष हेतु निरंतर प्रेरित करते रहते हैं। सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस व वर्तमान काल के संत शिरोमणि ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार भगवान निरंकार जी ने स्वंय ये ''साहिब सतपुरूष जी'' से घौर तपस्या उपरांत वर स्वरूप 17 आयोजन कौड़ी काल का अपने लिए शासन करने हेतु (अर्थात आत्म–हंसा को भ्रमण करवाने हेतु मनमोहक नगरी के संचालन का काम काज) वरदान मांगा व पाया। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार भगवान निरंकार चाह कर भी अब कभी भी अपनी रचना व वर से मुक्त नहीं हो सकते। इतना लम्बा काल जिसका अभी तो मात्र 3 आयोजन कौड़ी काल ही बीता है, चौथा आयोजन कौड़ी काल अभी चल ही रहा है। वह चाह कर भी अब इससे (वर में प्राप्त काल वरदान) मुक्त नहीं हो सकते। सहज सत मार्ग के पूर्ण संतों और सतगुरू परमहंसों के अनुसार भगवान निरंकार इससे मुक्त होना चाहते हैं, वह भी तो साहिब सतपुरूष जी के दर्श के अभिलाषी हैं परन्तु वे ऐसा करने में वचनबद्धता के कारण असमर्थ हैं। निरंकार भगवान कुछ वचनों के अधीन हैं परन्तु त्रिलोकि संचालन को तो पूर्णतः स्वतंत्र हैं। जग गुरू उन्हें अक्सर कौसते रहते हैं जो सर्वथा उचित नहीं। जहां भगवान निरंकार ने हंसा को भ्रमित करने के लिए एक ओर क्रूर माया रूपी काल जाल रचा ! वहीं दूसरी ओर हंसात्मां, जग में चाहे किसी भी ईष्ट की मांग रहित पूजा करे तो भगवान निरंकार उन मांग रहित पूजा करने वाले साधकों अर्थात हंसात्माओं को सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों की शरणी में सौंप ही देते हैं। वह वचनबद्ध होने के कारण कहीं बाधा नहीं बनते और उस मानव को सहज सत मार्ग की ओर अग्रसर होने से रोक ही नहीं सकते अपितु स्वंय उन्हें पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों की शरणी में सौंप देते हैं।

निरंकार स्वयं दुखी, छोड़ना चाहें माया पसार त्रिलोकि नाथ।
कौल कराल संग बंधया, आत्म संग स्वंय फंसे त्रिलोकि नाथ।।

ऐसा ही साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के संग भी घटा ! साहिब सतगुरू जी का बाल्यकाल से ही सगुण भगवान श्री कृष्ण जी की भक्ति में रूझान था।

युवा अवस्था आते–आते वे निरंकार भक्ति में रमने लगे, समय आने पर व मांग रहित भक्ति के कारण निरंकार भगवान स्वयं उन्हें पूर्ण परम सतगुरू जी की शरणी में जाने के लिए प्रेरणा देते रहे। इसी उपलक्ष्य में निरंकार भगवान जी की ''वे नाम परमहँस जी'' से एक मास तक निरंतर गौष्ठियां चलती रही, सारी शंकाओं का निवारण होने के तदउपरांत ''वे नाम परमहँस जी'' अपने सतगुरू जी की शरणी में समपर्ण भाव से उनके सानिध्य में जा पहुंचे।

ठीक वैसी ही घटना साधक अश्विनी जी के साथ भी घटी ! लगभग पैंतिस वर्ष निराकार भगवान की भक्ति करने के निज अनुभव उपरांत उन्हें व उनके जैसे अनेक सर्व साधारण प्राणियों को भी निरंकार भगवान ने काफी परिक्षाओं के बाद उनके निस्वार्थ भक्ति भाव के कारण साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी में जाने के लिए प्रेरित किया। इसके ईलावा और भी कंई साधकों के निस्वार्थ व पूर्ण समर्पण भक्ति भाव के कारण सभी को सतगुरू सतनाम आश्रम में सतगुरू परमहँस जी की शरणी में आने हेतु निरंकार भगवान का भरपूर सहयोग मिला। सबसे अनोखी, अहम व विचित्र बात देखें कि इन सभी के निज अनुभवों व ईष्टों ने कहीं भी इन्हें साहिब सत्त मार्ग भक्ति की ओर जाने से नहीं रोका और कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं की, अपितु उन्हें पिछले सभी निस्वार्थ भक्तियों और आराध्यों सभी का सहयोग सहज भक्ति मार्ग को प्राप्त करने में मिला। हां पहला कदम सतगुरू परमहंस जी की शरणी में आने का मानव को तो स्वंय ही उठाना पड़ता है। जगत गुरू एक भ्रम सा फैला देते हैं कि निरंकार मोहिनी माया सहज भक्ति मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी अर्थात मोक्ष पथ की ओर जाने ही नहीं देती, जो कि सर्वथा अनुचित है।

बड़ी विचित्र विडंबना है, मानव देवी देवों ईष्टों व अपने–अपने धर्म की मानताओं के अनुसार ईष्टों से भक्ति प्रार्थनाओं के बदले मांगें ही मांगें मांगे जा रहा है। पहली मांग जीवन में उत्पन्न होने या मांगने पर मन उत्पन्न हो जाता है, एक बार मन उत्पन्न हुआ तो जीवन–प्रयन्त का साथी बन जाता है। प्रारम्भिक काल में सुख साधन वहीन अवस्था में मांगें समझ में तो आती हैं पर मानव बड़ा दुर्लभ मंगता (भिखारी) है। जैसे–जैसे यह सामर्थवान साधन संपन्न होता है, तो वैसे–वैसे उसकी मांगें मांगनें की तृष्णाऐं और प्रबल होती व बड़ती चली जाती हैं। पहले पहल छोटी मांग, तदउपरांत बड़ी, बड़ी से बड़ी मांग मांगने का अंतहीन क्रम मरने तक निरंतर चलायेमान रहता है। यही तो आशा तृष्णा फंद के कारण माया वशिभूत हुआ आत्म बार–बार जमता मरता है। 17 आयोजन कौड़ी काल तक त्रिलोकि का शासन चलाने को भगवान निरंकार वचनबद्ध हैं। तभी तो वह आत्म को अपने मोहनी माया जाल में उलझा कर 17 आयोजन कौड़ी काल तक ही भ्रमित किये रखना चाहते हैं।

चुनाव को मानव स्वतंत्र है, तभी तो ईक्का–दुक्का ही सही, पर जगत में समय–समय पर सहज मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस धरा पर आते रहे हैं और आगे भी आते रहेंगे। आज के वर्तमान काल में सहज सतमार्ग भक्ति के एक मात्र संपूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' जगत वासियों को माया से मुक्त कर के मोक्ष पथ पर अग्रसित करने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। भक्ति मार्ग औ संसारी माया मार्ग दोनों ही मानव के लिये जीवन में उपलब्ध हैं और मानव किसी को भी चुनने में स्वछंद स्वतंत्र

है। अब वह माया का काल जाल चुने तो इस में दोषी कोन ? 'मै' व 'अहम' को तज कर ही पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की चरणी शरणी में जाया जा सकता है। 'मै' का अहम ही मांगों के कारण पूजा भी करवाता है, जग में जो जितना बड़ा पुजारी, नमाज़ी, ईबादत व सजदे करने वाला, उसकी मांगें उतनी ही भारी और विशाल होती हैं। एक बात सदा ज्ञात रहे कि यह सृष्टि कर्म प्रदान है और कर्मों का फल अटल व अवश्यंभावी है तथा कर्मों के फल से अधिक कभी किसी को कुछ मिल ही नहीं सकता। कोई भी आराध्य जब भी किसी की कोई मांग पूरी करते हैं तो ये ईष्ट आराध्य उसकी मांगें समय से पूर्व ही उसके प्रालब्ध से उपलब्ध करवा कर साधक की श्रद्धा को अपने प्रति बनाये रखते हैं व उसकी श्रद्धा को और भी दृढ़ करते हैं। ज्ञात रहे कि 'हंसा' तो सर्वश्रेष्ठ है और कोई उसको कैसे तृप्त कर सकता है ? ये समय से पूर्व प्राप्त फल मानव को भंयकर व अति कष्ट पूर्ण अवस्था में धकेल देते हैं। अगर मानव के प्रालब्ध कौष में अच्छे पुण्य कर्म फल नां सैंचित हों तो देवी–देव व ईष्ट उनकी मांगें पूर्ण नहीं कर पाते, तभी तो ईष्ट व आराध्य उनकी बहुत सी मांगें प्रालब्ध कौष में ना उपलब्ध होने के कारण अनसुनी कर देते हैं। कर्मण जाल और उसका प्रतिफल ही माया विस्तार का आधार हैं। कर्मण की गति अति न्यारी है ना चाहते हुए भी इसका विस्तार बड़ता ही जाता है।

7 – कर्म व कर्म फल/प्रालब्ध

कर्मन की गति न्यारी, चाहे अनचाहे दिनो दिन बड़ती जाये ।
नर तो चाहे सुखन सुखन को, प्रालब्ध वश अति दुख पाये।।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं :– 1 मनसा 2 वाचा 3 कर्मना

मनसा वाचा कर्मना, कर्म के अंग महां पसार।
कर्मन फल प्रालब्ध सूं, चले महांकाल सरकार।।

1 मानव के मन एवमः अंताकरण में किसी के प्रति कू अथ्वा सू विचारों का बनना भी प्रालब्ध कर्म कौष के खाते में लिखा जाता है।

2 वाणी सूं बोले कड़वे शब्द गालियां एवमः मीठी मधुर वाणी उच्चारण भाव भी प्रालब्ध कर्म खाते में लिखे जाते हैं।

3 अति बलवान कर्म जो काया द्वारा कर्म व ज्ञान ईन्द्रियों के प्रयोग से किये जाते हैं ये सब कर्म फल सैंचित हो के प्रालब्ध बनते हैं और सभी कर्म निरंतर एकत्र हो कर प्रालब्ध अर्थात कर्म फल कौष बनते हैं।

ये संसार काल का देसा, कर्मन जाल पसारा।
सभी अटके इस जाल में, कैसे हो निस्तारा।।

मानव सभी कर्म तज ही नहीं सकता, कर्म तो कभी नां रूकने वाली क्रिया है, मानव जन्म लिया है तो कर्म अवश्यंभावी हो के रहते हैं। तो प्रालब्ध है क्या ? जिसने भी कर्म किया उसका फल उसे मिल ही जाता है, जिन कर्मों का फल इस काल में नहीं मिल सकता, वह कर्म फल सैंचित हो के पूर्व जन्मों के कर्मो का फल अर्थात प्रालब्ध कौष बन जाते हैं। यह प्रालब्ध कौष हर जन्म बाद और प्रबल व अति सामर्थवान हो जाता है। प्रालब्ध सूं बचना तो संभव ही नहीं चाहे कोई कितना भी यत्न प्रयत्न क्युं ना कर ले।

उदाहरणता :– स्वंय निरंकार भगवान के अवतार मर्यादा पुरषोत्तम श्री राम जी बाल्य अवस्था में सारथी सीमांत जी संग नगर भ्रमण को निकले। भ्रमण के दौरान उन्होंने अपनी प्रजा को अनेक रोगों व कष्टों से ग्रस्त व दुखी पाया। उनके बार–बार यह पूछने उपरांत कि मेरे पिता श्री के साम्राज्य में सब जन सुखी हैं तो फिर ये लोग दुखी अवस्था में क्युं हैं ? जिस के उत्तर में सारथी सीमांत जी ने कहा :– हे युवराज ! राजा सुख साधन तो दे सकता है पर निज कर्मों के फल के दुख तो मानव को स्वंय ही सहने पड़ते हैं। इतना सुन कर भगवान श्री राम भ्रमण को बीच में ही छोड़ कर वापिस अपने महल पहुंचे और सीधे कौप भवन में जा पहुंचे तथा अंदर से किवाड़ बंद कर दिया। तीनों माताऐं, भाईयों व सभी बड़ों यहां तक कि पिता श्री के कहने व समझाने पर भी भगवान श्री राम जी ने किवाड़ नहीं खोले। तब वहां कुल गुरू श्री वष्ठिठ जी आये और राम जी से बोले, हे राम किवाड़ भले ही मत खोलो परन्तु बात तो करो। इतना सुनने पर राम जी बोले हे गुरू जी, मैं भवन से बाहर नहीं आऊंगा, ना ही कुछ खाऊंगा, ना जल ग्रहण करूंगा, नांहि कोई कर्म करूंगा ! जब कोई कर्म ही नहीं होगा तो मैं कर्म रहित होने से मुक्ति को पा जाऊंगा। ऐसा सुन कर वष्ठिठ जी स्तब्ध रह गये, कुछ रूक कर बोले हे राम, विधि अनुसार मानव जन्म तो कर्म करने के लिए ही हुआ है, तुम ना चाह कर भी स्वंय को कौप भवन में बंद करके दूसरों को दुख देने का कर्म तो कर ही रहे हो, तुम्हारे इस तरहं स्वंय को बंद कर लेने पर भी सांस लेना, देखना, सुनना और विचारने जैसे कर्म चाहे–अनचाहे तो हुऐ ही जा रहे हैं, क्योंकि कर्म तो अवश्यंभावी हैं चाहे–अनचाहे मानव तो कभी भी कर्म रहित हो ही नहीं सकता। कोई कर्म अच्छा या बुरा नहीं होता, कर्म के पाप पुण्य का निर्धारण तो मानव के अंतःकरण के भाव से होता है नां कि कर्मों से। निस्वार्थ परहित भाव से किये गये कर्मों से ही लोक व परलोक सुधरता है, ऐसे ही कर्म ज्ञान का उल्लेख अति दार्शनिक व महां ग्रंथ 'भागवत गीता' में भी वर्णित है। (कर्मों के संपूर्ण ज्ञान हेतु 'योग वष्ठिठ' नामक ग्रंथ को पड़ें।)

जन्म लिया मन भावन किया, छूटा ना मन का मोह।
माया मोहनी जब नाच नचावे, कैसे छूटे मोह।।

परन्तु निरंकार दायरे की भक्ति व गुरूओं की शरणी में पूर्ण मन (काम, क्रौध, वासना, तृष्णा, लोभ, मोह व अहंकार) कभी भी नहीं मिट सकता, जिससे अल्प–मुक्ति, स्वर्ग व सुन्न लोक तो मिल सकते हैं पर पूर्ण मुक्ति/मोक्ष (आवागमण से छुटकारा) नहीं मिल सकता। मोक्ष अर्थात पूर्ण मुक्ति हेतु सारा मानव समाज मुख से बोल कर अथ्वा मन से ध्यान भजन करता चला आ रहा है। ये मुख ही नहीं सारी काया व काया के भीतर मन रूपी निरंकार की माया है। मुख से जो बोल भाषा जिसका हम उच्चारण करते हैं वह तो समाज के किसी विशेष स्थान के ही मानवों को समझ आता है जो उसी भाषा को समझने

वाले होते हैं, दूसरे तो उस भाषा को समझ ही नहीं पाते जिस कारण यह बोल भाषा चन्द ही लोगों तक सीमित रह जाती है।

भाषा या मुख से उच्चार के जो भक्तियां की जाती हैं, वे भी चन्द मानवों, उनके अपने देवों, आराध्यों व ईष्टों तक ही सीमित रहती हैं। कथा वाचकों, जगत गुरूओं व मन को कौसने वाले प्रचारकों द्वारा ध्यान व मन से जो भक्तियां की जाती हैं उन भक्तियों को मन रूपी निरंकार ही सुन पाते हैं और वही निरंकार सभी मानवों की उनके ईष्ट रूप में की गई पूजा को ग्रहन करते हैं। उनके द्वारा मांगी गई मांगो को पूरा करते हैं तथा साथ ही उनके ईष्ट रूप में उन्हें दर्शन दे के सब की आस्था व श्रद्धा दृढ़ और परिपक्व बनाते हैं। मन रूप में भगवान निरंकार सब जीवों में समाये हैं। ओम, ऊं, ओ३म, ओंकार, ईक–औंकार, रंरकार, कर्ता–पुरख, राम (तीसरे राम) निराकार, अलख–निरंझन, सोहम, खुदा, अल्लाह, ईश्वर, भगवान, सृजनहारा तथा महांकाल ये सारे भगवान निरंकार के ही नाम हैं, धरावासी इन नामों के ईलावा भी उन्हें कंई और नामों से भी पुकारते हैं। ये तो उनके निर्गुण (निगुण) रूप के नाम हैं। तथा सभी देवी–देव, ईष्ट, आराध्य, चाहे वे जड़–पदार्थ जैसे पेड़, पर्वत, पाहन, साधु, संतों व पीरों की समाधियां, शहीदों व सत्तियों की समाधियां या अचल रूप भूत, प्रेत, राक्षस, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व व नागों की पूजा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भगवान निरंकार की ही पूजा है। ये सब सर्गुण/साकार रूप पूजा भी निरंकार भगवान की ही पूजा है। जो उपरोक्त सारी पूजाऐं बोल कर या मन से ध्यान द्वारा की जाती हैं, इन सभी पुजा भक्तियों में मन ही प्रधान होता है तथा ये सभी मन की ही भक्तियां हैं। निरंकार का ही तो सब प्राणियों में 'मन रूप' में वास है तभी तो सारी की सारी जगत पुजाऐं निरंकार भगवान की ही पूजा है। ये बलिष्ठ मन ही मानवों को बीते व आने वाले कल के सपनों से बाहर नहीं आने देता तथा जीव को आशा–तृष्णा में उलझाए रखता है। मन की मन द्वारा की गई पूजा से निरंकार रूपी मन की सत्ता नहीं मिटती, तभी तो निरंकार की भक्ति करने वाले मानव, स्वर्ग, नर्क, सुन्न व महांसुन्न लोकों में स्थान पा कर (पुण्य कर्मों का फल खिन्न होने उपरांत) फिर आवागमण अर्थात जन्म–मरन के अंतहीन चक्र में लोट आते हैं। बिन पूर्ण मन तजे निरंकार की 4 मुक्तियां तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु संपूर्ण मोक्ष (आवागमण से छुटकारा) मिल ही नहीं सकता। तभी तो निरंकार के दायरे के ऋषि, मुणि, जपी, तपी, योगी व योगेश्वर–जन भी काम, क्रौध और वासना से मुक्त नहीं हो पाते जिस के कारण बार–बार उनके पतन के उदाहरण देखने व सुनने को मिलते हैं। इनमें से किसी की भी पूजा व आराधना में कोई कमी नहीं होती परन्तु ये सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निरंकार रूपी मन की पूजा से मन की सत्ता समाप्त नहीं होती।

ऋषि मुणि गण गंधर्व अरू देवा, सब करते मन सेव।
तीन लोक मन है राजा, कोई बिरला ही जाने भेद।।

मनसा वाचा कर्मना, चित्त को देखो आप।
जो कुछ हृदय में चल रहा, वह है संताप।।

हां कुछ काल तक अथ्वा लम्बे काल तक मन शांत तो हो सकता है पर पूर्णतः समाप्त नहीं हो पाता। मन की सत्ता को सहज सत्त मार्ग के संतों की सत्ता व उनकी सुरति आभा से ही मिटाया जा सकता है। सहज सत्त मार्ग की सत्ता निरंकार के सात चक्र व दसवें द्वार से परे की सत्ता है, जहां निरंकार के दायरे की भक्ति समाप्त होती है वहीं से सहज सत्त मार्ग की भक्ति की परिकाष्ठा प्रारम्भ होती है, ये सत्ता निरंकार की सत्ता से आगे की एक मात्र संपूर्ण सत्ता है। सहज सत्त मार्ग भक्ति (सतलोक भक्ति) साहिब सतपुरूष जी की महिमां का संपूर्ण वर्णन है। निरंकार स्वंय व उनका सारा त्रिलोकी पसार सतलोक सत्ता के ही भीतर का मात्र एक अंश भर है, इसके चहुं ओर सतलोक ही सतलोक है। अंतिम विराट प्रलयः उपरांत भगवान निरंकार सहित सारी की सारी त्रिलोकी व हंसा फिर से सतलोक में ही समा जाऐंगे। तभी तो निरंकार की मन रूपी सत्ता मन भक्तियों से समाप्त नहीं होती, बड़े–बड़े ऋषि–मुणि, साधु–सन्यासी, योगी–योगेश्वर अथाःह व अंतहीन भक्तियों के उपरांत भी मन से मुक्त नहीं हो पाते। हां योगी व योगेश्वरों का 90 से 99 प्रतिशत मन सुशुप्त हो जाता है पर पूर्णताः मिटता नहीं। मन को मन की सत्ता से मिटाया ही नहीं जा सकता तथा बिन सहज सत मार्ग भक्ति पथ पर अग्रसित हुए मन की सत्ता नहीं मिटती।

दुर्लभ मानुष जन्म अनमोल है, हीरे मोती करें ना तोल।
किस कारण जग में आये हैं, इस बात का होता ना मेल।।

8 – भगवान निरंकार दयालु भाव

मन–भक्ति अर्थात निरंकार–भक्ति के पथ प्रदर्शक गुरूजन तो हज़ारों नहीं लाखों की संख्या में सदा से पृथ्वी पर रहे हैं और आगे भी रहेंगे, जो निरंकार भगवान की पूजा अराधना का प्रचार प्रसार सगुण/निगुण रूप में करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। मानव, मोहिनी माया व अपनी कभी ना समाप्त होने वाली मांगों के वशिभूत इनकी शरणागत व पूजा अराधना करता आया है और किये जा रहा है।

जगत में ईक्का–दुक्का ही सही, मन की सत्ता को तज सहज सतमार्ग पर चलने वाले साधक व पूर्ण संत सतगुरू परमहंस सदा से होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। मानव, माया के प्रभाव में निज को तो भूला हुआ है ही, साथ ही अपने मूल साहिब सतपुरूष जी को भी भुला बैठा है। कभी–कभार आभास होने पर भी वह अनसुना कर देता है। निराकार भगवान की सगुण व निर्गुण भक्ति भी मानव अपने स्वार्थ सिद्धी अर्थात भोतिक जगत की मांगे पूरी करने को ही करता है। जैसे उसके ईष्ट व आराध्य केवल पूजनीय व श्रद्धा के पात्र ना हो के उसकी ईच्छाओं की पूर्ती करने का माध्यम भर हो। कभी–कभी तो बहुत से संसारी जनों के प्रालब्ध कौष में मांग रूपी फल ना होने के कारण निरंकार भक्तों की मांगें पूरी नहीं कर सकते और मांगें ना पूरी होने पर अपने आराध्यों का अपमान, अभद्र टिप्पणियां गाली गलौच पर उतर आते हैं और यहां तक कि उनका परित्याग तक भी कर देते हैं। परन्तु भगवान निरंकार बड़े सहज व प्रेम भाव से सब को क्षमा भाव से अनसुना कर देते हैं तथा त्रिलोकी की सारी नेमतें पूर्वतः की भांति सब पर न्योछावर करते रहते हैं।

भृगुऋषि परशुराम दरवासा, तप किया बहु भारी।
क्रौध ना छोड़े संग इनका, करत क्रौध अति भारी।।

मन वृति संकल्प है, निर्णय बुद्धि काम।
चित्त केंद्र है याद का, अहंकार क्रौध का काम।।

मन की मानें मन को सेवें, मन भावन व्योवहार।
मन तो दुख का मूल है, जीव चाहे सुख मंगलाचार।।

9 – सर्वकर्ता सृजनहारा निरंकार प्यारा

सारी त्रिलोक नगरी में सब कुछ मन रूपी भगवान निरंकार ही करन करावनहारा है :– कर्म करवाने वाला मन स्वंय निरंकार, करने वाला शरीर व ईन्द्रियां निरंकार, प्रयोग होने वाला साधन व स्थान निरंकार, कर्ता व भौगता स्वयं भगवान निरंकार हैं, कर्ता कर्म साधन कष्ट देने वाला, भौगता व दृष्टा भी स्वयं निरंकार भगवान ही हैं। उदाहरणतः एक कसाई की काया निरंकार, कसाई का वध करने वाला शस्त्र (छुरा), जिस पर वध होता है वह काठ का टुकड़ा भी निरंकार, जिस पशु अथ्वा जीव काया का वध होता है वह काया भी निरंकार भगवान ही है। निरंकार का दूसरा रूप मन–माया है।

हंसा (आत्मां) किसी भी बात व कर्मफल से निर्लेप रहती है, ना जमती है ना मरती है, ना भीगती है ना सूखती, वह दुख–सुख से रहित व निर्लेप है। आदि, अनंत, अविनाषी, अजर, अमर, निर्भय, निर्वविकार, सर्वाधार व सर्वशक्तिशाली सम्पन्न साहिब सतपुरूष जी का निज अंश है। तभी तो साहिब सतपुरूष प्यारे जी का निज अंश होने से हंसा (आत्मां–मन=हंसा) इन सभी गुणों से सुसज्जित एवमः युक्त है। मन–माया वशिभूत हुआ आत्मां स्वंय को शरीर व प्राण समझ कर इस जगत रूपी निरंकार भगवान की सम्मोहन भरी माया में गहरी निंद्रा में चिरकाल से सोया पड़ा है। अधिकतर जगत गुरूजन निंद्रा–ग्रस्त हुऐ जगत जीवों को उपदेश पे उपदेश दिये जा रहे हैं जिसका कोई प्रभाव उन जीवों पर नहीं होता। तभी तो मन माया में जीव और भी उलझ के रह जाता है, कोई भी मानव–समाज को मुक्ति मार्ग की तरफ चलने को प्रेरित नहीं कर पा रहा क्योंकि मन रूपी निरंकार से ही निरंकार भगवान की भक्ति करके उनकी अल्प मुक्तियां तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु पूर्ण मोक्ष कभी भी नहीं मिल सकता।

तीन लोक पड़े क्रूर सत्ता हाथ में, उसे कहते महांकाल।
सारा जग उस सत्ता को पूजे, तां से तो ही हुआ बेहाल।।

माया सूं मन उपझे, माया त्रिगुण रूप।
पंच तत्व के मेल सूं, बंधे सकल सरूप।।

पूर्ण मोक्ष तो सहज सत मार्ग के पूर्ण संतों, सतगुरू परमहंसों की शरण में, अहम को तजने के उपरांत और उनकी कृपा से ''सार सब्द'' ग्रहण कर के तथा सुरति से ''सार सब्द'' सिमरन व ध्यान में सतगुरू दर्शन पाने पर ही मोक्ष अर्थात पूर्ण मुक्ति पथ पे चलना संभव है। एक बात अक्सर जगत में संसारी जन कहते हैं कि निरंकार भगवान अपने मोहपाष द्वारा किसी को भी इस सहज सतमार्ग के पूर्ण संत परमहंसों की शरणी में पहुंचने ही नहीं देते जो की सर्वथा सत्य से परे है। मानव अगर स्वार्थ–रहित अथ्वा बिन मांग के निरंकार भगवान की पूजा करे तो निरंकार भगवान अपने वचन से बंधे उस जीव को सहज सत्त भक्ति मार्ग के पूर्ण संत परमहंस जी की शरणी में सौंप ही देते हैं। मानव ही पूजा में माया रूपी भौतिक पदार्थ व सुख साधन मांग–मांग कर अपना सारा जीवन नष्ट कर देता है। जैसे ही जीवन में उसने कोई भी मांग मांगी नहीं कि मन अपनी कर्म व ज्ञान ईन्द्रियों को लेकर आत्म को सम्मोहित कर के उसे वषिभूत करना प्रारम्भ कर देता है। मानव तो एक नहीं अपितु अनेकों अनगिनत मांगे निरंतर मांगे ही जाता है, होश संभालने से लेकर मरने तक इन मांगों का क्रम समाप्त ही नहीं होता। मिलना तो केवल वही है जो प्रालब्ध में है, फिर यह अंतहीन मांगे मानव को सहज सतमार्ग के पूर्ण संत परमहंसों की शरणी में जाने ही नहीं देती। निरंकार भगवान तो निस्वार्थ भक्ति करने वालों को रोक ही नहीं सकते क्योंकि वे तो साहिब सतपुरूष जी से वचनबद्ध हैं जिस कारण वह निस्वार्थ भक्ति करने वालों के केवल रास्ते में ही नहीं आते अपितु भरपूर सहायक हो के उनका मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। मानव अपने आध्यात्मिक पतन के लिए स्वंय ही दोषी है। सहज सतमार्ग सत्ता निरंकार भगवान व उनके त्रिलोकि पसार से उपर की सत्ता है जो कि साहिब सतपुरूष जी की निज सतलोक सत्ता है। यह सारी की सारी त्रिलोकि निरंकार भगवान सहित सतलोक का मात्र एक अंश भर ही है। सारे साहिबन–अंश 'हंसा' सतपुरूष जी की सुरति सूं ही उपझे हैं। स्वंय निरंकार भगवान भी साहिब सतपुरूष जी के 'सब्द ध्वणि उच्चारण' से उत्पन्न हुऐ हैं और सारे का की सारा त्रिलोकि पसार भी सतलोक से चहुं ओर से घिरा हुआ है। 17 आयोजन कौड़ी वर्ष काल के समापन पर अंतिम विराट प्रलयः उपरांत अपना सारा अस्तित्व नष्ट होने पर भगवान निरंकार व त्रिलोकि पसार सतलोक में ही समा कर सतलोक ही हो जाऐंगे।

डूंढत राम फिरें वन वन में, कुछ ना आवे हाथ।
जड़ चेतन ग्रंथों के मांहि, बारम्बार जन्म मरन का साथ।।

जो शब्द हम उच्चारते, लिखते व बोलते हैं, यह शब्द ही मानव के अहम व अभिमान का कारण बनते हैं। यह शब्द ज्ञान ही मानव सभ्यता के पतन का कारण है। तभी तो इस धरा के अतिरिक्त अन्य ग्रहों, स्वर्ग–नर्क, सुन्न व महां सुन्न लोकों में यहां

तक की सतलोक में भी सारी की सारी गतिविधियां, भाव व संदेश शब्द में ना हो के सुरति सूं ही अदान प्रदान होते हैं। सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' द्वारा रचित ग्रन्थ 'अमर सागर' में सुरति का और मोत काल के उपरांत की परिस्थितियों का विस्तार से वर्णन है।

आशा तृष्णाओं को, बरसाऐं किस किस ओर।
दुख की कलियां अनसिली, देख लो चारों ओर।।

10 – मांगों से अद्योगति

मांगन मरन समान है, मत मांगो कोई भीख।
मांगन से मरना भला, सब संतन की सीख।।

समाज में प्रायः यह देखने में आता है कि पढ़े लिखे व भौतिक संसाधनों से युक्त मानव अपने ज्ञान व धन वैभव के अहम में डूबा निज को व मालिक अर्थात साहिब सतपुरूष जी को जानने का उत्सक ही नहीं होता। उत्सुकता तो दूर वह तो दान–पुण्य, यज्ञ, पूजा, भण्डारे भी अपने अहम अभिमान की तुष्टि व यशो गान हेतु ही करते करवाते हैं। हर बार इन कार्यों को करते हुए मालिक से बड़ी चतुराई से चंद पैसों की भेंट की एव्ज में लाखों करोड़ों व दुर्लभ वस्तुओं की मांगे करते रहते हैं। लोभी संसारी जन यहां तक कि दूसरों के अनहित की भी मांगें मांगने में तनिक विचार भी नहीं करते। करोड़ों में से कोई एक इन से बचा विरला ही सत्त भक्ति मार्ग पर चल पाता है।

मन सूं उठता मन सूं खाता, मन सूं करता बात।
मन सेवते कंई जन्म गंवाए, हर जीवन काली रात।।

यह मांगे ही मानव को माया के क्रूर काल जाल में फंसा देती हैं। तभी तो जीवन त्यागने वाले मानवों में से 90 प्रतिशत मानव तृष्णा वशिभूत प्रेत योनि में ही जाते हैं। बाकि सारे के सारे स्वर्ग–नर्क, सुन्न–लोक व भौग योनियों में वासा पाते हैं, कर्मों के फल की समाप्ति उपरांत फिर से जन्म–मरन के चक्र में पुनः लोट आते हैं। अपने–अपने कर्मों के अनुसार जीवात्माऐं धरा या दूसरे ग्रहों पे जन्म लेती हैं। अक्सर सारे संसार में भूत–प्रेत और चुड़ेलों के अनगिनत किस्सों के बारे में कहने सुनने को मिलता है। मोत के बाद के भेद से अनभिज्ञ मानव अपने प्रालब्ध कर्म फल बोझ तले जब जब कष्ट दुख तकलीफों को लम्बे काल तक झेलता है तो वह स्वंय अपनी करनी भरनी को भूल कर, स्वंय या किसी और की प्रेरणा से भूत प्रेतों के भ्रम में पड़ ही जाता है।

'काम' मन का मस्तिष्क जानिए, कामुक्ता वासना विषय भौग।
इनकी पूर्ती के लिए, सुर नर मुणि सबै बेहाल बिन भौग।।

ऐसा भी नहीं कि भूत प्रेत नहीं होते परन्तु अधिकतर तो सिर्फ किस्से कहानियां भर ही होती हैं। मगर अधिकतर भूत तो बिन शरीर निष्क्रिय उल्टे लटके हुए अपने सम्बंधियों के आस–पास ही रहते हैं। अपने सगे पूर्व सम्बंधियों व परिवार जनों के अंग–संग रहते हैं। यह भौग विलास करते हैं, खाते–पीते हैं और इनके संग ही रहते हैं मगर इससे अधिक वे कुछ भी नहीं कर पाते। संसार में भूतों को लेकर अधिक भ्रम, भय व तांत्रिक सिद्धियों के किस्से प्रचलित हैं। यहां तक की मानव की अधिकतर जनसंख्या में लोग तो अकेले रात के अंधेरे में भयभीत तथा भूतों के अनचाहे प्रभाव से डरे व सहमे रहते हैं, अक्सर ये लोग रात को अंधेरे में बाहर ना जाना ही उचित समझते हैं। अगर कहीं किसी कारणवश जरूरी बाहर जाना पड़ जाये तो उस वक्त ये अत्यधिक सचेत, सर्तक व भयभीत रहते हैं।

11 – कलयुग प्रेत योनि विस्तारा

साहिबा इस संसार में, सब का वैरी मोह।
जिस घर जिता धन पड़ा, ताहि घर लेता मोह।।

मन को देवी देव तुम जानों, सबै रहा भरमाई।
नर तो हंसा अमरलोक का, काल पड़ा वश आई।।

प्रेतों व भूतों (मृत प्राणी की आत्मांऐ) का अस्तित्व तो नक्कारा ही नहीं जा सकता। कलयुग में मृत्यु उपरांत 90 प्रतिशत मानव प्रेत योनि में वासा पाते हैं। 90 प्रतिशत मरने वाले मानव प्रेत बनते हैं तो फिर प्रेतों की सत्ता को कैसे नक्कारा जा सकता है ? परन्तु ये प्रचलित किस्से कहानियों से एकदम विपरीत अवस्था में होते हैं। भूत–प्रेत तो स्वयं अत्यन्त कष्टकारी व पीड़ादायी योनि में होते हैं, बिना शरीर ये प्रभाव हीन होते हैं। हां ये अपने होने का एहसास करवाने के लिए प्रयास व चेष्ठाऐं करते हैं, इससे अधिक वे कुछ भी नहीं कर पाते। अपने निज पूर्व कर्मा के फल के बोज तले इन भूत–प्रेतों से मानव डर कर भयभीत हो मानसिक संतुलन खो बैठता है, तो फिर इसमें प्रेतों का क्या दौष ? दौष तो मानव के कर्मों के फल का है। आशा–तृष्णा व अपनों से ना बिछड़ने की चाह की अत्यधिक तीव्रता तथा नीच कर्मों के फल स्वरूप, इन्हें अत्यन्त कष्टप्रद प्रेत योनि मिलती है।

माया ठगनी नागनी, खाये ते डस जाये।
तीन देव वश किये, जीव कहां को जाये।।

12 – देह दाह संस्कार महत्व

यहां एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि मृत्यु उपरांत संस्कार का महत्व अत्यधिक उल्लेखनिय है। पंच तत्व के शरीर को इस प्रकार से पंच तत्वों में विलीन किया जाये ताकि मृत देह का किसी भी प्रकार का दुष्प्रभाव व दुरूपयोग ना हो। शरीर को मृत्यु उपरांत पंच तत्वों में विलीन करने की सबसे उपयुक्त पद्यति 'दाह संस्कार' है। दाह संस्कार के उपरांत पंच तत्व (अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश) अपने–अपने तत्वों में तुरन्त विलीन हो जाते हैं जिससे अवगति को प्राप्त जीवात्माऐं भी शरीर मोह से मुक्त हो जाती हैं तथा अपने निर्धारित गणतव्य की ओर प्रस्थान करती हैं। मृत देह को दफ़नाना, जल समाधि अथ्वा जल में प्रवाह कर देना व पशु पक्षियों के खाने के लिए शरीर को लटका देने की प्रथाऐं जीव के लिए श्रेष्ठकर कदापि नहीं हैं अपितु अनहितकारी हैं। दुष्ट जीवात्माऐं वहीं अपने देह के आस पास भटकती रहती हैं तथा काया मोह वश अपनी मृत देह में पुनः प्रवेश हेतु प्रयासरत रहती है। जीवात्मां जिस शरीर में वर्षों से वास करती रही तथा जो देह उसके सुख–दुख का जीवन भर साक्षी रहा उसका मोह वो त्याग ही नहीं पाती, जिस कारण वह प्राणों के संग ना जाकर शरीर के आस–पास ही मंडराती है तथा अपने आप को शरीर में प्रवेश कर स्वंय को अति कष्टमय अवस्था में पाती है। कोई भी मृत देह जीवात्मां के रहने योग्य होता ही नहीं तथा इसके अत्यधिक विकार–युक्त होने के कारण ही जीवात्मां शरीर का परित्याग करती है अर्थात मृत्यु को प्राप्त होती है। इसी विकार से भरे मृत–शरीर में प्रवेश करने की वजह से जीवात्मां अति कष्ट व दुखों में अपने आप को पाती है तथा दौबारा इसमें प्रवेश नहीं करती परन्तु इस काया का मोह त्याग नहीं कर पाती जिस के कारण जीवात्मां अति कष्ट पाती है।

जब लग पीर पराई ना जानो, प्रेम ना उपझे कोये।
कौटि बंदगी कर्म धर्म सूं, छूटे ना बंधन कोये।।

भौग योनियों में जीव सर्वदा सब कार्य प्रायः स्वपन अवस्था में ही रह के करता है क्योंकि पशु पक्षी, मछ मछली व जीव जंत कर्म सैंचित नहीं कर पाते, वे तो केवल मानव जन्म में किये गये कर्मों का फल भौगने हेतु ही भौग योनि को प्राप्त हुऐ हैं। जहां भौग काया 24 घंटों के उपरांत दुर्गंध फैलाना आरम्भ कर देती है वहीं मानव काया 72 घंटों से भी अधिक समय कुछ काल तक सुरक्षित रहती है तभी तो चिकित्सक जन इसी समय–सीमां के अंदर अंदर ही कुछ मानव अंग मृत देह से स्थानांतरण कर के दूसरी मानव देह में प्रतिरोपित कर देते हैं जहां वो अंग पुनः कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। दुर्घटनाओं से विपरीत साधारण मृत्यु होने के उपरांत लगभग 72 घंटे तक मानव काया दुर्गंध नहीं देती। भौग योनि में होने के कारण जीवात्मां इन शरीरों की तृष्णाओं में नहीं उलझती तथा मृत्यु उपरांत अपने कर्म अनुसार तुरन्त दूसरी योनि के गर्भ में जा समाती है जिससे पशु पक्षी, कीट पतंगों व जल धारियों की काया तंत्र मंत्र व तांत्रिकों के किसी काम की नहीं होती।

13 – प्रेत योनियां

जीव मृत देह थिर पड़ा, अंदर बाहर दुर्गंध फैलाए।
जलाऐं बहाऐं फूकें दफ़नाऐं, पंच तत्व निज मूल समाऐं।।

शरीर को दफ़नाने की प्रथा में शरीर कईं दिनों तक धरती के अंदर सुरक्षित रूप में होता है जिस कारण वातावरण में असंख्य भटकती हुई दुर्जीव आत्माऐं इनमें प्रवेश कर जाती हैं, इसी कारण कब्रस्तानों में अजीब सी रूग्न भरी आवाज़ें अक्सर सुनाई देती हैं जिससे आकर्षित हो के कईं प्रकार के नरभक्षी जीव जंतु चले आते हैं। जिससे आस–पड़ोस की बस्तियों में बड़ी दहशत फैल जाती है व अनेकों बिमारियों के फैलने का अंदेशा बना रहता है। अताताई प्रवृति वाले मृत मानव (कसाई, हत्यारे, अत्यधिक मांस–मंदिरा को सेवन करने वाले तथा पशुओं की कुर्बानी देने वाले) अपने शरीर का मोह नहीं त्याग पाने के कारण और दूसरों को अपने होने का एहसास कराने के कारण अपने मृत शरीरों में प्रवेश कर के बड़ी विचित्र और भयंकर आवाज़ें निकालते हैं परन्तु किसी प्रकार की कोई भी हलचल ना कर पाने के कारण ये अति दुखी व कष्टप्रद अवस्था में अपने आप को पाते हैं। यह अताताई जीवात्माऐं केवल अपने ही शरीर में प्रवेश कर पाती हैं। अगर कोई तांत्रिक इनकी आवाज़ों से खिंचा चला आऐ तो ऐसे तांत्रिक इन अताताई आत्मांओं को अपने वश में करके अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु दूसरों के शरीरों में प्रवेश कराने का अनुचित कार्य भी करते हैं। जो सर्व समाज के लिए कष्ट व भय का कारण बनते हैं।

मृत्यु उपरांत साधारण जगत मानव की जीवात्मां अपने गणतव्य की ओर कुछ ही समय में प्राणों संग चल पड़ती है। परन्तु ये अताताई आत्माऐं अपने किये गये कर्मफल वशिभूत ही अधिकांशता प्रेत योनि में वासा पाती हैं। अधिकांशता जंगली मांसाहारी जीव मानवों से दूरी बनाये रखते हैं तथा बस्तियों में कभी भी ये प्रवेश नहीं करते। अगर एक बार ये मांसाहारी जीव मानव की काया का स्वाद चख लें तो इनके अंदर खूंखार प्रवृति उत्पन्न हो उठती है और आक्रात्मकता वश मानव बस्तियों पे हमला करना प्रारम्भ कर देते हैं जिससे जगत प्राणी अक्सर भयभीत हो जाते हैं। कंई बार दुर्घटनाओं में मृत्यु होने पर शरीर के क्षत–विक्षत होने के कारण अथ्वा किसी और कारण वश ये क्षतिग्रस्त शव अगर बिना संस्कार के मानव बसती के आस–पास रह जायें तो साधारण मांसाहारी पशुओं (कुत्ता, बिल्ली, गिद्ध, सयार आदि) के नरभक्षी होने का खतरा बना रहता है। सबसे उत्तम प्रथा तो दाह संस्कार ही है परन्तु सनातन पद्यति में दाह संस्कार और दफ़नाना दोनों प्रथाओं का प्रचलन है। साधारण जग मानव की देह अत्यधिक मायावी होने के कारण दफ़नाने के उपरांत भी प्रेत आत्माओं के आकर्षण का कारण बनी रहती है। इसलिए साधारण मृत मानवों की काया का दाह संस्कार ही सबसे उत्तम व श्रेष्ठ प्रथा है। जो साधु, संत व सिद्ध–पुरूष पूजा–ध्यान में सलग्न रहते हैं मृत्यु उपरांत उनकी देह में मायाधारी प्रेत प्रवेश कर ही नहीं पाते तथा इसी कारण उनकी समाधियां इन प्रेतों से मुक्त रहती हैं। बहुत से दम्बी जो अपने जीवन काल में पूजा–पाठ तो करते हैं परन्तु अंताकरण में लोभ, द्वैष व काम की भावना से सदा भरे रहते हैं। मृत्यु उपरांत इनकी कब्रों के आस–पास इनकी अपनी निज आत्माऐं ही भटकती रहती हैं, यही कारण है कि अहम वशिभूत ये दूसरों को परेशान करने में व्यस्त रहती हैं ताकि जगत वासी इन्हें और इनकी सत्ता को मान्यता

और सम्मान दें। इसलिए जगत मायावी मानव इन प्रेतों की पूजा करने के लिए पीरों के पास कब्रों व समाधियों पर जाते रहते हैं। इनके अनुयायी अगर इनकी पूजा करना छोड़ दें तो ये प्रेत उनको उनके सपनों में तथा जाग्रत दोनों अवस्थाओं में तंग व आतंकित करना शुरू कर देते हैं। एक बात पर सभी सहमत हैं कि श्रद्धा से देवी–देवों की भक्ति करने वाले मृत्यु उपरांत देव लोक अर्थात स्वर्ग लोक में स्थान पाते हैं, नागों की पूजा करने वाले नाग लोक में स्थान पाते हैं, ठीक ऐसे ही तांत्रिक व प्रेतों की पूजा करने वाले प्रेत योनियों में खिंचे चले जाते हैं। नाग योनियां धरती के नीचे पाताल लोक में होने के कारण जीव इस योनी के सारे का सारा जीवन कष्ट व भय युक्त वातावरण में काटते हैं परन्तु प्रेत योनि भयंकर कष्टों व क्लेशों से भरी पड़ी हैं।

जल थल मांहि जीव जंत हैं, गगन पताल भी विचरें।
सब जीव व्यापक ईक ही हंसा, काहे को इन्हें मारें ।।

कबहु कोई बनता बाप है, कबहु कौ तेरा पूत।
कबहु तो तेरा भाई है, कबहु वो तेरा दूत।।

जगत में कुछ संप्रदाये व मत्त सत्य से सर्वदा परे इस झूठे भ्रम में उलझे हैं कि मरने के बाद दफ़नाने के उपरांत प्रलयः काल आने पर मृत देह को जगाकर उनके कर्मफल का हिसाब किया जाएगा, जो सत्य से सर्वथा परे है ! जीवात्म मृत्यु उपरांत कुछ ही काल में अपने कर्मों के अनुसार गति पाता है तथा ये जन्म और मृत्यु का अंतहीन क्रम निरंतर बिना किसी बाधा के चलता रहता है।

मांसाहारी मानवा, प्रतक्षः राक्षस जान।
जो जीवों को मार खाये, वो तो प्रेत समान।।

जीवों का जो संहार करे, संवेदना मरि मरि जाये।
दूजों के जो प्राण हरे, मृत हो प्रेत योनि वो पाये।।

प्रेतों की बातें तो बहुत प्रचलित हैं, ज्यादातर तो सत्य से परे हैं पर कुछ कुछ सत्य पे आधारित भी होती हैं। प्रेतों को सात श्रेणियों में विभक्त किया गया है। प्रेत योनि अपने आप में अति कष्टकारी व पीड़ादायी योनि है। प्रथम तीन श्रेणियों के प्रेत मानव का अनहित नहीं करते, हां मानव डर व भ्रम वशिभूत अपने आप को असहज पाता है। ये सभी योनियां बहुत कष्टप्रद व दुखदाई होती हैं तथा प्रेतों की आयु कम से कम एक हज़ार वर्ष से लेकर दस हज़ार वर्ष तक की होती है :–

मांस खात मंदिरा पिये, सो नर काल सताये।
जुआ खेले चौरी करे, अंत प्रेत योनि जाये।।

1 **प्रथम सूक्ष्म प्रेत :–** इस सूक्ष्म प्रेत श्रेणी में अबोध अवगतिधारी छोटे अल्प–आयु के बालक से लेकर दस वर्ष तक के बच्चे होते हैं। अल्प–आयु में मृत्यु को प्राप्त होने के कारण ये अपने पिछले जन्म के सबंधियों से अधिक मोह ना होने के कारण कटे रहते हैं। ये अक्सर तालाबों, सरोवरों, ठंडे पानी के चश्मों के आस–पास पाये जाते हैं। ये प्रेत बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं, बस कुछ ही पल नज़र आते हैं और फिर जल्द ही आंखों से ओझल हो जाते हैं। ये बड़े मासूम, सोम्य, अति मनमोहक छवि से युक्त होते हैं तथा हल्की सी रूग्नता या बच्चों की किलकारियों की सी ध्वणियां निकालते हैं। ये किसी का अनहित नहीं करते और हमेशा बच्चों के ही रूप में दिखते हैं। ये प्रेत शरमीले होने के कारण अदृष्य रहते हैं, कभी–कभार ही किसी को दिखाई देते हैं और फिर अदृष्य हो जाते हैं। इनकी आयु लगभग एक हज़ार वर्ष की होती है तथा ये अपने प्रेत काल के बीतने का बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते रहते हैं। ऐसे प्रेत यदा कदा ही अपने होने की अनुभूति अपने आस–पास रहने वालों तथा आने–जाने वाले मानवों को कराते रहते हैं।

2 **द्वित्य अक्समिक प्रेत :–** इस श्रेणी के प्रेत मानव काल में अपने किये हुए कृत्यों को लेकर लज्जित व पश्चाताप की मुद्रा में होते हैं। ये प्रेत अक्सर किन्हीं नीच कुकृत्यों व कर्मों के कारण इस प्रेत श्रेणी में स्थान पाते हैं। सूक्ष्म व अक्समिक प्रेत लगभग एक हज़ार से दो हज़ार वर्ष की आयु के होते हैं। प्रेतों के हिसाब से ये सब से कम आयु है, ये बस्तियों से दूर घने जंगलों में वास करते हैं। कंद–मूल व जंगली फल ग्रहण करते हैं। ये अक्सर मानव रूप में घने वनों में राह से भटके हुए लोगों को दिखाई देते हैं उनकी सहायता करते हैं तथा जंगली–जीवों व भटके हुए मनुष्यों का संरक्षण भी करते हैं। ये प्रेत अक्सर राहगीरों की आवश्यकता अनुसार रात भर उनके ठहरने तथा भोजन का प्रबन्ध भी कर देते हैं, समय आने पर साथी बन कर जंगल से बाहर उनके गणतव्य पथ तक छोड़ने में भी सहायक होते हैं। और उनको इनके प्रेत होने के लक्षण वा आभास, सहायता करने के उपरांत प्रेतों के तुरन्त विलुप्त व अदृष्य हो जाने पर पता चलता है। अक्सर लोगों से सुना जाता है, किसी बियाबान जंगल में रात के अंधेरे में भटक जाने पर किसी अनजानी शय तथा अन्जान मानव ने उनकी मदद की। जैसे मनचाहे गणतव्य पर पहुंचाने के उपरांत उनका यकायक अदृष्य हो जाना उनके प्रेत होने का आभास कराता है। ये अक्सर मानव के ज्यादातर सहायक ही सिद्ध होते हैं अथ्वा किसी को भी प्रताड़ित तथा भयभीत नहीं करते क्योंकि ये तो स्वंय पश्चाताप की अग्नि से पीड़ित होते हैं। हां आभास होने पर अक्सर मानव स्वयं भयभीत व कुछ काल के लिये अति सजग व सतर्क अवश्य रहते हैं।

3 **तृत्य श्रेणी ध्यानी प्रेत :–** इस श्रेणी में प्रेत आत्मां बड़े ही श्रेष्ठ व पूजा पाठी मानव आते हैं। जो किसी श्राप वश या उच्च अवस्था होने पर महां–पाप करने के कारण इस प्रेत योनि को पा जाते हैं। ये बड़े साफ स्वच्छ प्रतिदिन स्नानधारी तथा स्वच्छ वातावरण में रहना पसंद करते हैं। ये अक्सर मंदिरों, पूजा–स्थलों के आस–पास ही वास करते हैं। कभी–कभार ये सफ़ाई, झाड़ू–पौछा करते हुए या किसी अन्य सेवा में लीन दिख जाते हैं। केवल ध्यानी श्रेणी के प्रेत ही देव–स्थलों में प्रवेश कर पाते हैं, बाकि

किसी भी श्रेणी के प्रेत देव–स्थलों से सदैव दूर रहते हैं। अगर किसी कारण वश देव स्थानों पे आ भी जायें तो अपने आप को असहज व असहाय अवस्था में पाते हैं। इसी कारण बाकी श्रेणियों के प्रेत दूर दराज़ विरानों, जंगलों व खण्डरों में वासा करते हैं। ये दिन के समय में बहुत ही कम बल्कि ना के बराबर ही दिखाई देते हैं, ये अक्सर रात को सूर्य ढलने के उपरांत और प्रातःकाल सूर्य उद्‌य से पहले ही नज़र आते हैं। ध्यानी श्रेणी के प्रेत मानव के मददगार व सहायक होते हैं, बहुत कम पर सा–सामर्थ व आध्यात्मिक उच्च अवस्था प्राप्त लोग ही इन्हें जान और पहचान पाते हैं। ये, ध्यानी श्रेणी के प्रेत सब प्रेतों में से कम आयु बस लगभग एक हज़ार वर्ष तक ही प्रेत योनि में रह कर इस योनि से मुक्त होकर मनुष्य जन्म पाते हैं। सभी प्रेतों में से ध्यानी प्रेत ही केवल श्रेष्ठ व मानवों के सहायक सिद्ध होते हैं। ये बहुत ही कम किसी से वार्तालाप करते हैं। ये अपने मनुष्य योनि में किये हुए नीच व घृणित कार्यों के प्रति सजग व सचेत होते हैं और सदैव पश्चाताप के भाव से ग्रसित रहते हैं जिस कारण वे जन–मानस के सामने होने से परहेज़ करते हुए तथा अपनी योनि की ग़ल्तियों को जानते हुऐ प्रेत योनि का काल व्यतीत अर्थात समय समाप्ति की बाट जोतते हुए सेवा में लगे रहते हैं।

4 **चतुर्थ रिद्धी–सिद्धी श्रेणी के प्रेत** :– इस श्रेणी में वे मानव मोत के उपरांत वासा पाते हैं जो जीवन काल में अति धाण्डय, बलशाली और रिश्वतखोर या किसी रिद्धि–सिद्धी के स्वामी होकर असहाय मानवों से नीच से नीच कर्मों को कराते हैं। ये जीते जी सर्व समाज पर अपना भय–युक्त वातावरण या रिद्धी–सिद्धी के प्रभाव वश साधारण कमज़ोर व अधीनस्त लोगों का शोषण करते और उन पर अत्याचार करते हैं। अपने इन्हीं अत्ताताई कर्मों के कारण वे इस प्रेत योनी में आ जाते हैं। इस श्रेणी के प्रेत ऐकांतवास पसंद करते हैं, साथ ही किसी भी मानव या जीव का अपने आस पास हस्तक्षेप सहन नहीं करते और अपना रूद्र व भयानक रूप दिखा के सब को भयभीत कर अपने से दूर कर देते हैं। इस श्रेणी के प्रेत अक्सर दूर–दराज़ के ऐकांत खण्डरों में वास करते हैं। ये मानव को नज़र नहीं आते परन्तु अपने कृत्यों से दूसरों को भयभीत व पशोपाष में डाल कर मरनोसन्न अवस्था में पहुंचा देते हैं। चूंकि ये अपने समीप किसी भी जन मानस को देखना भी पसंद नहीं करते परन्तु अपने पूर्व जन्मों के संस्कार वश ये उनकी कीमती वस्तुओं का संग्रह करने को आतुर रहते हैं, हांलाकि ऐसे प्रेत किसी भी वस्तु का स्वंय के प्रयोग करने को असमर्थ होते हैं परन्तु लौभ वश फिर भी उन वस्तुओं के सरंक्षण में ही लगे रहते हैं। ये दूसरों को भयभीत तो कर सकते हैं पर इससे अधिक कुछ भी कर पाने में असमर्थ होते हैं अथ्वा किसी का भी कुछ अहित नहीं सकते। पिछले जन्मों के कर्मों के कु–प्रभाव वश इस श्रेणी के प्रेत अति कुण्ठित, कष्टप्रद व मानव जन्म की विलासता को याद कर के अति विचलित रहते हैं। इनकी आयु लगभग दो हज़ार वर्ष से पांच हज़ार वर्ष के बीच की होती है। किसी की खुशियों से जलते तथा अनचाही बातों को लेकर ये अक्सर कुण्ठा व ईर्षा के मारे अति घौर कष्टप्रद अवस्था में स्वयं को पाते हैं।

5 **पंचम श्रेणी उल्टे लटकने वाले प्रेत** :– इस पंचम प्रेत श्रेणी में वे मानव मृत्यु उपरांत वासा पाते हैं जो निशाचर प्रवृति अर्थात रात को चौरियां, डाके, दुराचारी, व्यभचारी, घौर नशा करने वाले नशेड़ी, नीच से नीच प्रवृति युक्त, दम्भी व लोमड़ी स्वभाव वाले चतुर मानव, सब से घटिया काम करते हुए भी मानव समाज में सभ्य होने का दम भरते रहते हैं। ऐसे घृणित कार्य करने वाले मानव, उल्टे लटकने वाले प्रेत योनी में वासा पाते हैं। इस योनी के प्रेत अक्सर पेड़ों पर उल्टे लटकते हुऐ मिल जाते हैं। ये अक्सर अपने

मानव जीवन काल के घरों के आस–पास बरगद, पीपल व पुराने घनिष्ट वृक्षों पर ही मोह वशिभुत सारा प्रेत काल बिता देते हैं। ये अपने रिश्तेदारों, नातेदारों को आते–जाते देखते और निहारते हुए उनके सुख–दुख को महसूस करके स्वंय भी सुखी और दुखी होते रहते हैं। असमर्थता वश ये उनके किसी भी काम में सहायता न कर पाने के कारण दूर से ही देख–देख कर अपना सारा प्रेत योनी काल व्यतीत कर देते हैं तथा अति घौर कष्ट में भूख–प्यास से विचलित हो तड़प–तड़प कर अपना समय व्यतीत कर देते हैं। बरसात के समय में ही ये प्रेत जल ग्रहण कर पाते हैं क्योंकि उल्टे लटके होने के कारण इनका मुख उपर की ओर खुला होता है अथ्वा पेड़ों के आस–पास जब भी कोई मानव–जन जल चढ़ाते हैं तो भी ये जल ग्रहण कर लेते हैं। हां कभी–कभार ही इनके लिए संकल्प किया हुआ भोजन इन्हें प्राप्त होता है, श्रादों के दौरान भी संकल्प किया हुआ भौजन व जल ये ग्रहण कर पाते हैं अन्यथा ये भूखे प्यासे ही व्यथित रहते हैं। इस योनी में ये घौर कष्ट व असहायप्रद स्थिती में अपना सारा प्रेत काल व्यतीत करते हैं। ये अति लम्बी आयु लगभग आठ हज़ार वर्ष के होते हैं जिसके उपरांत ये फिर से भौग योनियों में जन्म लेते हैं।

6 छठी श्रेणी तामसी प्रेत :– इस श्रेणी में घटिया व निम्न से निम्न कर्म करने वाले, नीच प्रवृति के आलसी व दूसरों को ना सहन करने वाले लोग होते हैं। जिनकी कथनी व करनी में कभी कोई मेल नहीं होता। केवल दिखावे भर के लिए समाज व परिवार में श्रेष्ठ व सभ्य बने रहते हुए तथा जगत में दूसरों का अनहित करने वाले मतलब–प्रस्त, स्वार्थी और हर पल चतुराई, चालाकी व कपट से अपना हित साधने वाले दम्बी, बल से अथ्वा छल से दूसरों का हक हड़पने वाले लोभी व महां–आलसी, तामसी, व्यभचारी वृति के मानव इस प्रेत योनी में मृत्यु उपरांत वासा पाते हैं। ये प्रेत घर के आस–पास किसी भी पेड़ पर तथा घरों के आस–पास तारों व ईमारतों के ना इस्तेमाल होने वाले स्थानों पर उल्टे लटके रहते हैं। उल्टे लटकने व तामसी श्रेणी के प्रेत मृत्यु के उपरांत प्रारम्भ में बहुत से तो अपने घरों में ही अपने सबंधियों के संग–संग रहते खाते–पीते व मोज मस्ती करते हैं। इनमें से बहुत से तो पूर्व जन्म के तामसी, पूर्व संस्कारों से युक्त होने के कारण भौग विलास के मज़े भी अपनों के संग लिप्त रह के भौगते हैं। अपने प्रियजनों के संग और ज्यादा नित्त नवीन सबंधी मृतकों के प्रेत जुड़ जाने के कारण तथा अपनी पहचान की वर्तमान पीढ़ी के उपरांत जब इनका कोई चाहने वाला परिवार में नहीं रहता तो ये तिरस्कृत होकर घरों को त्यागनें के लिए विवश हो जाते हैं। यह तामसी श्रेणी के प्रेत तब घरों के आस–पास स्थान बना कर वास करते हैं। (परन्तु पंचम श्रेणी के प्रेतों को प्रालब्ध–वश घरों से कुछ दूरी पर ही घने पेड़ों पर वासा करना पड़ता है)। यह तामसी वृति के प्रेत गंदे व दुर्गंध भरे होते हैं। ये अक्सर गंदे और बंद पड़े सीलन सैलाब वाले दुर्गंध भरे कमरों में वास करते हैं। ये प्रेत बंद पड़े हुए व कम प्रयोग होने वाले अंधेरे गौदामों में भी पाये जाते हैं। इस श्रेणी के प्रेत कुछ काल बीतने के उपरांत घरों से अपनी तस्वीरों के उतरने व अगली पीढ़ी द्वारा अवहेलना मिलने पर अकेलेपन का सा एहसास करते हैं तथा इसी कुण्ठा से अंधेरे एंकात में वास करते हैं। ये अपने सबंधियों के विपत्ति काल में उन्हें अपनी राय देना और उनकी सहायता भी करना चाहते हैं, परन्तु असमर्थ होने के कारण स्वंय भी ग्लानीयुक्त, कुण्ठित भाव से ग्रस्त व पीड़ित रहते हैं। इसी अवस्था में ही वे अपनी अति लम्बी आयु लगभग दो से दस हज़ार वर्ष तक के काल को व्यतीत करने पर विवश हैं। आज के वर्तमान युग में नब्बे प्रतिशत प्रेत इसी योनी में वासा करते हैं। हर एक माया वशिभूत जीवित मानव के साथ उनके मृत्यु प्राप्त सबंधियों में से ही लगभग आठ से दस प्रेत हर समय जुड़े रहते हैं। ये उन्हें अपने होने का एहसास उनके स्वपनों में आके कराते हैं, जो जितने अधिक सपने लेता है

उसके संग उतने ही अधिक प्रेत रहते हैं। ये अपना एहसास अपनों को करवाना चाहते हैं पर तामसिक वृति वश ऐसा ना होने के कारण अत्यन्त दुखी और विचलित ही रहते हैं। चूंकि कुछ भी कर पाने की असमर्थता के बावजूद भी अति लम्बे काल की अवधि लगभग दस हज़ार वर्षों के लिए इन्हें इस दयनीय पीड़ादाई अवस्था को झेलना पड़ता है जिसके उपरांत ही वे भौग योनियों में जन्म लेते हैं।

7 **सप्त श्रेणी अाताताई प्रेत** :— अाताताई श्रेणी के प्रेत बड़े क्रूर व किसी को भी भंयकर भयभीत करके मरनोसन्न अवस्था में पहुंचा देते हैं। ये वो प्रेत व चुड़ेलें होती हैं जो जीते जी कातिल प्रवृति के होते हैं तथा जीवों को मारना जिनकी आदत होती है तथा जिन्होंने बहुत यातनाओं के उपरांत अपने प्राण तजे हों, वे जीव ही इस घौर अाताताई प्रेत योनी में प्रवेश पाते हैं। इस श्रेणी के प्रेत दानव, भंयकर आकृति वाले प्रेत व महां—क्रूर चुड़ेलें होती हैं। इन्होंने मृत्यु से पूर्व दूसरों को अति भंयकर कष्ट दिये होते हैं तथा स्वंय भी झेले होते हैं। बहुत कम श्रेणी के आत्मदाह करने वाले जीव भी इस प्रेत योनी में वासा पाते हैं। अपने जीवन काल में प्रेत सिद्धियां करने वाले तांत्रिक, महां—घृणित कार्य करने वाले अाताताई मानव, जो मरने से पहले लगभग तीन से पच्चीस वर्ष तक बिस्तर पर पड़े—पड़े तड़पते रहते हैं, मरनों उपरांत इसी श्रेणी की प्रेत योनी में खिंचे चले आते हैं। इनको मरने से बहुत काल पहले ही प्रेत योनी का पूर्वाभास होने लगता है। इनको अक्सर भंयकर आकृति वाले भूत, डायन व चुड़ेलें तथा पूर्व मृत्यु प्राप्त सबंधी मरने से बहुत पहले ही दिखने लग जाते हैं। कुछ तो मरने से पहले ही इनके संगी होकर अंतकाल में मासाहार, मंदिरापान व जगत भौग की पिपासा शांत कराने को कहते हैं। ऐसे प्राणी प्रेत योनियों के संग मृत्यु से पहले ही हो लेते हैं तथा मरने वाला अक्सर मृत्यु से पूर्व उन प्रेतों संग भ्रमण करने का प्रसंग कहते हुए दिखता है। ऐसे मानव कंई वर्षों तक बिस्तर पर पड़े—पड़े अत्यधिक कष्ट व रोगों को भौगते, सहते, गिड़गिड़ाते हुए मौत को मांगते हुए दिखते हैं।

परन्तु तांत्रिक व प्रेत सिद्धियां करने वाले अघोरी बाबे बिस्तर पर बहुत वर्षों तक कष्टप्रद रोगों को झेलने के बाद भी प्राण नहीं तज पाते, जिन प्रेतों या चुड़ेलों को इन्होंने सिद्ध किया होता है, उनको किसी दूसरे तांत्रिक या किसी अपने साधक—सबंधि को, जब तक ये अघोरी बाबे व तांत्रिक सौंप नहीं देते तब तक वो प्राण नहीं तज पाते। जो ऐसा ना कर पायें उनको जीते जी मृत्यु से पूर्व ही शरीर में कीड़े पड़ जाते हैं तथा दुर्गति उपरांत शरीर तजते ही वे सीधे प्रेत बन जाते हैं। ये प्रेत स्वंय घौर कष्टधारी व दूसरों को भयंकर आकृतियों से भयभीत करके उनके प्राण हरने से भी नहीं कतराते। ये मानसिक तौर पर कमज़ोर व अति असहाय और निर्बल मानवों में भी प्रवेश कर जाते हैं। ये प्रेत बस्तियों से दूर विरान बंद पड़े कूपों व घने जंगलों के मध्य बसे खण्डर तथा दूर दराज़ रेगिस्तानी खण्डरों में वासा करते हैं और घुप घने अंधेरों में सारा दिन गुज़ारने के उपरांत अर्धरात्री से सुबह प्रभात बेला पूर्व काल तक में बहुत अधिक सक्रिय हो जाते हैं। तांत्रिक अपनी रिद्धि सिद्धियों द्वारा इन प्रेतों को अपने वश में कर लेते हैं तथा निज स्वार्थ सिद्धि हेतु वे इन प्रेतों को किसी भी जीवित मानव में प्रवेश करा देते हैं।

मनो—चिकित्सक स्वयं तो अंतःकरण में भूत—प्रेतों से डरते हैं व उनकी सत्ता का आभास करते हैं परन्तु व्यवसाय वशिभूत तथा वेज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार भूत—प्रेतों के

अस्तित्व को सिरे से ही नक्कार देते हैं। 90 प्रतिशत मनो–चिकित्सक स्वंय अधेड़ बुढ़ापे की अवस्था में दिमागी तौर पर विक्षिप्त हो जाते हैं। ये चिकित्सक अपने घौर ग्रस्त मनोरोगियों को कभी भी पूर्णतः ठीक नहीं कर पाते, हां कुछ नशे से युक्त दवाईयों का प्रयोग करके और उनका दिमाग सुन्न करके अस्थाई रूप से थोड़ी राहत अवश्य पहुंचा देते हैं। प्रेतों से पीड़ित मनोरोगी कभी भी चिकित्सकों के ईलाज से पूर्णतः स्वस्थ नहीं हो पाते। उदाहरणतः जैसे तीसरी अवस्था के कैंसर रोगी अधिकतर कभी भी इन चिकित्सकों से ठीक नहीं होते, परन्तु अपने व्योपारिक स्वार्थ व धन के लौभ वश इनका उपचार निरंतर उनकी मृत्यु तक करते ही रहते हैं। ठीक वैसा ही मनोरोगियों के संग भी होता है। अताताई श्रेणी के प्रेतों के आस–पास होने के लक्षण जैसे साधारण मानवों का एक दम से सिर भारी होना, सांस अस्त–व्यस्त होना तथा घबराहट महसूस होना तथा असहनिय अनोखी दुर्गंध का सा आभास होना है। इन अताताई प्रेतों के निवास के आस–पास कोई पशु पक्षी भी नहीं दिखाई देते क्योंकि ये प्रेत उन्हें अपने निकट होने को भी सहन नहीं करते, हां छोटे–छोटे चंद कीट पतंगे ही इनके आस–पास मंडराते दिखाई देते हैं। इस श्रेणी के प्रेत स्वंय भी अति कष्ट पूर्ण असहनिय व विचलित स्थिति में होते हैं और इसी कारण दूसरों को भी अत्यधिक कष्ट व दुख तकलीफें देते हैं।

अताताई श्रेणी के प्रेत पांच से दस हज़ार वर्ष की लम्बी आयु की इस योनी को भोगने के उपरांत गहरे सागर व पाताल लोक की भौग योनियों में जन्म लेते हैं। इस योनी के प्रेत सब प्रेतों में से सबसे दीर्घ आयु के व अधिक कष्टप्रद अवस्था में होते हैं। ज्ञात रहे मनुष्य व बाकी भौग योनियों में जीव गर्भ द्वारा ही जन्म लेते हैं परन्तु प्रेत योनियों में जीव मृत्यु पश्चात सीधे ही प्रवेश पाते हैं और फिर बहुत लम्बे काल तक यहां कष्ट झेलते रहते हैं। अताताई चुड़ेलें व प्रेत सुख का अनुभव कभी नहीं कर पाते तथा दूसरों को कष्ट में देख स्वयं राहत महसूस कर लेते हैं।

यह संसार काल का देसा, कर्मन जाल पसारा।
सभी अटके माया जाल में, ना छूटे काल पसारा।।

14 – त्रिलोकी में सबसे कष्टप्रद अवस्था

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के प्रवचनों के अनुसार इन प्रेतों से भी अत्यंत कष्टप्रद वो आत्माऐं हैं जो कंई प्रलयों से अपने कर्मफल के निस्तार की प्रतीक्षा में सिल पत्थर हुई भूख–प्यास से पीड़ित कष्टप्रद अवस्था में हैं। ये वो आत्माऐं हैं जिन्होंने अपनी ईच्छानुसार आत्म–हत्या एवमः सामूहिक हत्या को जगत में निज स्वार्थ पूर्ती व किसी भी प्रकार के दबाव में आकर अंजाम दिया होता है। ऐसी जीवात्माऐं समय से पहले अधोगति को प्राप्त हो अपने कर्मों के लेखे–जोखे के लिए यमपुरी में चित्रगुप्त जी के समक्ष प्रस्तुत नहीं हो पाती। इसी कारण से ये अधोगति प्राप्त जीवात्माऐं अपने कर्मफल निस्तारे की प्रतीक्षा में चित्रगुप्त द्वार पर हज़ारों वर्ष बीत जाने के कारण सिल पत्थर सी हो चुकी हैं। इनकी अवस्था प्रेतों की अवस्था से भी अधिक दयनीय व कष्टप्रद है जबकि प्रेत योनियों को संसार में सबसे नित्कृष्ट माना जाता है। इस सत्य को सर्वथा ध्यान में रखें कि कोई भी भौग योनि

कर्मफल अनुसार भौग भौगने के लिए ही मिली है फिर चाहे वो मानव अथ्वा पशु योनि ही क्यु ना हो ! हां मानव योनि प्रालब्ध भौगने के साथ–साथ कर्म के लिए स्वतंत्र है, फिर चाहे मानव, भक्ति करके आवागमण से छुट जाऐ अथ्वा विषय, काम, वासना व भौगों आदि में इस अनमोल दुर्लभ जीवन को व्यर्थ ही गंवा दे ! परन्तु मानव देह का परित्याग अर्थात आत्म–हत्या ही जीवात्म को इस घौर कष्टप्रद सिल–पत्थर जैसी अवस्था में ले आती है।

हां आत्म हत्या करने वाले मानव भी दो श्रेणियों में विभक्त हैं। एक वो जो किसी दूसरे का परहित ध्यान में रख कर जीवन त्यागते हैं अथ्वा जीवन यापन न कर पाने की परिस्थितियों से तंग व दुखी हो के आत्म दाह कर लेते हैं। ऐसी जीवात्मांऐं दीर्घ काल के लिये घौर नर्कों के लिये प्रस्थान करती हैं। सर्वदा ध्यान रहे प्रालब्ध में सुख सैंचित ना हों तो जीते जी भी मानव अति दुख भौगते हैं, अगर मानव आत्म दाह कर के अपने प्राण तजे तो भी नर्क योनियों में घौर कष्ट व दुख भौगते हैं। किन्हीं भी परिस्थितियों में आत्म दाह तो जीवों के लिये सदैव हानिकारक व अत्यंत कष्टप्रद ही सिद्ध होता है। दूसरे वो आत्म हत्या करने वाले मानव जन जो स्वेच्छा से आत्मदाह करते हैं और जिनके पास जीविका के संसाधनों की कमी नहीं होती, ऐसे दम्भी, अहमी व महां स्वार्थी आत्महत्या करने वाले मानव सिल पत्थर बन कर प्रलयः काल तक घौर कष्ट पाते हैं। इन सिल पत्थर बनी जीवात्मांओं की दुर्दशा इस संपूर्ण त्रिलोकि जगत में सबसे कष्टप्रद अवस्था है।

मानव काया में कर्म स्वतंत्रता के कारण इसे अनमोल व दुर्लभ तन कहा गया है। देवी–देव तथा भगवान निरंकार स्वयं भी मानव तन को पाने की तीव्र अभिलाषा अपने अंदर समोहे हुए हैं परन्तु इन सबको ये दुर्लभ तन तो कभी भी मिल ही नहीं सकता। हां ! एक मानव देखो जो कि इसकी महत्वता को समझना ही नहीं चाहता और इस दुर्लभ अवसर को कौड़ियों के भाव व्यर्थ ही गंवा देता है।

है ईच्छा देवताओं की, हम भी नर तन पायें।
हम मानव जीवन, व्यर्थ में ही गवायें।।

15 – जगत गुरू व मत्त मतांत्तर

परम हंस सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :– एक सर्वमान्य सत्य सदा ज्ञात रहे कि मृत्यु लोक में ही धर्म, संप्रदाये व मत्त मत्तांतरों के लबादे प्रचलित हैं, जीव जैसे ही शरीर तजता है ठीक वैसे ही वह इन सब बंधनों से विमुक्त हो जाता है। स्वर्ग–नर्क (जन्नत–जहन्नुम), सुन्न–महांसुन्न लोकों में हर ओर सुरति प्रसार ही प्रसार है और जगत में मनुष्यों द्वारा वाणी से बोली जाने वाली अनगिनत भाषाऐं शब्दों से भरी पड़ी हैं। ये शब्द–ज्ञान ही ईन्सान में अहम का कारण बनता है जिससे जगत में सारे द्वंद व दुरःग्रह पनपते हैं तथा सुरति अक्षर व शब्द–विहीन भाषा है जिसका प्रसार इस मृत्यु लोक को छोड़ के स्वर्ग, नर्क, सुन्न, महांसुन्न और यहां तक कि सतलोक में भी सुरति

प्रसार ही है। यह शब्द–ज्ञान ही है जिसे सुन व बोल कर ग्रहन करने उपरांत जीव मृत्यु लोक में अहम, अभिमान तथा द्वेष की भावना से ग्रसित हो जाता है। इस शब्द ज्ञान से ही सृष्टि् में माया का पसार है और यही शब्द–ज्ञान ही अलग–अलग ग्रंथों में वर्णित होके एक मानव का दूसरे मानव की दूरी का कारण बन रहा है। इस मृत्यु लोक के ईलावा कहीं भी शब्द अथ्वा वाणी का प्रयोग नहीं होता है बाकी सब लोकों में सुरति पसार ही है जिस कारण यहां मृत्यु उपरांत प्रत्येक प्राणी सुरति का प्रयोग करते हुए राग, द्वेष से विमुक्त हो कर सब मिलकर प्रेम प्रीत से रहते हैं।

यह मृत्यु लोक कर्म भूमि है, इसके अधीन ही सभी धर्म संप्रदाये व मत्त मत्तांतर हैं। निरंकार स्वयं सनातन स्वरूप हैं जिस कारण जगत में केवल बस केवल सनातन ही एक मात्र धर्म है तथा हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध व अन्य सभी समुदाये अथ्वा मत्त ही हैं जिनका धर्म से दूर–दूर तक भी कोई सबंध नहीं होता। सत्य सनातन धर्म में सब एक सूत्र से बंधे हैं और ईक–मिक ही हैं। किसी का किसी से कोई वैर, द्वेष व विरोध नहीं है। वसुदेव कटुम्बकम की भावना ही सत्य सनातन धर्म का मूल है। सत्य सनातन धर्म में हर प्राणी जो ईश्वर को मानता हो अथ्वा उसकी सत्ता से विमुख ही क्युं ना हो, आस्तिक व नास्तिक, सत्य व झूठ तथा किसी भी पद्य्ति से किसी की भी पूजा अराधना भक्ति ईबादत करने की उसे पूर्ण स्वतंत्रता है, तभी तो निरंकार भगवान को मानव जिस भी रूप में उन्हें पूजें–ध्यायें व सज्जदे करें, वे उसे उसी रूप व भाव में प्रकट हो के उसकी मनोकामना पूर्ण करते हैं।

पूजा पाठ ग्रंथ कहानी, सबै जीव मति भरमानी।
भक्ति तृष्णा पूर्ती साधन, जो पावे वही छूट जानी।।

कोई भी मानव चाहे ईश्वर को माने या ना माने वह जड़, चेतन, पेड़, पर्वत, गुफ़ा, कंधराओं, सागर, साकार मूर्ती–रूप, ग्रह, नक्षत्रों, अवतारों, पैग़म्बरों, शहीदों, गुरूओं, संतों, महात्मांओं, फ़कीरों, यक्षों, किन्नरों, नागों, राक्षसों, सत्तियों, प्रेतों, पीरों, आध्यात्मिक पुस्तकों व ग्रंथों अथ्वा चाहे किसी भी अन्य रूप में उन्हें पूजने, मानने व उनकी भक्ति आराधना करने में वह पूर्णता स्वतंत्र है। इसके विपरीत बहुत से मत्त, संप्रदाये, ईश्वर को निराकार रूप में उनकी पूजा व आराधना करने के लिए भी स्वतंत्र हैं। मानव मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारे, चर्च, धाम, तीर्थ, मक्का व काबा कहीं भी जाये तथा गृहस्थी बन कर घर में रहे अथ्वा सन्यासी, योगी, यति, पीर–फ़कीर बन कर घर बाहर त्याग कर जंगल, गुफ़ाओं में ध्यान, योग, आराधना, या सज्जदे कर के शीष नवाये, मानव इन सब के लिए स्वतंत्र है। ये सारी पुजाऐं, आराधनाऐं, वंदनाऐं तथा सज्जदे निरंकार भगवान ही की पूजा है।

इस जगत में तथा पूरे के पूरे ब्रह्मण्ड व सारी त्रिलोकि निरंकार द्वारा ही रचित है। एक विचित्र व आलोकिक बात यह है कि निरंकार ही देवी–देवों, ईष्टों और आराध्यों में समाया है, यही निरंकार ही सृष्टि् की समस्त जड़ वस्तुओं, पेड़–पौधों, तालाबों, सरोवरों, नदियों के संग–संग सागर में भी समाया है। निरंकार महिमां यहीं पे समाप्त नहीं होती, उन्होंने तो जीव आत्मांओं को भिन्न–भिन्न 84 लाख प्रकार की योनियां प्रदान की, जैसे पेड़, पर्वत, वनस्पतियां, जलचर, थलचर व नभचर आदि। इन सब का विस्तार इस धरा के ईलावा अनगिनत और लोकों में भी किया गया है। इतना सब कुछ करने के उपरांत भी निरंकार

भगवान ने हर जीव के अंदर स्वयं को 'मन' रूप में स्थापित कर दिया क्योंकि निरंकार भगवान आत्म की सुरति सामर्थता से भलि भांति परिचित हैं। आत्म तो अपने आप में ही इतनी शक्तिशाली है कि उसे वश में किया ही नहीं जा सकता। बड़े कुशलता पूर्वक ढंग से निरंकार भगवान ने अपने आप को मन और प्रलोभन से युक्त इस मोहनी माया के रूप में जीवों की काया के भीतर स्थापित किया है ताकि जीवात्म सदैव के लिए अपने निज स्वरूप को पहचान ही ना पाये। प्रथम सृष्टि् रचना काल से आज के वर्तमान काल तक आत्म मन माया से ग्रसित भ्रम में डूबा निज हंसा रूप को भूला बैठा है। इस क्रूर काल–जाल के त्रिलोकि संसार में यूं तो अनगिनत साधु, संत, सन्यासी, महात्मां, पीर, पैगम्बर, अवतार, औलिये और सतगुरू हुऐ जिन्होंने जीव को आध्यात्मिक राह अर्थात मोक्ष मुक्ति मार्ग की ओर चलने को प्रेरित किया, परन्तु जगत के अधिकांशता गुरूआजन और आध्यात्मिक मार्ग प्रदर्शकों ने मन–रूपी देवी–देवताओं की भक्ति में, मन–रूपी जगत संसाधनों व भिन्न–भिन्न विधि विधानों द्वारा जीव को भ्रमित कर दिया। जगत गुरूजन निरंकार की ही सगुण अथ्वा निर्गुण रूपों की भक्ति की ही प्रेरणा अपने–अपने अनुयायियों को देते हैं। सगुण अथ्वा निर्गुण भक्ति 'मन अर्थात निरंकार' भगवान की ही भक्ति है। भक्ति चाहे हम देवी–देव व जग पदार्थों के रूप में किसी भी विधि से करें, ये तो अप्रतक्षः रूप से निरंकार की ही भक्ति कहलाती है तथा निरंकार भगवान हम्हें अपने–अपने ईष्ट रूप में ही दर्शन देते हैं। अप्रतक्षः भक्ति के विपरीत अगर हम निर्गुण सुन्न–रूप में अथ्वा बिना किसी आकार के ध्यावें, भक्ति अर्थात सजदे करें, ये प्रतक्षः रूप से निरंकार भगवान ही की भक्ति है। इन दोनों ही भक्तियों में मांगी गई मांगों को निरंकार भगवान स्वयं ही सुनते और प्रालब्ध अनुसार पूर्ण करते हैं। जगत जीवों द्वारा भक्तियों में जगत भौतिक पदार्थों की मांगे मांगना ही उनके आवागमण का कारण बनती हैं तथा निस्वार्थ निष्काम भाव से निरंकार की किसी भी रूप में सगुण–निर्गुण भक्ति की जाये तो निरंकार भगवान स्वयं ऐसे निस्वार्थ भक्ति करने वाले भक्तों को सहज सत्तमार्ग के पूर्ण सतगुरू की शरणी में मोक्ष अर्थात पूर्ण मुक्ति हेतु भेज देते हैं क्योंकि ऐसा करने के लिए स्वयं भगवान निरंकार सतपुरूष जी से वचनबद्ध हैं। निरंकार भगवान की भक्ति द्वारा स्वर्ग–नर्क, सुन्न लोक अर्थात अल्प मुक्तियां तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष से जीव वंचित रह जाता है। निरंकार की महिमां इतनी अधिक है कि उन्होंने हर प्राणी व जीव के इस धरा पर रहने, खाने–पीने और उसके जीवन–यापन के लिए आवश्यक व उचित व्यवस्था का प्रबन्ध पहले से ही सुनिष्चित कर के रक्खा है।

निरंकार सब दे रहा, हवा अग्नि अन्न पानी बिन दाम।
वह ही देवी देव भगवान, आत्म वश में किया देई माया धाम।।

निरंकार को पूजने वाले जगत गुरूजन निरंकार को भिन्न–भिन्न नामों से सम्बोधित करते हैं जैसे ऊँ, औंकार, निराकार, निरंकार, काल निरंझन, कर्ता पुरख, ज्योति निरंझन, महांकाल, सृष्टि् रचियता, ईश्वर, खुदा, अल्लाह, अलख निरंझन तथा और भी ऐसे कंई नामों से उन्हें स्मरण किया जाता है। निरंकार दायरे के गुरूजनों की महत्वता अति श्रेष्ठ होती है, परन्तु वह जीव को अल्प मुक्तियां तो दिला सकते हैं परन्तु पूर्ण मोक्ष से वह स्वयं वंचित होते हैं तो दूसरों को वे कैसे मुक्त करा सकते हैं ? निराकार दायरे के गुरूजन भी अति श्रेष्ठ होते हैं तथा अपने श्रद्धावान व पूर्ण समर्पित अनुयायियों को उनके ईष्टों के लोकों तक पहुंचा ही देते हैं, ऐसे गुरूजन अपने निज आध्यात्मिक अनुभवों से ओतप्रोत होते हैं परन्तु उनके द्वारा स्थापित गद्यियों पर उनके अपने सबंधियों व साधकों के विराजमान होने पर इन

संस्थाओं व गद्यियों की महानता कम से कमतर होती चली जाती है। अधिकांशता इन गद्यियों पे विराजमान संसारिक राग द्वेष, काम वासना, और लोभ मोह से ग्रसित होते हैं। ऐसा प्रायः सब गद्यियों के साथ होता है, एक दो गद्यी–नशीनों के बाद वो लोग गद्यियों पे विराजमान हो जाते हैं जिनका कुछ भी निज आध्यात्मिक अनुभव नहीं होता। ऐसे लोग प्रवचन तो करते हैं परन्तु अंतःकरण में वे स्वंय माया से ग्रसित ही होते हैं जिनके अनेको उदाहरण प्रायः देखने व सुनने में आते हैं। अधिकांशता गद्यियां इनमें से बहुत प्रचलित हो फलती–फूलती प्रतीत होती हैं परन्तु ये गद्यीधारी असलियत में गुरू ना हो के मात्र एक प्रबन्धक की भूमिका ही निभा रहे होते हैं। इन्हें गद्यी संचालक, महाराज, महंत और बाबा कहना ही उचित होता है क्योंकि ये स्वयं मोह माया से ग्रसित अपने किसी भी निज अनुभव के अभाव के चलते कोई भी प्रवचन प्रचार नहीं कर पाते और अगर करते भी हैं तो वह मात्र एक छलावा भर ही होता है। जो कुछ भी उन्होंने कहीं ग्रंथों पोथियों में पढ़ा या दूसरे अन्य प्रचारकों से सुना होता है उसी का ही प्रचार प्रसार वे आगे करते हुए दिखते हैं। अपने ईष्टों को श्रेष्ठ सिद्ध करने के उपलक्ष्य में सभी मर्यादाओं और सिद्धांतों का उल्लंघन कर देते हैं।

यहां तक कि वे तो साहिब सतपुरूष जी व सहज सतमार्ग सत्ता को भी निरंकार की सत्ता में उलझा कर जगत वासियों को भ्रमित कर देते हैं। अंतःकरण में कहीं ना कहीं ये सभी इस बात से पूर्णतः सहमत हैं कि सहज सतमार्ग की सत्ता निरंकार सत्ता से श्रेष्ठ है और सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस ही जीवों को पूर्ण मोक्ष दिला सकते हैं, परन्तु सांसारिक लोभ वशिभूत वे इस झूठ का प्रसार करते हैं जो सर्वथा अनुचित है। इससे वे खुद तो अपनी नज़रों में गिर ही जाते हैं तथा उनका आने वाला समय भी अंधकारमय हो जाता है और वो कई कयामतो तक वे मोक्ष पथ के पथिक कभी भी नहीं बन पाते। ऐसे गुरूआजनों को निरंकार भी स्वीकार नहीं करते तथा ये गुरूआजन अल्प मुक्तियों से भी वंचित रह जाते हैं और ये प्रालब्ध अनुसार आवागमण के क्रम में उलझे रहते हैं।

यहां एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि निरंकार भगवान अपने अनुयायियों को उनकी मान्यता के अनुसार उन्हें उनके ईष्टों के रूप में दर्शन देते हैं, परन्तु सहज सतमार्ग के सतगुरू परमहंस ही सतपुरूष जी का रूप होते हैं। सहज सतमार्ग के अनुगामियों को सतपुरूष जी उनके सतगुरू परमहंस रूप में ही दर्शन देते हैं, इस कारण सहज मार्ग के सतगुरूओं को परमहंस, साहिब जी तथा मोक्ष प्रदाता कह के भी संबोधित किया जाता है। पूर्ण सतगुरू परमहंसों द्वारा प्रदत ''सार–सब्द'' स्मिरन द्वारा ही जीव मन–माया से मुक्त होकर मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसित होता है।

मंदिर मस्जिद गिरजाघर, भक्ति से दूर के डाल।
वेद क्तेव तौरा कुराण, निरंकार के ही सब डाल।।

ईन्द्री वश हर जीव है, मिटे ना सशंय मूल।
बाहर केवल माया है, यही दुख का मूल।।

निरंकार भगवान जगत–माया 'मन' रूप में सभी जगत प्राणियों में विद्यमान हैं।

निरंकार स्वयं जीव काया में व भौतिक जगत पदार्थ सब में समाये हैं। भौतिक जगत पदार्थों व इस माया रूपी काया व माया रूपी शब्द रचित ग्रंथ तथा प्रकृति का हर रूप निरंकार भगवान की माया ही है, इसी कारण मानव इस काया और मन से भक्ति के फलस्वरूप निरंकार के स्वर्ग व सुन्न लोकों में जा समाता है। मानव चाहे कितना भी यत्न प्रयत्न क्युं ना कर ले, वह मन माया व निरंकार के काल चक्र से मुक्त हो ही नहीं सकता ! बिन सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाये मन माया तजि ही नहीं जा सकती, क्योंकि शरीर व जगत पदार्थ से की गई भक्तियों द्वारा माया रूपी मन अर्थात निरंकार काल जाल से मुक्त हुआ ही नहीं जा सकता। सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस ही जीव को इस काया से विमुख कर के परा भक्ति द्वारा मोक्ष पथ का पथिक बना देते हैं।

जाकि सुरति सब्द में, हर पल सतगुरू संग।
काल रहे झख मार के, जब चड़ा सुरति रंग।।

बड़भागी जन सतगुरू शरणागत, सुरति में साहिबन संग।
कौसों दूर भूत प्रेत और तांत्रिक, काल सूं छूटा अब संग।।

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि जब भी कोई मानव व उनके अनुयायी जो सहज सत्त भक्ति मार्ग के संत परमहंसों की राह पर चलने वाले हों उनसे ये प्रेत सर्वदा दूर ही रहते हैं, क्योंकि ऐसे मानव पूर्ण सुरतिवान सतगुरू परमहंस जी की छत्र छाया में मन–माया प्रभाव से मुक्त या मुक्ति मार्ग के पथिक होते हैं। ये प्रेत भी तो मन रूपी निरंकार की माया का ही एक अंग हैं, जबकि सहज सत्त भक्ति मार्ग निरंकार से कहीं उपर की सतलोक सत्ता है। निरंकार की त्रिलोकि में माया का पसार है परन्तु सतलोक सत्ता मन माया से परे सर्वत्र सुरति पसार है, इसी कारण सतलोक सत्ता में मन माया के किसी भी रूप का कोई लेष मात्र भी हस्तक्षेप नहीं है अर्थात सतलोक सत्ता पूर्ण रूप से मन–माया प्रभाव विहीन सुरति लोक है। जहां निरंकार व इसके मन माया रूप का लेष मात्र भी कोई स्थान नहीं, वही तो हंसों का प्यारा सतलोक है। सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संतों व सतगुरू परमहंसों की शरणी जाये बिन जीव वहां पहुंच ही नहीं सकता। इसके ईलावा भी निरंकार दायरे में जिन जीवों का प्रालब्ध अच्छे राज कर्मों से युक्त हो, उनका भी ये प्रेत कुछ बिगाड़ नहीं पाते। प्रेतों का दोष भी प्रालब्ध में नीच कर्मों के फल के कारण होता है। सभी श्रेणियों के प्रेत स्वंय कष्टपूर्ण व दुखदाई भौग इस प्रेत योनि में भौग रहे होते हैं। इन प्रेत योनियों में स्थान पाने वाले अपने कर्मों के प्रालब्ध भौग को भोगने हेतु यहां प्रवेश पाते हैं। मृत्यु के उपरांत के सफर का संपूर्ण ज्ञान जानने के लिए ''अमर सागर'' ग्रंथ को विस्तार पूर्वक पढ़ें ।

नोट :– सहज सतमार्ग के पूर्ण ज्ञान व जगत गुरूओं के मार्ग और सहज सत्त मार्ग के सत्तगुरू परमहँसों के बारे में पूर्ण ज्ञान हेतु संत शिरोमणि साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' द्वारा रचित अमृत आलोकिक ग्रंथ ''अमर सागर''

को पढ़ें।

16 – ईक्कीस लोक मन विस्तार

यह मायावी संसार अपने आप में मनमोहक व आकर्षण से भरी सम्मोहन नगरी है। संसार में ज़्यादातर आत्मांऐं (99.9 प्रतिशत) आशा–तृष्णा व 'मै' 'मेरी' के अहम से वशिभूत हुई हैं। तभी तो जीवन के अंत काल में तन को तजते समय उनकी आत्मां की सुरति घौर कष्टों के पलों में भी तीव्र तृष्णा में फंसी रहती है। वह अपने जग सबंधियों को भूल वश अपना व स्वयं को उनका अंग ही मान बैठी है, इसिलिये जीवात्मां उन्हें तजना ही नहीं चाहती, तभी तो वह बार–बार उसी परिवार से बिछुड़ती अर्थात मृत्यु को प्राप्त होती व फिर किसी ना किसी जीव–काया को धार के उन्हीं के आस–पास लोट आती है अर्थात जन्म लेती है।

मन ही काल का रूप है, जीव नचाऐ करे बेहाल।
हर जीव संग काल वास है, अज्ञानी फिरे बेहाल।।

एक सर्वमान्य ज्ञान सदा याद रहे कि आत्म तो मन माया व उसे वशिभूत किए देवी–देव व स्वंय निरंकार से भी श्रेष्ठ है। इनमें से कोई भी आत्मां पर अधिपत्य नहीं जमा सकता। ये सारी की सारी सृष्टि व त्रिलोक निर्जीव व बेजान है। इस पर जो भी जानदार व चेतन जीव नज़र आते हैं वे बिन आत्मां के मृत काया के ही समान हैं। यहां तक की ये बादल, सूर्य, चांद, सितारे, अण्ड–मण्ड–ब्रह्मण्ड, सात–द्वीप, नौं–खण्ड, सात समुंद्र तथा इसमें उठने वाली सुनामियां, भुंचाल, ज्वारभाटा, ददिप्त मान ज्वालामुखी व ईक्कीस लोक भी निर्जीव हैं। ये सभी आत्मयुक्त जीव के कर्मों के फलों के प्रतापों से ही क्रियाशील होते हैं। ये सारा प्रपंच आत्म सुरति (चेतना) को भरमाने हेतु ही रचा गया है। कहने का अभिप्रायः यह है कि बिन आत्म सब व्यर्थ है, ये सारी खेल क्रीड़ा क्रूर मोहनी माया का विक्राल काल जाल रूप है जो इस आत्म को भरमाने हेतु रची गई है। आत्म की सर्वश्रेष्ठ कायाधारी योनि मानव तन है। सभी ग्रह, नक्षत्रों और लोकों से सर्वश्रेष्ठ धरा हमारी धरती ही है जिस पर मानव का वास है। इस धरा पर मानव द्वारा किये गये कर्म फल अर्थात प्रालब्ध के भौग भौगने के लिए ही 21 लोकों का विस्तार है।

काल निरंझन कईं जन्मों से, चुन चुन खाईयो मास।
अब की बारी मत खाईयो, मोहे सतगुरू मिलन की आस।।

शब्दे भक्ति शब्दे आस, शब्दे भयो प्रकाश।
देवी देव शब्द सूं आए, तीन लोक प्रकाश।।

17 – अनंत जीवनदायी धरायें

इस मानव काया की महिमां अति महान व दुर्लभ है। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार इस सारे ब्रह्माण्ड में इस धरा के ईलावा 5500 और भी गृह नक्षत्र हैं जहां जीवों–प्राणियों का वास है। इनमें से अधिकतर पर सूक्ष्म जीव जन्त का वास है, कंई कंई ग्रहों पर तो मानव काया से कुछ मिलते–जुलते प्राणी भी रहते हैं, ये सभी लोकवासी दिखने में मानव से भिन्न होते हैं और आकार में मानव से छोटे होते हैं। इन परग्रह वासियों को अंतरिक्ष–मानव अथ्वा ऐलियन कह के पुकारते हैं। दूसरे इनके अतिरिक्त बहुत से लोकों में सिद्ध पुरूष, गंधर्व, यक्ष, अति बलशाली मानसिक तरंगों वाले प्राणियों के लोक भी हैं। ये लोक वासी मानव से ज्यादा उन्नत, सुदृढ़ व तीव्र गति से क्रियाशील व बलिष्ठ मानसिक तौर पर उन्नत शील प्राणी होते हैं। ये भी काया में मानव से कनिष्ठ ही होते हैं, पर सिद्ध, यक्ष व मानसिक शक्तियों से संपन्न लोकों के प्राणी अपनी आवश्यकता के अनुसार काया को विस्तृत व छोटा करने की सामर्थता रखते हैं। इनमें से अधिकतर ग्रह व धरायें जो सूर्य जैसे अनगिनत सितारों से प्रकाशमान हैं, उनमें से कंईयों पर तो प्रकाश विद्यमान है परन्तु चन्द एक पर तो हवा पानी व प्रकाश भी नहीं, वहां के प्राणी सूक्ष्म व अति सूक्ष्म, छोटे कायाधारी व बहुत ही कम गतिमान होते हैं, उनका जीवन व दिनचर्या वहां की परिस्थितियों के अनुकूल ही डली होती है। वहां के प्राणी वहां के वातावरण के अनुकूल ही क्रियावान हो के जीवन व्यतीत करते हैं।

निरंकार रचयो धरती अस्माना, अनगिनत लोक जीव जंत बसाये।
सबै भरमे निरंकार भजें, स्वर्ग नर्क भौग मृत्यु लोक समायें।।

ये सभी ग्रह, नक्षत्र, (5500 धराऐं, ग्रह और नक्षत्र) निरंकार के प्रसिद्ध 21 लोकों (सात नाग़ लोक, सात स्वर्ग–नर्क, सात सुन्न व महांसुन्न लोक) के अतिरिक्त हैं। हां, यहां एक सर्व मान्य व सिधांत्मिक सत्य यह है कि हमारी धरती अर्थात धरा ही सर्वश्रेष्ठ और मानव तन ही सब कायाओं में श्रेष्ठ है। ये सारे उपरोक्त गृह लोक वासी धरती पर किये अच्छे बुरे कर्मों के फल (प्रालब्ध वशिभूत) स्वर्ग–नर्क या इन गृह लोकों पे जन्म लेते हैं अर्थात वासा पाते हैं। देव–लोक व इन सभी लोकों पर प्राणी इस धरती पर किये कर्म फल के अनुसार जन्म लेते हैं, ये देव–लोक व सभी लोक कर्मों का फल भुगतने हेतु केवल भुगत लोक हैं, यहां कर्म सत्ता नहीं, कर्मों के फल प्रालब्ध प्राधीनता है। कर्मों के फल भुगतने हेतु निरंकार भगवान का विस्तृत, महां–विक्राल, भयवह व विशाल रूप है। हमारी यही धरा ही कर्म (बीज) क्षेत्र है जहां किये कर्मों का फल भौगने हेतु माया रूपी त्रिलोकि रचि गई है तथा केवल मानव तन में ही ये निज बीज रूपी कर्म करना संभव है।

अनगिनत लोक है जीव पसारा, सबै भौग कर्म प्रालब्ध दिलावे।
मोक्षदायी धरा पर जन्म है पाया, मूल को पायें या काल समायें।।

सुनने व पढ़ने से ही इस महां विस्तार रूप से भय उत्पन्न व अतांकरण अशांत होने

लगता है, ये सब आत्म को भरमाने हेतु निरंकार त्रिलोकि का संक्षिप्त वर्णन भर है। यहां तक की तेत्तीस कौटि देवी–देव, चौरासी लाख योनियां भुगत भुगतने हेतु निरंकार ने सारे का सारा प्रपंच रचा है। ये महांकाल रूपी निरंकार कितना महान, भयक्रांत, विक्राल व विशालता लिये हुए है तथा आद्यशक्ति, त्रिदेव, मन, निराकार व साकार सारे का सारा विस्तार निरंकार की महान त्रिगुणि मोहनी माया का ही मनमोहक रूप है। ये सारी विशालता लिए हुए सभी रचना केवल बस केवल आत्मां को भरमाने हेतु ही रची गई है। जगत दृष्टि से ये सब की सब रचना सत्य दिखती है जिसे नक्कारना सम्भव ही नहीं लगता। इतने पर ही नहीं, निरंकार ने तो जीवात्म हेतु नाना प्रकार के अनगिनत साधन, भौग पदार्थ, जल प्रपात, नाना प्रकार की वनस्पतियां, महां विशाल वन और समुंद्र व संपूर्ण ब्रह्माण्ड मानव जीवन के लिए अनुकूल वातावरण तो उपलब्ध करवाये हैं परन्तु भक्ति व ज्ञान हेतु भी उसने जीवात्म के कल्याण हेतु अलग–अलग मार्ग प्रदान किये हैं। निरंकार भगवान की इतनी अपार अनुकंपा के कारण वे भी पूजा–वंदना व आदर के योग्य हैं, किसी भी प्रकार से किसी भी रूप में निस्वार्थ भाव से निरंकार भगवान की पूजा देर सवेर सहज सत्त मार्ग के सतगुरू परमहँस जी की शरणी में अर्थात मोक्ष पथ की ओर अग्रसित कर ही देती है, संसार में निस्वार्थ भाव से की गई कोई भी पूजा व्यर्थ तो कतई नहीं। उनकी अराधना चाहे किसी भी रूप में क्युं ना की जाये, कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। परन्तु हां संपूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष के लिये तो सहज सत्त भक्ति मार्ग के अतिरिक्त दूसरा कोई भी विकल्प नहीं।

18 – यथा स्थिति सबै उपयोगी

चँद्र स्थान मन विराजता, पवन संग सूर्य स्थान।
सुन्न स्थान नाद बाजता, ज्ञान पँच तत्व समान।।

इस धरा पर प्रत्येक वस्तु अपनी–अपनी उपयोगिता लिये हुए है। कुछ भी व्यर्थ नहीं, अपने–अपने समय व स्थान के अनुसार सारे के सारे पदार्थ उचित ही रचे गये हैं। हां, हम सभी मानव जिन वस्तुओं व पदार्थों का उपयोग कर पाते हैं या जो हमारे जीवन पे अच्छा प्रभाव डालने वाले पदार्थ, जीवाष्म व वातावरण है तो उसे ठीक मान लेते हैं और जिनका हमारे जीवन में विपरीत प्रभाव होता है तो उसे हम अनुचित कह देते हैं। इस त्रिलोकि की प्रत्येक वस्तु रचियता द्वारा किसी न किसी प्रयोजन से ही रची गई है, वह अनुचित व बुरी हो ही नहीं सकती, बस ये हमारी समझ व सही प्रयोग ना कर पाने की असमर्थता भर ही है।

बुरा जो वेखन मैं चला, बुरा ना मिलया कोये।
जो भीतर खोजा आपना, मुझ से बुरा ना कोये।।

जग में जब कुछ बुरा दिखे, तो भीतर है अभिमान।
सब में साहिब वास रे, तूं ना जाने अन्जान।।

बिन कीचड़ कमल ना उग सके, बिन तन मिले ना मोक्ष।
हम सब हंसा निजधाम के, पायें सतगुरू तो मिले मोक्ष।।

हम अगर अतंःकरण में शांत हों, द्वैष व उद्विग्नता त्याग दें तो संसार में सब अच्छा ही अच्छा है, बुरा तो कुछ है ही नहीं, कैसे हम बुरा और अनुचित किसी वस्तु अथ्वा स्थान को कह सकते हैं। जब भी मानव उद्विग्न व क्रौध वशिभूत होता है तभी क्रौध वश अहम युक्त होने पर हम दूसरों को बुरा और अनुचित कहते हैं। जो गुरूजन, कथा वाचक, महानुभाव व विद्वान जन अरानगल बातें मन को मार मुकाने तथा मन को बुरा कहने व देवी–देवों के लिये अपमानजनक भाषा का प्रयोग करते हैं, वे लोग सर्वथा दोषी व असहनशील होते हैं। ऐसे पथ प्रदर्शक स्वयं तो पथ भ्रष्ट होते ही हैं तथा भोले भाले संसारी जनों को भी भक्ति पथ से दूर कर देते हैं। जब भी जग में कुछ बुरा दिखे तो समझ लें अभी हमारी अवस्था व सोचने समझने की शक्ति निम्न स्तर की है और अहम से युक्त हमारा अंतःकरण भक्ति मार्ग पर चलना तो दूर अभी तो अपने भीतर के भावों में अत्यधिक स्वच्छता लाने की आवश्यकता है।

तीन लोक अंधकार में, किस किस को समझावें।
मान अपमान में सब बह रहे, जीव हौमा सूं बाहर ना आवे।।

कई बंधन सूं बांध्या, ईक चेतन ये जीव।
आत्म जाने नांहि, किस कारण दुखी सब जीव।।

ये अहम अहंकार मानव जीवन में जब भी प्रकट हुआ, अहंकार जागा तभी तत्काल निरंकार रूपी मन अंतःकरण में उत्पन्न हो कर स्थापित हो जाता है, जैसे ही 'मन' उत्पन्न हुआ तो मोहिनी माया व पूर्व प्रालब्ध बंधन मानव को अपने जाल में जकड़ लेते हैं। निरंकार मन रूप में हर प्राणी में विद्यमान है, इसी के वशिभूत आत्म स्वंय को मन के अधीन काया समझ कर अपना अनमोल बहुमुल्य जीवन माया में ही व्यर्थ व्यतीत कर देता है। ये सर्वथा ज्ञात रहे, 'मन' जन्म से संग नहीं होता, जन्म काल से आत्मां शरीर संग केवल मूल सुरति रूप में ही होती है। मानव का बाल्य काल जीवन हंसा सुरति संग ही व्यतीत होता है, सुरति से ही ह्राव–भाव दर्शाना, रोना चिल्लाना व हंस कर अपनी आवश्यकताओं के एहसास को प्रकट करता है तथा उसकी जननी अपनी निज सुरति द्वारा उसकी आवश्यकताऐं समझ लेती है, कहीं भी बोल भाषा या शब्दों का प्रयोग नहीं होता, यही सुरति का पसार स्वर्ग, नर्क, सुन्न, महांसुन्न लोकों तथा सतलोक में भी है। सुरति को

छोड़ कर अक्षरों अर्थात बोल भाषा में उलझा मानव निज की तरफ चल ही नहीं पाता।

19 – गर्भ काल मूल जीवन आधार

तीन लोक ओ–ई–म से प्रकटाये, जिन मिल 52 अक्षर बनायो।
सत्तपुरूष सत्ता ना आई ना गई, जैसी थी वैसी ही रेईयो।।

मन तेरे अंदर देव निरंझन, तांहि रहा भरमाई।
हे हंसा तूं जोत अमर, धूल पड़ा जग आई।।

मां की गर्भकाल की अवस्था ही शिशु के 'सु' व 'कु' संस्कार को उसके आने वाले अगामी जीवन काल को निर्धारित करती है। बालक के बचपन के 4 से 6 वर्ष का समय ही उसकी मां की सुरति का प्रतीक होता है। नारी के गर्भकाल की अवस्था के दौरान उसकी देखभाल की अत्यधिक महत्वता है जो आने वाले जीव के उच्च संस्कारों से युक्त जीवन की आधारशिला है। तभी तो मां को जननी के साथ–साथ भविष्य की निर्माता भी कहा जाता है। शिशु का गर्भ व बाल्यकाल का जीवन 50 प्रतिशत मां के संस्कारों, विचारों और व्योवहार से प्रभावित होता है तथा शेष पिछले जन्मों के संस्कार व इस जीवन काल के संस्कारों पर आधारित होता है। सारा जीवन काल मानव इन प्रभावों से युक्त होकर व्यतीत कर देता है अर्थात यही काल उसके श्रेष्ठ व नितकृष्ट होने की महत्वपूर्ण कड़ी बनते हैं।

जब लग घट मोह प्रार्थना, चारों ओर अंधियार।
जब कोई प्यारा संत मिले, सार सब्द दे उतारे पार।।

उदाहरणतः अर्जुन पुत्र वीर अभिमण्यु, महांबली भीम पुत्र गटोतकच्छ, छत्र–पति शिवाजी मराठा, भगत प्रहलाद, वीर यौद्धा महाराणा प्रताप जैसे अनेक शूरवीरों व भगतजनों ने मां के गर्भ काल में ही माता द्वारा श्रवण किये गये शूरवीरों व भक्ति गाथाओं से ही प्रेरणा पा कर अपने जन्म से पूर्व ही उच्च संस्कारों को धारण कर लिया तथा जन्म उपरांत उन्हीं संस्कारों पर चलते हुऐ महान यौद्धा व भगत कहलाये।

हर मानव का नवीन जन्म, मन प्रालब्ध–आशा व तृष्णा से रहित होता है। जन्म से पूर्व आत्मां गर्भ काल में इनसे पूर्णतः मुक्त होती है। तब निरंकार–काया अचेत अवस्था शरीर (आत्म–माया=हंसा) में हंसा साहिब सतपुरूष जी से सुरति से सत्त प्रीत प्रेम वार्तालाप करती है। साहिब जी का ही निज अंश होने के कारण दोनों एक दूसरे को सुरति से जानते पहचानते व वार्तालाप करते हैं। उसी समय हंसा साहिब जी से जग में मन माया से दूर रहकर, सुरति से सिमरन द्वारा, निज–हंसा–रूप जानने अर्थात मोक्ष प्राप्ति के लिए वचन–बद्ध होती है।

भूला कौल करार को, पड़ी जब काल की मार।

कौठी बंगला कारों की तृष्णा सूं, आत्म हुई बेहाल।।
मैं कहां था कहां से आया, कुछ भी तो खबर नहीं।
हम सब केवल हंसा हैं, मन माया की ख़बर नहीं।।

मैं क्या था कहां से आया, और कहां मुझे है जाना।
जम के मरने आया नहीं, निज रूप को है पाना।।

यहां एक बड़ी विचित्र बात जग में प्रचलित है कि आत्मां गर्भ काल में अति कष्ट में होती है, जो सत्य से सर्वथा परे है, आत्मां गर्भ में अपने निज रूप को जानती व साहिब संग आनंदमय अवस्था में होती है। हंसा (आत्मां) अजर–अमर अनित्य है, ये निर्मल और निर्लेप रहती है व गंध, बू, गर्मी, सर्दी, कष्ट, क्लेश, राग, द्वेष, काम–क्रौध, आशा–तृष्णा से पूर्णतः रहित है, हंसा तो इनसे परे आनंदमई है। (शरीर व मन माया से युक्त होने पर व पूर्व प्रालब्ध संस्कार आ कर आत्म संग जुड़ जाने से गर्भ में जीव के लिये दुख व बंधन का एक मात्र कारण होता है)।

गर्भ में ज्ञान मां से पा, अभिमन्यु बना शूरवीर महान।
राणा सांगा शिवाजी मराठा, पायो गर्भ में शूरता ज्ञान।।

गर्भ में शुरूआत काल के 30 से 40 दिन के उपरांत, गर्भ में जीव मां से होने वाले व्योवहार व मां की दिनचर्या से दुख व सुख का आभास व अनुभव करता है। मां अगर सहज सत्त मार्ग के सतगुरू परमहंस जी की दीक्षिता है तो शिशु द्वारा सहज सतगुरू परमहंस जी की वाणी, चरणामृत, साहिब महिमां गुणगान से युक्त होना व मां द्वारा सब्द सिमरण को आत्म सात करना जिससे गर्भ में ही जीव की सुरति चेतन से और चेतन हो जाती है। जिससे जीवात्मां साहिब सतपुरूष जी से और सुग़मता से सुरति वार्ता कर पाती है और जन्म उपरांत ही सहज सत्त भक्ति मार्ग से जुड़ जाती है। ऐसी मां की संतान के रूप में पूर्ण संत ही पैदा होते हैं। संसारिक मां अगर किसी भी कारण वश क्रौध, ईर्ष्या, राग द्वैष से अति ग्रसित हो जाये तो गर्भ में शिशु चाहे अर्दविकसित क्युं ना हो तब निरंकार भगवान उसे पूर्व संस्कारों से युक्त कर देते हैं। पूर्व संस्कारों से युक्त होते ही शिशु की ईंद्रियां क्रियाशील होने पर शिशु दुर्गन्ध, घुटन व अत्यधिक गर्मी का आभास करने लगता है तभी उसे कष्ट भी महसूस होता है। मां से बार–बार दुर्वव्यवहार व ऐसा विकार बार–बार होने पर ऐसी स्थिती में जन्म से ही पहले गर्भ में ही शिशु इन संस्कारों व गुणों को धारण करना शुरू कर देता है। प्रारम्भिक तीन मास तक जब वह स्थिर अवस्था में होता है तब भी वह चेतन रहता हुआ अपने सृजन काल में अपनी सृजनता हेतु क्रियाशील होता है। जैसे महांभारत काल में अभिमण्यु अपनी माता द्रोपती जी के गर्भ काल में रहते हुए शूर–वीरों की कहानियों को सुन–सुन कर चक्रव्यूह रचना को जान पाया। जो ज्ञान

आगे चल के महांभारत युद्ध में सहायक हुआ। तैसे ही शिवाजी, बाजीराव, वीर महाराणा प्रताप, भगत प्रहलाद व और भी जो कंई अन्य महान विभूतियां हुईं, उन्होंने गर्भकाल में ही शूरवीरों की गाथाऐं सुन–सुन कर बाल्य अवस्था में ही भक्ति, वीरता व कुशलता में निपुणता प्राप्त की। कहने का अभिप्रायः यह है कि जैसे मां, शांत–भक्तिमय व प्रसन्नता युक्त रहने और अच्छे संस्कार ग्रहण करने पर गर्भ में ही शिशु के भीतर यही संस्कार स्थापित कर देती है ठीक वैसे ही अगर गर्भधारी माता अति कष्ट, घुटन व व्यभचार भरे वातावरण में निरंतर रहे तो बालक मंदबुद्धि, कामी, क्रौधी व अतातायी भावों से युक्त संस्कार लिए जगत में पैदा होता है। यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि अगर गर्भधारी मां से मार पीट हो अथ्वा वह डर व भय युक्त वातावरण में रह रही हो तो उसकी संतान के अंगों में विकृतियां पैदा हो जाती हैं, जीव अपाहिज और शारीरिक रूप से दुर्बल व रोगी पैदा होते हैं।

अच्छी व उत्तम फलयुक्त फसल के लिए उत्तम बीज व उपझाऊ धरती की आवश्यकता होती है। गर्भधारी मां के गर्भकाल में उसके सम्बंधियों, मां, सास सहित सभी परिवार जनों को प्रसन्न वातावरण रखने और उसके दिनचर्या की सभी सुख सुविधाओं की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिए। अति भयानक स्वपन, अति कष्ट व भययुक्त वातावरण में रहने वाली माता के बच्चे विक्षिप्त (मंदबुद्धि) तथा मानसिक रूप से दुर्बल व पागल पैदा होते हैं। यहां ध्यान देने योग्य एक बात और भी है कि अगर नवजात शिशु के प्रालब्ध के बुरे कर्मों का संताप भौग योनियों के बाद भी अत्यधिक हो तो वह अंगहीन व विकृत अवस्था वाला पैदा होता है। कंई–कंई तो पैदा होते ही पुनः मृत्यु को प्राप्त हो भौग योनियों में कर्मों के फल को भौगने चले जाते हैं।

20 – अंक '7' की महत्वता

सात अंक का ढंका बाजे, मृत्यु लोक आन।
सप्त ऋषि सात सुर, सबै निरंकार जान।।

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार एक प्रलयः काल में 7 बार मानव जन्म तो मिलता ही मिलता है : निरंकार के दायरे में अंक '7' का अधिक महत्व है जैसे एक प्रलयः काल में 7 मानव जन्म, विवाह के समय 7 फेरे, 7 वचन, 7 दिनों का सप्ताह और 7 जन्मों के साथ निभाने का उल्लेख मिलता है, वैसे ही 7 स्वर्ग, 7 नर्क, 7 सुन्न लोक, 7 पाताल लोक, 7 प्रेत योनियां, 7 समुंद्र, 7 रंगों से युक्त प्रकाश, 7 भक्ति चक्र, 7 सनन्द, 7 सुरतियां, 7 रंगों से युक्त ईन्द्र धनुष, 7 सुर व सप्त ऋषि आदि–आदि। ये सब निरंकार दायरे की भक्ति व रचना भरा शाहकार जीवात्मां को भरमाने का एक महां प्रपंच है। हां यहां अगर कोई बड़भागे मां–बाप सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी से दीक्षित हों और ''सार सब्द'' की दात ग्रहण करके निरंतर सिमरन में रहकर सतगुरू परमहंस जी की सुरति से जुड़े हों तो इनकी संतान जन्म से ही सुरतिवान हो के संत ही पैदा होगी। गर्भकाल में ''सार सब्द'' का सिमरन सुनते सुनते शिशु चेतन सुरति सूं साहिब सतपुरूष जी के सानिध्य अर्थात सतपुरूष जी से स्वंय सुरति लेकर धरा

पर महान संत के रूप में अवतरित होता है।

21 – पाप पुण्य सत्ता

जग में पाप पुण्य ना कोये, चेतना स्वभाव कर्म महान।
'मै मेरी मन मान' ना जागे, काया निष्काम निष्कर्म जान।।

एक भ्रांति जगत में पाप व पुण्य के बारे में प्रचलित है कि फलां कर्म पाप और फलां कर्म पुण्य हैं। पाप व पुण्य कोई कर्म होते ही नहीं, कर्म तो बस कर्म होते हैं जिनका निर्धारण तो कर्ता के अंताकरण के भावों से होता है। जैसे सीमा पर खड़े जवान का बिन निज स्वार्थ भाव के दुश्मन अक्रांता सिपाहियों को गोली मार कर देशवासियों की रक्षा हेतु किया गया कर्म होता है जो पुण्य श्रेणी में आता है तथा दूसरी तरफ उग्र विचारों वाला उपद्रवी किसी की जान इस भाव से लेता है कि समाज में द्वेष फेले, वह पाप कहलाता है। कर्म दोनों के एक से होते हुए भी उनके अंताकरण के विचारों/भावों की वजह से पाप और पुण्य अलग अलग श्रेणी में बट जाते हैं अर्थात कोई भी कर्म केवल कर्म ही होता है, हमारे अंताकर्म में उठे भावों के द्वारा ही पुण्य और पाप निर्धारित होते हैं। कोई कर्म स्वंय में पाप पुण्य होता ही नहीं।

मन सूं उठता मन सूं खाता, मन सूं करता बात।
मन सेवते कई जीवन बिताऐ, हर जीवन काली रात।।

आशाओं और तृष्णाओं को, बरसाऐं किस किस ओर।
दुख की कलियां अनसिली, देख ले चारों ओर।।

हे मानव, 'मै' 'मेरी' 'मेरे अपने' व मैं 'कर्ता' हूं अथ्वा मेरे द्वारा हुआ, इस भाव को तज दे। 'मै' अर्थात 'अहम' अभिमान को तज कर कर्म कर, कोई कुछ भी नहीं है पाप–पुण्य या अच्छा बुरा, क्योंकि कर्म तो तन का व ईन्द्रियों का विषय है। मानव जीवन लिया है तो कर्म तो अवश्यंभावी है जिसे टाला ही नहीं जा सकता। आत्मां तो अजर–अमर अविनाषी होने के साथ–साथ निर्लिप्त व निर्लेप है। आत्मां कर्म व फल से सदा मुक्त रहती है, इसी का ज्ञान ही तो निज को जानना है। इस भाव से युक्त हो कर कि मैनें जो किया वह कृत मात्र मेरा कर्तव्य था अर्थात अच्छे बुरे के विचार को त्याग कर निस्वार्थ होकर कर्म कर। मैं 'कर्ता' हूं का भाव उत्पन्न होते ही मन प्रकट हो आत्मां पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लेता है। मन ही तो अहम है अर्थात 'मै और मेरी', 'मेरा परिवार', 'मेरा घर बाहर', 'मेरे रिश्ते नाते' व 'मेरी धन संपदा भाव आते ही महांकाल मन रूपी कर्म फल बंधन पाप और पुण्य अर्थात अच्छे और बुरे का भाव ही त्रिलोकि मन मोहनी माया कर्मन जाल है। निस्वार्थ भाव से कर्म करने की प्रेरणा भगवान श्री कृष्ण जी व भगवान श्री राम जी सहित बहुत से विद्वानों व महां पुरूषों ने बार–बार की, ग्रंथों में इसका वर्णन अनेकों बार आता है। आज के जगत गुरू, कथा वाचक व पंडित भी अपने उपदेशों में इस मन को मार मुकाने, मन की अधीनता छोड़ कर निस्वार्थ कर्म करने को कहते और प्रेरित करते हैं। सभी के अपने जीवित सबंधि और जो

सबंधि संसार से चले गये हैं, सब किसी न किसी ईष्ट की पूजा करते रहे तथा अधिकतर ने तो कोई ना कोई गुरू तो धारण किया ही था परन्तु फिर भी वे अपने गणतव्य को ना पा सके। आज के युग में मानव घौर नीच कर्मों में धंसा हुआ है, इतनी नित्कृष्टता जो आज के युग में है वह पहले कभी किसी भी युग काल में नहीं देखी गई। सारे के सारे जगत गुरू घंटाल स्वयं तो अपने भगतों व अनुयाईयों द्वारा दान में दिये गये चढ़ावे व धन दौलत से ऐश व मौज प्रस्ती करते हैं और मोह स्वार्थ व लौभ में उलझे हुए निज स्वार्थ सिद्धी में ही निरंतर लगे रहते हैं, जबकि अपने अनुयाईयों को वे सभी साधा व ईमानदारी भरा जीवन जीने और निस्वार्थ कर्म करने के लिऐ सदा प्रेरित करते हैं। स्वंय उनकी माया की चाहत इतनी तीव्र होती है कि मरने के उपरांत भी अपनी गद्दियों पर अपने योग्य अनुयायियों को नहीं बिठाते अपितु अपने देश अथ्वा विदेश में रहने वाले प्रियजनों को ही गद्धियों का वारिस घौषित कर देते हैं फिर भले ही उनका आध्यात्मिक योग्यता स्तर कितना भी निम्न अथ्वा ना के बराबर ही क्युं ना हो, इससे उन्हें कोई लेना देना नहीं होता।

वे नाम भूखा जग में कोई नहीं, सब का अंतःकरण है लाल।
ग्रह खोलन नाहीं जानता, तांहि तो भयो कंगाल।।

वे नाम कहे जग में कोई नहीं कंगाल, सब हैं मालामाल।
जो जाने निज रूप को, पायें प्रेम आनंद लाल ही लाल।।

कहता हूं कहां जात हो, कहा जो मान हमार।
जिस का गला तूं काटसी, सो गला काटसी तुम्हार।।

22 – अंध गुरू अंधे चेले

आज का नित्कृष्ट मानव कुछ ना देखता, नां एहसास करता, अंध भक्ति में डूबा भेड़ चाल ही चले जा रहा है। गुरू का गुण नहीं परख़ता, हां यह देखता है कि कितना बड़ा आश्रम, कितने अधिक अनुयायी, गुरू कौन से निजी विमान से आता–जाता है, किस गुरू के पास कौन–कौन से प्रभावशाली नेता आते–जाते हैं। जगत में एक बहुत अनोखी और विचित्र प्रथा व भ्रांति प्रचलन में है कि साधकों के सभी परिवार वाले अक्सर घर के मुखियाओं द्वारा धारण गुरूओं को ही अपना गुरू मान लेते हैं अथ्वा किसी मित्र व सबंधी के कहने पर ही गुरू धारण करते हैं। पहले तो गुरू धारण करते वक्त वे अज्ञानता वश इस बात का ध्यान भी नहीं करते कि गुरू के आध्यात्मिक पथ में उनकी अपनी निज कमाई कुछ है भी कि नहीं, वो तो केवल परम्पराओं से चली आ रही पूर्व गुरूओं की गद्दियों पर ही आसीन हैं, फिर गुरू धारण तो आध्यात्मिक लक्ष्य के लिए कोई बिरला ही करता है। अधिकतर तो कष्ट–क्लेशों से मुक्ति अथ्वा अपने भौतिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति के भाव लिए ही गुरूजनों के पास जाते हैं। अधिकतर अधेड़ उम्र के लोग समय बिताने व घरों में दिनचर्या की उलझनों से कुछ समय

परिवर्तन व आराम हेतु समय व्यतीत करने तथा वार्तालाप करने के लिए ही जगत गुरूओं की शरण में आते हैं। बिना किसी निज आध्यात्मिक उन्नति या अनुभव के वे उसी गुरू से सारा जीवन लोगों को दिखावे हेतु ही जुड़े रहते हैं। अधिकतर जगत गुरू जी तो महां गुरू घंटाल ठहरे ! जो कहते हैं कि केवल एक मैं ही तुम्हें पार लगा सकता हूं, मुझे यदि छोड़ा तो तुम्हें घौर कष्ट व यातनायें सहनी पड़ेंगी। मायाधारी शिष्य तो देखो, जगत में चाहे गरीब हों या अमीर, गुरू बड़ाई करने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

गुरू किये कई जन्म गुज़रे, गुरू तरे ना चेला।
गुरू चेला दोनों माया धारी, माया का बहे रेला।।

गुरू भौगी चेला व्यभचारी, धन ने किया सबै अंधा।
अन्धे गुरू का अन्धा चेला, अन्धे को मिला अंधा।।

बड़े–बड़े मठों व आश्रमों वाले बाबे गुरू होने का स्वांग करते हैं। प्रथम गद्दी की शुरूआत में किसी साधु महात्मां का अपने ईष्ट से साक्षात्कार अथ्वा कुछ आध्यात्मिक निज अनुभव तो होता है परन्तु एक या दौ गद्दी नशीन गुरूओं के बाद किसी गुरू का भी निज अनुभव से कोई सरोकार नहीं होता। सब के सब मठों के संचालक बाबे भर ही होते हैं। बड़ी विचित्र परम्परा देखें, जगत पथ प्रदर्शक गुरूआजन अपने निष्ठावान व कुछ आध्यात्मिक उन्नत्ति युक्त अनुयायीयों व अनेकों अन्य अनुयायियों को दरकिनार करके अपना वारिस सबंधियों से, अपने प्रियजनों व परिवार जनों से ही चुनते हैं। ऐसे गुरूआजनों की मृत्यु के उपरांत उनके अनुयायियों या परिवारों में गद्दी को लेकर द्वन्द जैसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है।

जाका गुरू सोया पड़ा, चेला भी उस संग।
दोनों सोये ईक संग, कैसे छूटे काल का रंग।।

अंधा बांटे दौलत, मुड़ मुड़ अपनों को ही देवे ।
निरंकार जो भक्ति करें, भौग भौग फिर जग आवें।।

मत मांगो तुम किसी से, यही तो कर्मन जाल।
देवी देव केवल मन रूप हैं, आत्म पड़ी मन जाल।।

करोड़ों अनुयायी और साधक ! परन्तु एक भी सध ना पाया। मानव पारम्परिक नियमों–बंदिशों के दिखावे में लगातार उलझा रहा, सारा जीवन बीत जाने पर भी अपने अवगुणों को तज ना पाया। गुरूआजन गुरू थोड़े ही हैं, वे तो लौभी व्योपारी मायाधारी आध्यात्मिक आड़ में अरबों–खरबों के धंधें करने वाले हैं, दूसरों को गद्दी ऐसे कैसे सौंप दें

? परम्परा से चली आ रही गद्दियों पे आसीन गुरूओं का कुछ भी निज आध्यात्मिक अनुभव नहीं होता, वे गुरू ना हो के आश्रमों के प्रबंधक व कर्ता–धर्ता और धन संपदा के रखवाले व वृद्धि करने वाले केवल महां धण्डय बाबे भर ही हैं, यह राजसी ठाठ वाले महाराज जी हैं। सर्वोसर्वा संचालक कर्ताधर्ता, महाराज जी व स्वामी, अंताकरण में मायाधारी, पर कहने को ज्ञानी ध्यानी जी तो सभी केवल दिखावे का ही स्वांग करते हुए दिखते हैं। कहने को ज्ञानवान हैं पर भीतर से लौभी ! ऐसे गुरूआजन इस जीवन काल को तो बड़े राजसी ठाठ बाट से गुज़ार लेते हैं परन्तु वो ये भूल जाते हैं कि मानव प्रालब्ध से ही बंधा है। एक बड़ी अदभुत विडबंना तो देखें कि सब कुछ भली भांति जानते व समझते हुए भी कि मानव के प्रालब्ध में जो कर्म फल सैंचित होते हैं उन कर्मों का फल मिलना अवश्यंभावी, अटल व निष्चित होता है। मानव भले ही ईमानदारी से अपना जीवन जिये अथ्वा अज्ञानता वश कितनी ही चालाकी–चतुराई क्युं ना करे उसके प्रालब्ध सैंचित कर्मफल तो उसे प्राप्त होने ही होते हैं, फिर गुरूआजनों द्वारा ये व्यर्थ का छलावा किस लिए ! जिससे गुरूआजनों का अपना ये अनमोल जीवन तो व्यर्थ चला ही जाता है साथ ही साथ वे अपने अनुयायियों का अनमोल जीवन भी नष्ट करवा देते हैं। अपने चंद राजसी युक्त मज़े के लिए ऐसे गुरूआजन कई प्रलयों तक घौर कष्टमई योनियों में वास करते हैं।

काम मन का मस्तिष्क जानिये, कामुक्ता वासना विषय भौग।
इनकी पूर्ती के लिए, सुर नर मुणि सबै बेहाल बिन भौग।।

तन मन स्थिर ना रह सके, काम बाण विषैला बाण।
एक बाण सूं सब जग जागे, सुर नर मुणि जब लगे बाण।।

ये काम अति प्रचण्ड है, होये उत्पन्न हृदय अंग।
तन मन थिर ना रहे, तन जले काम बाण निज संग।।

चेलों की व्यथा देखें, जीवन में गुरूधारी तो हो गये अब तो प्रमाण पत्र मिल गया, साधक जी वाह रे वाह मेरे भाई, क्या कहने ! गुरू ने गोदड़ी में डाल लिया, शब्द दीक्षा मिल गई व हम दीक्षित हो गये, यही मान कर संतुष्ट हो गये कि अब तो नैया पक्की भव पार हो ही गई है। गुरू जी भी चढ़ावे की खातिर पात्रता व गुणवता नहीं देखते अपितु झुण्डों, कतारों व सरेआम ही शब्दों की दीक्षा दे देते हैं। अब तो और उन्नति हो गई ! कई–कई मठाधीश गुरूओं ने दीक्षा बांटने के लिए अपने कृपा पात्र अनुयायियों को ही नियुक्त किया हुआ है। अधिकांशता जगत गुरू निज अनुभव प्राप्त होते ही नहीं, वे तो केवल गद्दी नशीन होते हैं तो फिर उनके अनुयायियों का अनुभव कैसा। अपनी–अपनी गद्दियों के प्रथम गुरू की ही दी हुई दीक्षा–दात को ही वर्तमान गुरूआजन आगे बांटते जा रहे हैं। साफ़ व स्पष्ट है, गुरू तो किसी के आध्यात्मिक कल्याण के बारे में सोचते तक भी नहीं, अपितु वे तो अपने शिष्यों की गिनती व संख्या बल बड़ाने में ही संलग्न रहते हैं। अब जितने अधिक उनके चेले अनुयायी होते हैं उतना ही अधिक उनकी कमाई व चढ़ावा होता है। अपने आश्रमों व मठों के काम काज के लिए सेवकों की वृद्धि ही वृद्धि करते जाते हैं। धन वैभव व केवल जगत मायावी

समृद्धि तो बहुत होती है परन्तु आध्यात्मिक उन्नति लेष मात्र भी नहीं होती। अगर कहीं थोड़ी बहुत आध्यात्मिक उन्नत्ति होती भी है तो अधिकांशता देवी–देवताओं की भक्ति करने वाले ही होते हैं। इन भक्तियों से अल्प मुक्तियां (स्वर्ग व पित्र लोक ईत्यादि) तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु पूर्णतः मुक्त हुआ ही नहीं जा सकता और प्रालब्ध अनुसार अच्छे कर्मों का फल समाप्त होने पर पुनः मृत्यु लोक में जीव को जन्म लेना ही पड़ता है।

सुर नर मुणि और देवता, तीन लोक का खण्ड।
कहे वे नाम भौगियो, निज कर्मन का दण्ड।।

भृगु ऋषि परसुराम अष्टावक्र, तप किया बहु भारी।
तप से तृष्णा ना हो पूरी, क्रौध करें अति भारी।।

ऐसा नहीं की निरंकार दायरे के गुरूजन श्रेष्ठ नहीं होते, अधिकांशतः तो भक्ति में थोड़ी उन्नति होते ही प्रचार व प्रवचन करना आरम्भ कर देते हैं। धन व संसारी संगत उनके अंदर ''मै'' पैदा कर देते हैं। सोया मन उस अवस्था में उन्हें नीचता अर्थात पतन की ओर ले जाता है। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ऋषि–मुणि योगी यति भी मन के इस फेर से ना बच पाये। क्योंकि देवी–देव, खुदा, अल्लाह, वाहे–गुरू, ईश्वर सर्गुण व निर्गुण सारे ईष्ट मन रूपी निरंकार ही तो है। इन में से किसी भी रूप में पूजा घ्यान जप–तप सज्जदे और प्राथनाओं से इस मन से मुक्त नहीं हुआ जा सकता, तभी तो निरंकार की सत्ता के ऋषि मुणि, महांपंडित कथा वाचक व विद्वान जन देर सवेर, काम वासना, क्रौध व लोभ रूपी मन तरंग में बह ही जाते हैं। ये आज के युग के गुरूओं के साथ ही नहीं अपितु प्राचीन काल युगों–युगों से पहले के गुरूआजनों के उत्थान उपरांत पतन के अनगिनत किस्से प्रचलित हैं। फिर मन को कैसे तजा जा सकता है अथ्वा इसकी तरंगों से सुरक्षित हो कैसे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जिससे मनुष्य निस्वार्थ कर्म कर सके, वह कौन सा मार्ग है ? संसार में निस्वार्थ भाव से कर्म जगत मानव से संभव ही नहीं, चाहे वह कितने भी यत्न प्रयत्न क्युं ना कर ले, वर्णा अर्जुन निराकार भगवान कृष्ण जी से उपदेश सुन के निस्वार्थ भाव से ही युद्ध करता। अर्जुन तो निराकार भगवान कृष्ण जी के विराट विक्राल महांकाल रूप से भयभीत हो युद्ध करने को राज़ी हुआ।

हरि भक्ति त्रिदेव की भक्ति, नांहि है निस्तार।
जो जो इनकी भक्ति करे, कबहु ना उतरे पार।।

हां ! सोया संसार माया में अपने आप को पूर्णतः भूला हुआ है, जब तक वह अपने कर्मों का कर्ता स्वंय को मान रहा है, इसी कर्ता बंधन वश वह असहनीय कष्टों व सुखों दुखों को भुगते जा रहा है। मानव स्वयं जब तक आध्यात्म की ओर ना चले, भजन ध्यान भक्ति की ओर कुछ उन्नति ना कर ले, तब तक कर्ता कर्म के भाव के तर्क तकरारों का भागीदार तो बन सकता है परन्तु इस मार्ग पर कदापि चल नहीं सकता, अर्थात कर्ता भाव

से पूर्णतः मुक्त संभव ही नहीं।

काम क्रौध लोभ मोह अंहकार, अंदर का परिवार।
पांचों अंतःकरण की ईन्द्रियां, मन का बाहर विस्तार।।

पांच तत्व सूं मित्रता प्यारी, तां सूं आत्म फंसा है भाई।
मन माया से मित्रता हमारी, कैसे मिले मोक्ष मेरे भाई।।

23 – हँसा (आत्मां) निर्लेप

आत्म देव निर्लेप सर्वशक्तिमान साहिब जी, स्त्री पुरूष ना जान।
जमना मरना घटना बड़ना नांहि नित्य, इसे नित्य ले जान।।

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है, 'हंसा' (आत्म–माया=हंसा) माया से लिप्त होने पर आत्म अजर–अमर अविनाशी व कर्ता कर्म माया से सदा निर्लेप है अथ्वा कभी भी इन कर्मों व प्रालब्ध में लिप्त नहीं होती।

सात सुन्न सात सुरति स्थाना, ईक्किस ब्रह्मण्ड स्थाना।
काल निरंझन रचियता सभी का, सबै जीव भरमाना।।

आपे मच्छ मछली, आपे समुंद्र आपे जल।
आपे जाल मनकड़ा, आत्मा आपे अधीर लाल।।

सहज सत्त भक्ति पथ के संपूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :– ''कर्म करने वाला कर्ता निरंकार, कर्म जो हो चुका, जो किया जा रहा है और जो आगे भी होगा वह भी निरंकार ! परिस्थितियां व साधन भी निरंकार, कर्ता व भौगता भी स्वयं निरंकार ही है।''

साहिब जी झूठी काया झूठी छाया, झूठा जग परिवारा।
झूठी माया संसार भवसागर, कोई ना उतरे पारा।।

आत्मां तो दृष्टा भर है, आत्म–सुरति चेतन–शक्ति तो केवल आत्मां है, बिन चेतन सत्ता यह सारी त्रिलोकी निर्जीव है, कर्ता व भौगता तो कुछ है ही नहीं। बस माया वशिभूत आत्मां स्वयं को शरीर मान बैठी है, सारी त्रिलोकी माया में रमी वह सुख–दुख,

गर्मी–सर्दी, कष्ट–क्लेशों के महां भंवर में फंसी पड़ी है।

महांभारत के महां युद्ध उपरांत की घटना है :– जब कुरूक्षेत्र में महांभारत का युद्ध समाप्त ही हुआ था व अभी भीष्म पितामंह अभी मृत्यु की प्रतीक्षा में बाणों की शैया पर पड़े थे, तभी वहां ब्रह्मऋषि दरवासा जी महांभारत युद्ध में सभी योद्धाओं व महांरथियों सहित लाखों सैनिकों के मारे जाने से विचलित व क्रौधित अवस्था में कुरूक्षेत्र के युद्ध स्थल पर पहुंचे। उस काल में वहां श्री कृष्ण भगवान जी पहले से ही उपस्थित थे, उन्हें देखकर ऋषि दरवासा जी क्रौधाग्नि में धधकते हुऐ भगवान श्री कृष्ण जी से बोले, तूं निराकार रूप होते हुऐ भी मेरे अनुजों सहित इतने योद्धाओं का वध कैसे कर सकता है। तूं तो अपने आप में महां सामर्थवान है तथा तेरी ईच्छा से ही सारी त्रिलोकि की गतिविधियां चलाऐमान हैं, तूं तो बड़ा दुष्ट प्रवृत्ति वाला निकला। तूं अपने सामर्थ से ये सारा महां विनाष रोक सकता था। इतनी बड़ी दुष्टता का दण्ड तो मिलना ही चाहिऐ, इतना कह कर ऋषिवर ने श्री कृष्ण भगवान जी को श्राप देने के लिये अपने कर्मण्डल से अंजलि में जल भर लिया। उनका चेहरा क्रौध व बदले की ज्वाला में दहक रहा था।

ऋषिवर को अति क्रौधित व श्राप देने की अवस्था में देखकर भगवान कृष्ण जी मंद–मंद मुस्कुराते हुऐ ऋषिवर से बोले :– हे ऋषिवर आप जैसे त्रिकाल दृष्टा को ये क्रौध व विघ्नता शोभा नहीं देती। वे पुनः बोले आप मेरे वचन सुन लें, तद्उपरांत जो उचित लगे वोहि करें। आप के श्राप अथ्वा पश्चाताप मेरे लिये दोनों ही शिरोधार्य होंगे।

निरंकार नारायण भगवान अवतार श्री कृष्ण जी बोले :– हे ऋषिवर युद्ध क्षेत्र में ये सब मृत शरीर सभी 'मैं' ही तो हूँ, जिन अस्त्र शस्त्रों से सभी योद्धा मारे गये वो सभी अस्त्र–शस्त्र भी तो 'मैं' ही हूँ, इन शस्त्रों को चलाने वाले योद्धा व इनसे मरने वाले योद्धा भी 'मैं' ही हूँ। हे ऋषि श्रेष्ठ ! कौन और कैसे आप का अपना कोई मृत्यु को प्राप्त हुआ ? 'मैं' ही मरा, 'मैनें' ही मारा, करने और भौगने वाला दोनों 'मैं' ही तो हूँ, हे ऋषिवर ! आप किनका शौक मन मनाने आये हैं।

आत्मां तो नित्य, अजर, अमर व अविनाषी है। आत्मां तो दुख–सुख, सर्दी–गर्मी, जय–पराजय व जन्म–मृत्यु से परे आनंदमयी सुरति स्वरूप है। जो भी जीवात्मां युद्ध क्षेत्र में प्राण त्यागी है वह सब वीरगत्ति को प्राप्त होकर बैकुण्ठ में वासा पाती है जो कि भगवान विष्णु का निजधाम है। आत्मां, नां तो जमती है, ना मरती है और ना ही कुछ वह भौगती है। जमती, मरती व भौगती तो जीव रूपी केवल काया है, जीवात्मां तो कर्मों के अनुसार मृत देह को त्याग कर नवीन शरीर को धारण कर लेती है। मैनें जो भी किया सब केवल धर्म व विधि के विधान सम्मत क्रिया को ही कार्यान्वित किया। इतना कह कर भगवान श्री कृष्ण शांत हो कर ऋषिवर की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे।

इस सारी आलोकिक वाणी को श्रवण करने के उपरांत कुछ ही पलों में ऋषिवर भगवान श्री कृष्ण जी के चरणों में गिर कर क्षमा मांगते हुऐ कहा, हे मधुसूदन आप तो बड़े दयालु व भक्त वत्सल्य हैं, आप ने मुझे महां पाप से बचा लिया, इतना कह कर उनके नेत्रों से

जलधारा फूट पड़ी।

मन ही काल निरंझन जानो, सबै रहा भरमाई।
चल हंसा सतलोक को, क्रूर काल ने दुर्गति बनाई।।

यह सब वृत्तांत कहने का अभिप्रायः यही है कि इस धरा पर निरंकार के रूपों की भक्ति करने वाले उच्च से उच्चतर अवस्था प्राप्त ऋषि–मुणि, योगी–योगेश्वर भी मन तरंग से मुक्त नहीं हो पाते। सब मानते व कहते हुऐ सुने जाते हैं कि करण–करावनहार स्वयं भगवान निरंकार नारायण ही हैं। फिर भी निरंकार दायरे के उच्च अवस्था प्राप्त भक्तजन अपनी 'मै' अर्थात 'अहम' को तज ही नहीं पाते। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार निरंकार के दायरे की भक्तियों से कभी भी मन व मन–तरंग पर काबु पाया ही नहीं जा सकता। निरंकार सत्ता भक्तियों से ना तो कोई पहले मन–तरंग से पूर्णतः मुक्त हुआ और ना ही आगे भी कोई मुक्त हो सकता है।

अब प्रशन यह उठता है कि मन से कौन मुक्त हुआ और इससे मुक्ति कैसे संभव है ? और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ संसारिक भक्तजन क्यों पूर्ण सुरतिवान नहीं हो सकते ?

उपरोक्त दोनों प्रश्नों के उत्तर जानने के लिये शीर्षक '53–आनंद बौध', '54–सत की परिकाष्ठा', '63–साहिबन उपहार निरति' व '73–सत सुरती पथ' को श्रद्धा पूर्वक पढ़ें !

पाहन को पूजता, पाहन में रखता पाहन।
अंधेरा जो है पूजता, आत्म की ना होत पहचान।।

मन को देवी देव तुम जानों, सबै रहा भरमाई।
नर तो हंसा अमरलोक का, पड़ा काल वश आई।।

अपने आप को नां जानते पहचानते हुऐ आत्मां निज को भूली हुई माया–युक्त भूल–भुलेईयां में भ्रमित हुई उलझी पड़ी है। देखो कैसी विचित्र व अनोखी निराकार भगवान द्वारा रचित त्रिलोकी है। एक तरफ अधिकतर जगत गुरू–जन अक्सर निरंकार के मन रूप व उसके सर्गुण–निर्गुण रूप को भला बुरा कह के कौसे जा रहे हैं तथा दूसरी ओर उन्हीं निरंकार रूपी भगवान के भिन्न–भिन्न रूपों की पूजा करके उन्हीं से ऋद्धियां–सिद्धियां व भौग–पदार्थ ही मांगे जा रहे हैं। निरंकार की भक्ति करने वाले कथा वाचक व गुरू जन निरंकार की माया को क्रूर अतातायी कहते हैं व निरंकार रूपी मन को मार मुकाने, मिटा देने की बातें भी कहते हैं। ये सब अच्छा–बुरा शांत भाव से स्वंय निरंकार भगवान अपने अंदर समाहित कर लेते हैं और शांत व बिना उद्विग्न हुऐ सारी प्रकृति का संचालन पूर्वतः की भांति सुचारू रूप से चलाऐ मान रखते हैं तथा प्राकृति के आवश्यक सुख साधन सभी जीवों को निरंतर उपलब्ध करा रहे हैं।

मांगन मरन समान है, मत करो कोई चाह।

मांगन से मरना भला, ये संतन की राह।।

24 – दौषी कौन

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :– जगत में हर जीवात्मां अपने स्वभाव अनुसार जीवन जीती है, यह स्वभाव प्रकृति द्वारा प्रदत सुविधाओं और उसके तन की संरचना अनुसार ही डला होता है। सभी जीवधारी अपने अपने स्वभाव अनुसार ही जीवन यापन करते हैं। जैसे पक्षियों का स्वभाव उड़ना तथा दाना चुगना है। मांसाहारी जानवरों का स्वभाव मांस खाना तथा शाकाहारी जानवरों का स्वभाव घास–फूस व वनस्पतियां खाकर जीवन व्यतीत करना है। ईक मानव ही है जो मन तरंग में बह कर अत्यधिक स्वाद और मजे के लिए अपने स्वभाव के विपरीत जाकर मांस मछली खाने से भी परहेज़ नहीं करता। अगर कहीं आध्यात्मिकता की ओर चलने की बात आये तो मानव अक्सर कहते हैं कि निरंकार की मन मोहनी माया हम्हें इस ओर जाने ही नहीं देती। हम निरंकार जाल से बाहर निकल ही नहीं पाते, इसमें हमारा क्या दौष ? दोष तो इस निरंकार के क्रूर मन माया जाल का है जो हम्हें सदियों से अपनी तरंग में ही बहाये ले जा रहा है। यथार्त तो यह है कि मानव जीवों की प्राथमिकता तो केवल माया ही है, लाखों करोड़ों व अनगिनत जन्म लेने के बाद भी जीवात्मां की प्राथमिकता आध्यात्मिकता एवमः मोक्ष तो कभी भी नहीं रही। हां कभी कभार जगत भौतिक सुख सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए तो पुजाऐं, भक्तियां, वंदनाऐं व सज्जदे तो करते रहे परन्तु पूर्ण मुक्ति के लिए प्रयासरत नहीं हुए तथा पूर्ण मोक्ष के लिए तो भूल से भी कभी विचारा नहीं। हम इतने मायाधारी व स्वार्थी हो चुके हैं कि अपना स्वभाव ही नहीं बदल पाते और जहां संसारिक मज़े व ईन्द्रियों के स्वाद लेने हों तो वहां सारे स्वभाव व नियम तजने में ज़रा सी भी देर नहीं लगाते। फिर हम निरंकार भगवान पर किसी भी प्रकार का दौषारोपन कैसे कर सकते हैं ?

भगवान निरंकार द्वारा रचित इस त्रिलोकि मन माया नगरी का स्वभाव ही जीवात्मां को भ्रमित कर आध्यात्मिक पथ से भटकाना है। अगर जीवात्मां स्वयं रत्ति भर भी संयम ना रख पाये तो निरंकार दोषी कहां ! जिस प्रकार कांटों का स्वभाव तो चुभन देना, सागर का स्वभाव सब को अपने अंदर समोह लेना है परन्तु फिर भी इन सभी परिस्थितियों में जीव जैसे कांटों से बच बचा कर सावधानी पूर्वक अपने लिए फल–फूलों को तोड़ लेता है तथा नदी व सागर को पार करने के लिए या तो तैरना सीखता है अथ्वा नौका का प्रयोग करता है। ठीक उसी प्रकार अलग–अलग विकट और आपातकालीन अवस्थाओं में भी जीव अपने आप को सुरक्षित रखने व अपने लक्ष्य की पूर्ती के लिए अपने निज स्वभाव को छोड़ कर आवश्यकता अनुसार इसमें अदल–बदल करता है। तो फिर गौर करने योग्य बात यह है कि निरंकार मोहनी मन माया की तरंग से बचने के लिए जीव अपने निज स्वभाव, जो कि सदा मनमोहक लौभ लालसा वश माया की ओर ही खिंचा जाना है, को क्युं नहीं बदलता ? जबकि इस जन्म का मूल लक्ष्य तो पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष को पाना है जिसके लिए अगर मानव अपने स्वभाव में बदलाव ले आये तो वह बड़ी सरलता व सुग़मता से अपने मूल लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

उदाहरणतः जैसे मानव को अपने शरीर में कहीं खुजली महसूस होती है तो वह अपने निज स्वभाव को तज कर कुछ देर अगर संयम व सब्र रख कर इस ओर ध्यान न दे

और इसे सह ले तो 2 से 3 मिण्ट के अंदर खुजली कम होते हुए लगभग समाप्त ही हो जाती है। किन्तु मानव अपने निज स्वभाव के अनुसार ऐसा कर नहीं पाता और तुरन्त ही उसे मिटाने की कोशिश में खारिश करने लगता है, प्रारम्भ में तो ऐसा करने से थोड़ी राहत अवश्य मिलती है और एक प्रकार का मज़ा आने लगता है मगर कुछ देर उपरांत यही क्रम करते करते एक कष्टप्रद घाव बन जाता है। ठीक वैसे ही हल्का ज़्वर अथ्वा बुख़ार आने पर मानव अगर कुछ विश्राम कर ले तो ये ज्वर अधिकांश्ता अपने आप ही समाप्त हो जाता है परन्तु मानव मन अपने चंचल स्वभाव अनुसार चिकित्सकों के पास जाने की तरंग उजागर करता है जिस कारण वह तुरन्त बिना विचार विमर्श किये चिकित्सक के पास उपचार के लिए चला जाता है। बड़ी–बड़ी बिमारियों में मानव अपार धन संपदा का व्यय करके भी कुछ और थोड़ी देर जीने की लालसा लिए चिकित्साल्यों की ओर रूख करता है। सभी जीव जानते हैं कि कष्ट व सुख प्रालब्ध अनुसार ही जीव को मिलते हैं और उनकी मृत्यु का समय और स्थान तो वैसे भी निष्चित ही है। संसार के अंदर उपचार करने के सभी संसाधन व चिकित्सक मिलकर भी प्रालब्ध और विधि के लेखे को नहीं मिटा सकते। फिर भी मानव अपने स्वभाव अनुसार उपचार हेतु कोई कसर बाकी नहीं छोड़ता।

जब इन्सान अपना स्वभाव बदल कर सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू शरणी में आकर मोह, लोभ–लालसा व आशा–तृष्णा तज कर समर्पित साधक बन जाता है तो उसे निरंकार की माया फिर स्पर्श भी नहीं कर पाती और न ही उसे भ्रमित कर पाती है। अगर भूल वश ऐसा साधक कभी बिमार भी पड़ जाये तो वो साधक सुरतिवान होते हुए कभी अपना धैर्य और संयम नहीं खोता है और ना ही किसी उपचार के लिए कहीं भटकता है। ऐसे साधक को निरंकार भगवान स्वंय ही बिना उपचार के स्वस्थ कर देते हैं। निरंकार भगवान तो कष्ट, क्लेश और बिमारियों की तरंग तो माया व प्रालब्ध स्वभाव अनुसार जीव को देते ही हैं परन्तु जो साधक इन कष्टों, क्लेशों व बिमारियों की ओर ध्यान ही नहीं देते अथ्वा इन्हें नज़र अंदाज़ कर देते हैं तो निरंकार भगवान स्वयं इन्हें इनसे मुक्त कर देते हैं अर्थात सहनशीलता प्रदान कर देते हैं। जिस प्रकार एक छोटी सी खुजली लगने जैसी स्थिति में अगर इसे अहमियत ना दी जाये तो ये स्वयं ही मिट जाती है उसी प्रकार अगर बड़े से बड़े रोग़ों पर भी अगर ध्यान ना दिया जाये तो ये भी जीव का कुछ भी अहित नहीं कर पाती और स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं। जीवन काल में ये सभी रोग़ प्रालब्ध अनुसार ही उपझते और फलिभूत होते हैं इन सब का चिकित्सा से कोई सरोकार नहीं, जीवन को तो निष्चित समय अनुसार ही मृत्यु को प्राप्त होना होता है। परन्तु अगर मन माया रूपी तरंगों से ध्यान रहित होने पर जीवात्मां इसमें अपना कोई भी रूझान व रूचि नहीं दिखाती तो वह माया रूपी भवसागर को छोड़ कर सहज सत्त मार्ग अर्थात मोक्ष पथ की ओर चल पड़ती है। अगर मानव जीवात्मां अपना निज स्वार्थ भरा स्वभाव ना तजे तो निरंकार दोषी कैसे हो सकते हैं ?

सिद्ध तांत्रिक जो चमत्कार करत हैं, वे हैं माया रूप।
ईन्द्रियां मन सूं जो दर्शन होत हैं, वे भी हैं माया रूप।।

सत्त प्रेम व ज्ञान के भण्डार सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की वाणी अनुसार :–

जग में निरंकार भगवान सहित सभी देवी–देव व सभी जीव पदार्थ उचित, सुन्दर व यथा स्थिति सभी जीव व पदार्थ श्रेष्ठ हैं कोई भी बुरा व गल्त नहीं ! स्वार्थ वश हम मानव किसी वस्तु व जीव को बुरा कहते हैं, हम्हें परख़ना, समझना व प्रयोग करना ना आये तो तुरन्त बुरा कहना शुरू कर देते हैं। साहिब सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार जगत में कुछ भी बुरा दिखे तो समझें कि अभी हम में ही बहुत सारी त्रुटियां हैं अर्थात अभी तक हम आध्यात्मिक दृष्टिकौन से विकसित ही नहीं हुए व स्वार्थ सिद्धि रूपी कचरे में ही लिप्त हैं।

25 – जीवन रंगमंच

मन तेरे अंदर देव निरंझन, तांहि रहा भरमाई।
हे हंसा तूं जोत अमर, धूल पड़ा जग आई।।

हरि भक्ति संग करें, मांगें मन भावन मांग।
मांगें जो हरि पूरी करे, सब छूटे मृत्यु उपरांत।।

सभी कर्मों का कर्ता भौगता व माध्यम स्वयं निरंकार ही तो है तथा स्वयं निरंकार ही कर्म फल का भौगता भी है, फिर क्युंकर यह विक्राल भ्रम है ! आत्मां भ्रम वश स्वयं को शरीर मान चुकी व प्राणों के बिना अनजाने वश मृत्यु से भयभीत होकर भ्रमित हुई सभी कर्मों के फल सहन करने को विवश है। उदाहरणतः :– अगर हम रामलीला के रंग मंच पर राम का चरित्र निभा रहे एक कुशल अभिनेता को देखें तो वह सीता के वियोग में, सीते–सीते की करूणा भरी पुकार ही किये जा रहा है। तब उस पल वह अपने आप को राम के पात्र में ही जिवित कर रहा होता है अर्थात स्वयं को भूल कर उस वक्त वह उसी जीवन को ही जी रहा होता है। उस पात्र की व्यथा अभिव्यक्ति उस को कुछ पलों के लिये निज–अभिव्यक्ति लगने लगती है तथा उसी के सुख दुख में डूबा हुआ तभी तो वह उस पात्र के चरित्रार्थ को जिवित कर पाता है।

संसार के लोग निरंकार को ही, पूज रहे दिन रात।
निरंकार की सेव करें, कैसे भौग भौग की बात।।

ज्युं नैनों में पुत्तली, त्युं साहिब घट मांहि।
परदा पड़ा है मन का, तां ते सूझत नांहि।।

ठीक उसी पात्र की भांति आत्मां भी त्रिलोकी के मायावी संसार में स्वयं को काया समझ के सुख दुख गर्मी सर्दी व कष्ट क्लेशों को निरंतर भौगे जा रही है। बताओ ! अब कौन दोषी और किसको दौषी ठहरायें। ध्यान दें कि राम का पात्र निभाने वाला अभिनेता

रंगमंच पर तो निज को राम समझ उस पात्र को जिवित करता ही है, परन्तु रंगमंच का पर्दा बंद होते ही स्वयं को उस किरदार से मुक्त कर भौतिक संसार में लौट आता है। किरदार अथ्वा अभिनय में कुछ समय को वह क्या है ? यह भूल ही जाता है तथा पर्दा गिरते ही उस पात्र की भूमिका को तज कर पुनः संसारिक जीवन में लोट आता है। पर ये आत्मां (हंसा+मन) संसारिक रंगमंच में अपनी सुद्धबुद्ध पूर्णतः खो चुकी है। निज को शरीर मान चुकी ऐसी उलझी है कि मृत्यु का पर्दा भी उसे अपनी निजता (हंसा रूप) का एहसास नहीं करा पाता। मृत्यु से पहले आत्मां निज को शरीर मान चुकी होती है तथा मृत्यु काल में इसी भ्रम में लिप्त होती है कि 'मैं' प्राणों के बिना रह ही नहीं सकती जिस कारण शरीर त्यागते समय वह प्राणों के संग हो लेती है।

चूंकि निराकार त्रिलोकी नाथ जी का आत्मां (हंसा) पर कोई वश नहीं चलता, तभी तो निरंकार भगवान ने मन रूप में आत्म सुरति (चेतना) को मोहिनी माया बंधन व आशा–तृष्णा में उलझा कर वशिभूत किया हुआ है इसिलिए प्राणों के सम्मोहन पाश में बंधा आत्म परिवशता–वश आशा–तृष्णा संग लिए मृत्यु–काल में प्राणों के साथ हो लेता है। मृत्यु उपरांत आत्म को ये तीव्र तृष्णा ही आवागमण में डाल कर प्रालब्ध (कर्मों का फल) के अनुसार निरंतर जन्म–मरन के बंधन में उलझाये रखती है।

आत्म दुखी निज फंसी माया लार, निरंकार भी दुखी तजना चाहे त्रिलोकि पसार।
कौल करार बंधन बंध्या, 17 आयोजन कौड़ी काल तक आत्म संग फंसा निरंकार।।

अनंतकाल की चिर निंद्रा स्वपन से आत्मां को केवल सहज सत्त भक्ति मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस ही जगा सकते हैं। निराकार दायरे के सतगुरू जन तो स्वयं भी मन व मन की वृतियों से बहुत प्रयत्नों उपरांत आंशिक तौर पर ही शांत हो पाते हैं परन्तु इससे पूर्णतः कदापि मुक्त नहीं हो पाते। निराकार भक्ति से अल्प मुक्तियां (श्रेष्ठ कर्मों के फल भौग) ही मिलती हैं तथा उनके श्रेष्ठ कर्मों का फल खिन्न होने पर पुनः राज–योग युक्त हो कर जन्म लेना ही पड़ता है (अल्प मुक्तियां अर्थात स्वर्ग लोक भी तो भौग विलास तृप्ति ही हैं)। मोह पाश में बंधा जीव नया शरीर धारण कर लेता है। मानव की आशा–तृष्णा व मोह माया के सम्मोहन में बंधी तीव्र ईच्छाऐं ही प्राणों संग आत्मां को एक से दूसरे शरीर में भ्रमण कराती व उसके सुख–दुख के अनुभव की साक्षी बनती है। मन, प्राण व शरीर की सत्ता बिन आत्म के है ही नहीं। आत्म संग है तो प्राण व जीव चेतन हैं। आत्म बिन, जीव–काया–प्राण व सारी त्रिलोकी निर्जीव अर्थात बेजान है, अगर चेतनता नहीं तो त्रिलोकी का होना न होना सब व्यर्थ है।

चौरी करि है आत्म, तन का करता मान।
मन सबै भरमावता, देता चार मुक्ति दान।।

मन कहता है सबको हर पल, तूं छाया को छूना।

ये माया अति है प्यारी, भक्ति को मत तूं छूना।।

एक महत्वपूर्ण ज्ञान सर्वमान्य को याद रहे कि निरंकार दायरे के गुरू जन तो मोक्ष दिला ही नहीं सकते, वे तो स्वयं मोक्ष से वंचित हैं। निरंकार दायरे के ऋषि–मुणि, जपी–तपी, योगी–योगेश्वर तथा महां–योगेश्वर जन, महांनता–विद्वानता–सामर्थता प्रयत्न और परिश्रम करने में कहीं भी कम नहीं ! बस सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी से विदेह सब्द ''सार दात'' ना मिलने के कारण तथा उनकी भौतिक मांगों व ईच्छाओं के कारण उन्हें मोक्ष नहीं मिलता। निरंकार की सत्ता मन–माया को पूर्णतः ना तज पाना ही इन गुरू जनों का पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष से वंचित रह जाने का एक मात्र कारण होता है।

काम सूं श्रृंगी ऋषि नारद और रावण, ये भी ना बच पाये।
बड़े बड़े ज्ञानी ध्यानी भी, काम सूं ना बच पाये।।

26 – मन तंत्र

देवी–देवों तथा किसी भी ईष्ट की सर्गुण पूजा तो सीधे ना हो के परोक्ष रूप से निरंकार भगवान ही की पूजा है। कुछ मानव अपने–अपने धर्म व मत्त अनुसार सीधे ही निरंकार रूप की पूजा करते हैं, ये दोनों तरहं की पूजाऐं प्रोक्ष या अप्रोक्ष रूप में निरंकार भगवान की ही पूजा हैं। निरंकार सब जीवों में मन रूप में विद्द्मान है। कहने का भाव ये है कि निरंकार भगवान की पूजा से मन–तरंग कुछ समय के लिए शांत तो अवश्य हो सकती है परन्तु पूर्णतः नहीं मिटती, चाहे कितना भी यत्न–प्रयत्न क्युं ना कर लें ! तभी तो निरंकार के दायरे के गुरूजनों के माया में लिप्त हो जाने के किस्से सत्त युग से आज तक सुनने को मिलते हैं क्योंकि उनका मन पूर्णतः मिटता ही नहीं।

अंतःकरण पंच ईन्द्रियां निज बड़ा परिवार, मन को किया बेहाल।
चेतन शक्ति आत्म सूं अर्जित करें, तांहि आत्म भई बेहाल।।

सभी ईच्छाऐं पूरी ना हो सकें, तांहि कारण दुख शरीर।
तां से तुम ये जान लो, मन स्वयं ही दुखधार शरीर।।

ये मन है क्या ? ये तो विचारों (भावों) को उपझाने वाला एक संसाधन भर है। जब तक आत्मां निज को नहीं जानती तब तक मन–तरंग से भरी लोभ लालसाओं से ये कैसे मुक्त हो सकती है ? मन आत्म को वश नहीं कर पाता पर आत्म–सुरति (चेतनता) को अपनी मोहिनी तरंगों अर्थात भावनाओं में बहा ले जाता है, ईक बार आत्म–सुरति उलझी नहीं कि ये भाव–रूपी मन भावनाओं, आशा–तृष्णाओं व जगत लोभ लालसाओं से बाहर निकलने ही नहीं देता। जबकि भाव को तजना ही तो मोक्ष मार्ग की ओर चलना है। भावनाऐं अर्थात मन को तजना ही तो कठिन है जो जन्म जन्मांतरों की बेड़ी बना है। मन तो निर्जीव क्रियाहीन है, ये तो सब कुछ आत्म की चेतन सुरति को मोहिनी सम्मोहन भरी माया में उलझा कर अपने वश में कर लेता है। एक बार आत्म सुरति माया में लिप्त हुई तो मन–तरंग विषय वासना अहम लोभ क्रौध से मुक्त

नहीं हो पाती।

परमहंस कृपा सूं मन मिटे, आत्म हंसा हो जाई।
त्रिलौकि का बंधन छूटे, आवागमण मिट जाई।।

ईच्छा संकल्प वैमनस्ता, झगड़े के कणि और मूल।
तपस्वी सन्यासी और साधु जन, मन सूं छूटे ना मूल।।

27 – सतगुरू परमहंस महिमां

सतगुरू जीवन ही नहीं देता, मरना भी सिखाता।
साधक को मन माया से बाहिर, सुरति संग हो लेता।।

सतनाम में सत है कुण्झी, परमहंस सूं मिलता भेद।
सत सुरति का भेद है इसमें, खुले ताला तो मिलता भेद।।

ये मन तो निरंकार की उपर की सत्ता सहज सत मार्ग के संतों व सतगुरू परमहंसों द्वारा प्रदत ''सार सब्द'' स्मिरण से ही मिटता है। एक बड़ी आलोकिक व अनोखी महिमां है कि ''सार सब्द'' कहीं किसी ग्रंथ में वर्णित नहीं, नां ही शब्दों में कहने व सुनने में आता है इसी कारण इसे ''सब्द विदेह'' नाम से भी जाना जाता है। हां कुछ सहज सत मार्ग के संतों को ये ''सार सब्द'' साहिब कबीर जी से भी सुरति द्वारा मिलता है, ये सहज मार्ग के संतों व सतगुरू परमहंसों के निज अनुभवों द्वारा ही अर्जित किया जाता है तथा ये सुरति से ग्रहण व प्रदान किया जाता है। सर्व–प्रथम सत युग में पूर्ण संत साहिब कबीर जी बिना ''सार सब्द'' के ही स्वयं तो निजधाम जा पहुंचे परन्तु किसी भी मानव को ना तो वे मोक्ष दिला पाऐ और नां ही किसी भी जीव को मन माया से मुक्त करा पाये। इस धरा पर आकर साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान व ब्खान बिना ''सार सब्द'' दात के करने के कारण ही वो किसी भी जीव को भव पार ना करा पाये। अगले जन्म में साहिब कबीर जी ने त्रेता युग में साहिब 'मुन्निंद्र जी' के नाम से साहिब सतपुरूष जी की महिमां के संग–संग सत्तपुरूष जी द्वारा प्रदत ''सार दात'' को बांट कर जीवों को मोक्ष पथ पर अग्रसित किया। इसी कारण ''सार सब्द'' की महिमां ब्खान से परे है क्योंकि इस सब्द में साहिब सतपुरूष जी सुरति रूप में स्वयं विद्यमान होते हैं। कबीर साहिब जी की ही तरहं सहज सत मार्ग के संपूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने भी अपनी निज कमाई से ही ''सार सब्द'' सीधे सतपुरूष जी से सुरति द्वारा दो बार ग्रहण किया।

साहिब मिलन का राज, सतगुरू से पावे सोई।
ये विधि पावे सोहि, जाका सतगुरू सांचा होई।।

''सार सब्द'' विदेह–दात साहिब कबीर जी के उपरांत पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' को दो बार सीधे साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से सुरति द्वारा मिली। प्रथम बार ये ''सार दात'' उन्हें दिनांक 23 मार्च 2012 को लगभग तीन बजे प्रातःकाल तथा दूसरी बार दिनांक 27 नवम्बर 2014 को रिहाड़ी आश्रम में मिली। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' यूं तो पहले भी निरंकार के दायरे में आध्यात्मिक सफ़रनामों पर मीन और पपील चाल से चलते हुऐ अनेकों बार स्वर्ग–नर्क और सुन्न–महांसुन्न लोकों की सैल करते रहे। निरंकार के दायरे में आध्यात्मिक सफ़र मीन और पपील चाल से ही किये जाते हैं जिनकी गति विहंगम चाल से काफ़ी कम होती है परन्तु निजधाम के सफर विहंगम चाल के द्वारा ही किये जाते हैं जिसमें कुछ ही पलों में करोड़ों मील का सफ़र तय किया जा सकता है।

यम को आते देख कर, ईन्द्रियां करें पुकार।
परमहंस सूं दात पाई ना, अब कौन सुने पुकार।।

'मैं कहत हूँ' – 'वे नाम परमहँस जी'

ना कहीं गए ना कहीं आए ।
ना कहीं अटके ना कहीं भटके ।।
ना सुन्न अपनाया ना जाप ने भरमाया ।
ना अनहद में उलझे ना बैकुण्ठ जा समाया ।।
घर में ही रहा, घर में ही सब कुछ पाया ।
समुंद ही बूंद में आ कर के समाया ।।
बस यहीं बैठे बैठे निज मूल सुरति सूं ।
निज मूल रूप में साहिब में जा समाया ।।

सहज सत मार्ग में साहिब सतपुरूष जी से प्रथम बार ''सार सब्द'' सुरति द्वारा ग्रहण करने के उपरांत अपने पहले के तीन निजधाम के सफ़रों के दौरान चहुं ओर तेत्तीस कौटिन देवी–देवताओं का जमघट सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा था। क्योंकि हंसा (आत्मां) तो सुरति रूप है वह चहुं ओर सुरति द्वारा देख सकती है। उसी जमघट में निरंकार दायरे के सच्च खण्ड नानक मार्ग के तीनों गुरूओं में गुरू धर्मदास जी भी खड़े थे, इनके संग–संग राधा–स्वामी गुरू महाराज सावन सिंह जी, निरंकारी गुरू शहनशाह जी जो कि सतगुरू जी के पूर्व जन्मों के गुरू रह चुके हैं व और भी अनगिनत गुरूआजन व महान विभूतियां जैसे महात्मां बुद्ध, जैन मुणि महांवीर, मौहम्मद साहब, मर्यादा पुरूषौतम भगवान श्री रामचन्द्र जी, भगवान श्री कृष्ण जी और त्रिदेवों के संग–संग अनेकों देवी–देव ब्रह्मण्ड में चहुं ओर उनके दर्शनों व स्वागत के लिए खड़े थे।

धरती पर जीव माया में लिप्त होता है परन्तु स्वर्ग–नर्क, पित्र लोक व सुन्न लोकों में सभी सुरति वान होते हैं जिससे जब भी कोई प्राणी परमहंस बन कर मोक्ष की ओर अग्रसित होता है तो इन सब को चेतन सुरति द्वारा इसका आभास पहले से ही हो जाता है। ये सभी देवी–देव गुरूआजन किसी कारण वश मोक्ष से वंचित रह गये होते हैं तथा ये किसी भी जीवात्मां को मोक्ष प्राप्त करके परमहंस बन निजधाम की ओर प्रस्थान करते हुए जब देखते हैं तो अति उत्साहित हो कर उनके स्वागत के लिए एकत्रित हो उमड़ पड़ते हैं।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' द्वारा साहिब सतपुरूष जी से सुरति से ''सार सब्द'' की दीक्षा ग्रहण करने के उपरांत तीसरी रात्री को उनकी 71 पीढ़ियों के सबंधी ''सार सब्द'' की दीक्षा ग्रहण करने के लिए आ पहुंचे। उनमें से अनेकों ने चूड़ीदार पैजामें, धौतियां, अचकने व बंद गले के कुरते पहने हुऐ थे। उनमें से बहुत सी की पौशाकें तो वर्णन से भी परे थी तथा इनमें से कईयों की लम्बाई तो 8 फुट से भी अधिक की थी। सतगुरू परमहंस जी इनमें से चंद एक को ही सुरति द्वारा पहचानते थे। इन सब ने सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' से दीक्षा प्राप्त करने और मानसरोवर में 6 माह तक ''सार–सब्द'' का स्मिरन करने के उपरांत मन से पूर्णतः मुक्त होने पर निजधाम की ओर प्रस्थान किया। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की महिमां का गुणगान इतना महान व आलोकिक है कि इन्होंने जीवित अनगिनत मानवों को तो मोक्ष दिलवाया ही परन्तु साथ ही साथ पित्र लोक से शशि प्रभा जी को सुरति द्वारा बुला कर ''सार–सब्द'' की दीक्षा दिनांक 16 फरवरी 2013 को प्रदान की व उन्हें दिनांक 17 सितंबर 2013 को निजधाम निजघर पहुंचा कर आवागमन से मुक्त करा दिया। इसके संग–संग स्वर्ग लोकों से संत ओशो जी, सूफी संत राबिया जी व धर्मदास जी को दीक्षा दे के निजधाम पहुंचाया। इन सबके ईलावा इस धरा पर अनेकों जीवों को भी उन्होंने दीक्षा दे के मोक्ष पथ का पथिक बना दिया जिनमें से माता शांति देवी जी व माता राजदुलारी जी को जीते जी मोक्ष का अधिकारी बना दिया। शशि प्रभा जी, माता शांति देवी जी व माता राजदुलारी जी से संगत भलि भांति परिचित है। ये सब 'परमहंस' संगत के प्रेरणा स्त्रोत बन गये हैं। इन सबके ईलावा भी कई महान विभुतियां भी सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' से दीक्षा के लिए आ पहुंची, जिनमें से प्रमुख बौद्ध गुरू महात्मां बुद्ध, जैन मुणि महांवीर जी, मौहम्मद साहब जी व और भी अनेकों गुरू व महान हस्तियां दीक्षा के लिए समय–समय पर सतगुरू परमहंस जी के समक्ष आती रहीं। परन्तु सतगुरू परमहंस जी ने इनके जगत में निराकार दायरे के वर्तमान काल में अनगिनत श्रद्धायुक्त अनुयायियों को देखते हुऐ दीक्षा से साफ़ मना कर दिया क्योंकि इनके अपने जगत अनुयायियों की अपने–अपने ईष्टों व गुरूओं पे अपार गहरी श्रद्धा व आस्था है। इन सब दृष्टांतों के ईलावा भी सतगुरू परमहंस जी की दिनचर्या के आलोकिक अनंत लेखनी से परे अनेकों आध्यात्मिक उदाहरण अगामी ग्रंथों में वर्णित होते रहेंगे। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' इस धरा पर साक्षात साहिब सतपुरूष जी के रूप ही नहीं अपितु सभी साधकों के लिए वे साक्षात स्वयं ही साहिब 'सतपुरूष जी' हैं।

निरंकार भगवान तेत्तीस कौटि देवी–देवताओं, आराध्यों, ईष्टों, अवतारों, पैगम्बरों, जड़ व चेतन देवी–देव, कुल–देवताओं, नाग़–देवताओं, यक्षों, गंधर्वों व किन्नरों, राक्षसों, भूत–प्रेतों के रूप के साथ–साथ सत्तियों, समाधियों, पीरों, शहीदों व अनेक प्रकार के

विभिन्न रूपों में अपने अनुयायियों को उनके ईष्टों के रूप अनुसार अपना वही रूप धार के दर्शन देते हैं। इतने भिन्न–भिन्न रूप धारने के बाद भी निरंकार भगवान को उनके अनुयायी उनको और भी अनेक नामों से संबोधित करते हैं तथा त्रिलोकि के 21 लोकों में निरंकार का ही एक छत्र साम्राज्य है व निरंकार भगवान ही हर कण–कण और हर जीव में मन रूप में समाये हैं तथा इन लोकों में निरंकार भगवान की ही महिमां गाई जाती है। सहज सत भक्ति मार्ग / परा भक्ति में साहिब सतपुरूष जी अपने हर साधक से सुरति द्वारा सतगुरू परमहंस रूप में जुड़े रहते हैं। सहज सत भक्ति मार्ग बिन पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आये संभव ही नहीं, क्योंकि साहिब सतगुरू परमहंस जी ने साहिब सतपुरूष जी से सुरति द्वारा ''सार सब्द'' ग्रहण किया होता है जिसमें स्वयं साहिब सतपुरूष जी सुरति रूप में वास करते हैं। साहिब सतगुरू परमहंस जी अपने अनुयायियों व साधकों को यही ''सार सब्द'' विदेह–दात सुरति द्वारा प्रदान करते हैं और इस सब्द का स्मिरन करने से जीवात्मां चेतन होकर मन माया से मुक्त होने की ओर अग्रसित होती है। सहज सत भक्ति मार्ग में सतगुरू परमहंस जी के रूप में ही साहिब सतपुरूष जी दर्श देते हैं इसी कारण इस मार्ग में साहिब सतगुरू परमहंस जी की महिमां अति महान और अवर्णिय है। इस सहज सत मार्ग में ध्यान स्मिरन में सतगुरू परमहंस जी का दर्शन पाना ही मुक्ति मार्ग की ओर एक सकारात्मक कदम है क्योंकि आत्म तो सुरति रूप है, सतगुरू जी सुरति रूप में साधकों संग प्रकट हो के उनकी सुरति को चेतन करते हैं और उनका मोक्ष पथ प्रशस्थ करते हैं।

जब कोई संत साहिबन संग प्यारो, सतलोक को जाऐ।
मूल सुरति सब याद है रखती, चित्त का काम चलाऐ।।

साहिबन सतगुरू रूप धरें, प्यारो मिले मोक्ष द्वार।
जगमग जगमग हो रहा, साहिबन का दरबार।।

28 – सार सब्द व निरंकार पंच शब्द भेद

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' निज कमाई से ग्रहण किये सब्द को ही अपनी संगतों को दीक्षा में देते हैं। अपने सतगुरू द्वारा प्रदत सब्द को उनकी अमानत समझ कर कभी भी किसी को दीक्षा में नहीं देते।

देवी देवों की भक्ति में, लिपट रईयो संसार।
कहे दास सार नाम बिन, कैसे छूटे संसार।।

होठ कण्ठ से जो जपे, वह मानव कहलाऐ।
मन हृदय से जो जपे, सो देव कहलाऐ।

सुरति से सब्द जो सिमरे, वो भव सागर तर जाऐ।।

यह ''सार सब्द'' तो त्रिलोकी के 21 लोकों से परे सतलोक को ले जाने वाली मोक्ष (आवागमण से मुक्ति) दात है। निराकार के दायरे के निर्गुण भक्ति करने वाले उच्च कौटि के गुरूआजन अपने अनुयायियों को पंच–शब्द, 'सोहंग', 'ररंकार', 'सत्त', 'ज्योतिनिरंझन/अलखनिरंझन', 'ऊँ/औंकार' तथा कुछ मध्यम श्रेणी के जगत गुरूजन तो अपने ईष्टों आराध्यों के नाम ही जैसे राम–राम, राम–शाम, राधे–शाम, औम भगवते नमः, औम नमः शिवाए, हरि औम, नारायण और ना जाने कितने अनगिनत नाम दीक्षा में देते हैं इन सबके ईलावा कुछ जगत गुरूआजन ग्रंथों में वर्णित मंत्र ही दीक्षा में दे देते हैं। उपर व्यक्त किये गये दीक्षाधारी भक्तियों में उच्च अवस्था प्राप्ति के उपरांत सात स्वर्गों (पित्र लोक, गौ लोक, भरतपुर, शिवलोक, ब्रह्म लोक, बैकुंठ लोक तथा आद्य् शक्ति लोक) में से किसी एक स्वर्ग में वासा पाते हैं। पंच शब्दों में से किसी भी एक नाम की दीक्षा या कंई गुरू तो पंच के पंच शब्द ही दीक्षा में दे देते हैं। पर कोई बिरले ऋषि–मुणि, योगी–यति ही उच्च अवस्था प्राप्ति हेतु घौर तपस्या कर, पंच–मुद्राओं (चाचरी, भूचरी, अगोचरी, ऊनमुनि व खेचरी मुद्रा) व चार मुक्ति अवस्थाओं (सामिप्य, सालुक्य, साशिप्य व सायुज्म मुक्ति) में से किसी एक मुद्रा व एक मुक्ति अवस्था को पाकर ऋद्धि–सिद्धी प्राप्त करने उपरांत सुन्न व महांसुन्न लोकों में स्थान पाते हैं। जैसे ये त्रिलोकी 21 लोकों, 7 पाताल लोकों, 7 स्वर्ग–नर्क, 7 सुन्न लोकों से सुसज्जित है, ठीक वैसे ही इस मानव काया के भीतर भी पूरी की पूरी त्रिलोकी समाई हुई है।

ऋषि मुणि गण गंधर्व अरू देवा, सब करते मन सेव।
तीन लोक मन राज है, कोई बिरला जाने भेद।।

वो ही बड़ा जो संग खड़ा, बड़ा ना ड़ूंढो बाहर।
वह तो तेरे घट में रहता, तुमहि ड़ूंढो बाहर।।

साहिब ''वे नाम परमहँस'' जी की वाणी अनुसार निरंकार भगवान जी की निर्गुण रूप में भक्तियां करने वाले उच्च कौटि के साधकजन अपने अपने गुरूओं से पँच शब्द की दीक्षा पाते हैं। कोई कोई गुरूआजन एक अथ्वा दौ शब्द दीक्षा में देते हैं और कंई कंई तो पाँचों के पाँचों शब्द ही दीक्षा में दे देते हैं। ये पँच शब्द, शब्द ना होके विदेह सब्द हैं। इन शब्दों के मुख व मन से ध्याते और सिमरते ही ये 'विदेह सब्द' ना रह के वर्णात्मक शब्द ही बन कर रह जाते हैं। मूलतः ये सब्द साहिब सतपुरूष जी ने अपनी सुरति से ही उच्चारे हैं जिस कारण ये पाँचों शब्द 'सब्द विदेह' ही हैं, अगरचे इन विदेह सब्दों को सुरती द्वारा सिमरा जाये तो जीव पूर्ण सुरतिवान होकर आवागमण से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। भगवान निरंकार ने जगत में भ्रम रूपी अंधकार को इतना प्रगाढ़ कर दिया है कि जीवात्मां निरंकार रूपी मन, मन रूपी काया व मन रूपी भौतिक जगत के संसाधनों के प्रयोग से की गई भक्तियां, सिमरन व ध्यान ये सब केवल जगतपति त्रिलोकिनाथ भगवान निरंकार जी तक ही पहुंचती हैं। जिससे जीवात्मां बारम्बार अपने कर्म प्रालब्ध अनुसार ही निरंकार के ईक्किस लोकों में जमता और मरता है।

वेद क्तेव भ्रम में डालते, नर ना जाने साहिबन दरबार।

भ्रम करि कर्म धर्म ठहराया, नर जाने ना सांची सरकार।।

सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी ही मूलसुरति साहिबन रूप जगत में विराजमान होते हैं। हालांकि सतगुरू परमहंस जी दीक्षा में जो विदेह दात 'सार सब्द' सुरति द्वारा अपने साधकों को देते हैं वह इन पँच शब्दों से परे 'सब्द विदेह' होते हैं तथा इन्हें कभी भी कलमबद्ध नहीं किया जा सकता। ये 'सार सब्द' दात साहिब सतगुरू परमहंस जी सुरति से ही साधकों को प्रदान करते हैं। तभी तो विदेह दात 'सार सब्द' सुरति से सिमरते ही साधकों की निरति और सुरति मिल कर मूल सुरति बन जाती है। मूल सुरति बनते ही जीवात्मां हंसा रूप पाकर सतगुरू संग मन माया से मुक्त हो कर 'निजधाम' अपने घर पहुंच जाता है तथा पुनः गर्भ में कभी भी नहीं आता। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार जो पँच सब्द साहिब सतपुरूष जी ने उच्चारे, उन्हीं से तो पँच तत्व प्रकट हुऐ :— 'सोहंग' से वायु, 'ररंकार' से सुन्न (आकाश तत्व), 'सत्त' से धरती, 'ज्योतिनिरंझन/अलखनिरंझन' से अग्नि, 'ऊँ/औंकार' से जल तत्व प्रकटे।

जगत में प्रायः गुरूओं द्वारा साधकों में ईक भ्रम सा फैला दिया गया है कि भगवान निरंकार ने त्रिलोकि जगत की रचना बिन साहिब सतपुरूष जी की ईच्छा के ही की है। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार ये पँच सब्द व पँच तत्व प्रकट कर के भगवान निरंकार को सौंपने के पीछे जगत रचना की मौन स्वीकृति ही छुपी थी तथा निरंकार व साहिब सतपुरूष जी में कहीं भी कोई प्रतिर्स्पदा नहीं है।

बलिहारी जाऊँ सतगुरू अपने, जिन दीनी सार सुरति सतरंग।
जित देखूं प्रेम रंग छाया, सतपुरूष ही हैं प्रेम प्रीत का रंग।।

29 — पंच तत्व पसार

पृथ्वी पानी वायु अग्नि, सुन्न संसार नाशवान।
बिन आत्म सब का नाष, चौथा लोक अमरपुर ले जान।।

दास कहे जग में कोई नहीं कंगाल, सब हैं मालामाल।
जो जाने निज रूप को, पाये प्रेम आनंद लाल ही लाल।।

जगत के सभी जीव एक, दो, तीन या चार तत्वों से बने तत्वधारी हैं। परन्तु

मानव–काया ही केवल पंच–तत्वधारी है तथा ये सारे का सारा ब्रह्मण्ड भी पंच तत्वों के मेल से ही बना है। इसी कारण समस्त ब्रह्मण्ड की रचना इस भौतिक त्रिलोकि के साथ–साथ मानव की काया पिण्ड के अंदर भी विद्यमान है। तभी तो संत वाणी अनुसार **'यथा–ब्रह्मण्डे तथा पिण्डे'** की बात कही जाती है।

सब कुछ मिलता भीतर, बाहर नर्क द्वार।
मन जानो सब आसार, प्यारो प्रलोभन द्वार।।

पंच तत्व का जीव ये, जग आवे बारम्बार।
आशा तृष्णा जब तक संग, मरता रहे बारम्बार।

यह जो सारे का सारा ब्रह्माण्ड आंखों से दिखने वाला व अदृष्य, इस पिण्ड अर्थात शरीर के भीतर भी विद्यमान है। इस मानव काया का सृजन सारी सृष्टि् व सब जीवों को रचने के उपरांत हुआ। प्रकृति के सभी पंच–तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश) केवल मनुष्य की काया में ही विद्यमान हैं। जलचर, नभचर व थलचर एक दो तीन या चार तत्व धारी हैं, बस अनमोल मानव काया और सारी प्रकृति ही पंच–तत्वों द्वारा रचे गये हैं। जल जीव मच्छ–मछली एक तत्व धारी (जल), कीट–पतंगे दौ तत्व धारी (पृथ्वी–अग्नि), पक्षी–परिंदे तीन तत्व धारी पृथ्वी, अग्नि, वायु, पशु चार तत्व धारी जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और केवल मानव ही पंच तत्व धारी हैं। जल–चर, पक्षी, जानवर व कीट पतंगे कर्म इन्द्रियों के स्वामी होते हुए भी केवल कर्म फल भौग धारी हैं, अगरचे इन सब में भी मन विद्यमान होता है परन्तु ये सारा जीवन स्वपन्न अवस्था में ही व्यतीत कर देते हैं। मानव काया में ही सहज सत मार्ग के सतगुरू परमहंसों की शरणी में जाके (पूर्ण मुक्ति) मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है परन्तु भौतिक जगत की चकाचौंध में मानव ऐसे भ्रमित हो जाता है कि वह निरंकार भगवान की सर्गुण–निर्गुण भक्तियां भी निरंतर केवल जग में सुख सुविधाओं की पूर्ती के लिए ही किए जा रहा है। बस मानव ही ज्ञान ईन्द्रियों व अंतःकरण ईन्द्रियों से युक्त होने के कारण कर्मों का कर्ता व प्रालब्ध का जनक है, बाकी सभी योनियां प्रालब्ध भौग योनियां हैं। मानव काया अति श्रेष्ठ, दुर्लभ व अनमोल है, इसे मालिक की ही भक्ति में लगाओ, मुक्त हो जाओ अन्यथा भौग योनियों में नित्कृष्ट संसारिक कर्मों को कमा कमा कर जन्म–मरन के जंजाल में उलझ कर रह जाओगे।

कल के सपने बहुत सुहाने, बहुतों को डुबोया ईक साथ।
सतगुरू समझा रहे, मत खोना ये अवसर आत्म संग साथ।।

कच्चे घड़े जल ना रूक सके, जान लो सच्ची बात।

होश के पक्के जब बनो, सब कुछ पा लो संग साथ।।
अभी तो तुम सोये पड़े हो, किस विध करोगे प्रीत।
अब तो तुम तुम ही नहीं, कोन करे तुम संग प्रीत।।

एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि जग में सुख मोज मस्ती व ऐश प्रस्ती तो जितनी चाहे कर लो परन्तु कोई भी मानव शांत, तृप्त व प्रसन्न केवल आध्यात्मिक सत्संगों और प्रवचनों को आत्मसात कर के ही हो सकता है। जीवन में कभी भी आनंदमयी नहीं हुआ जा सकता, आनंद तो आशा–तृष्णा रहित आत्म अर्थात 'हंसा' का विषय है। तभी तो संतों की वाणी अनुसार मायावी जग में निज को भूला हुआ मानव कभी भी आनंद प्राप्त नहीं कर सकता। एक बार आनंद प्राप्ति हो जाये तो इसके उपरांत काम, क्रौध, आशा–तृष्णा तथा सुख–दुख पीढ़ा नहीं आ सकती अर्थात दुख–पीढ़ा से परे ही आनंद को महसूस किया जा सकता है। जग तो आनंद शब्द अलंकार के रूप में प्रयोग करता है, करता रहे, पर यह विषय तो मायावी जग जीवों से परे का विषय है। सत्य तो यह है जहां कोई विषय–विकार, विचार उद्विग्नता सुख दुख ना हो, केवल असीम अनंत ठहराव अर्थात शांतमयी अवस्था ही आनंद है। यह अवस्था तो इस त्रिलोकी माया नगरी में संभव ही नहीं हो सकती। यह संसारिक त्रिलोकी तो अनगिनत भड़कीले रंगों व प्रकाशों तथा प्रपंचों से भरी पड़ी है, ये त्रिलोकी छल–कपट, जन्म–मरन, सत्य–असत्य कर्म भौग रूपी द्वैत से भरी पड़ी है। यहां पर हर मानव बाहर से तो प्रीत–प्रेम का दिखावा करता है परन्तु अंताःकरण में संशय से भरा हुआ है। आत्मां इन सब का परित्याग कर, शुद्ध निर्मल पवन से पतला सुरति रूप धारण कर आनंदमयी अवस्था को प्राप्त कर सकती है, अर्थात 'हंसा' आनंद रूप ही है तथा साहिब सतपुरूष जी का परमानंद रूप ही सतलोक है। बहुत से सहज सत मार्ग के परमहंसों ने सतलोक को निजघर, हंसा लोक, हंसा धाम, अमरपुर व बेगमपुर भी कहा है। सतलोक तो शांत मय जहां नां कोई सूरज चांद सितारे हैं फिर भी प्रकाशमान है। असीम अनंत ठहराव का महां समुन्दर जहां हर हंसा निज रूप में विचरता व सुरति से सब व्यवहार करता है, हर हंसा अपने आप में पूर्ण एक रस सुरति पसार है। भूख–प्यास, सुख–दुख, राग–द्वेष, आशा–तृष्णा, गर्मी–सर्दी, बड़ना–मिटना, सोना–जागना, मिलना–बिछुड़ना, जमना–मरना तथा ज्ञान–अज्ञान ये सारे के सारे द्वैत त्रिलोकी विस्तार के आधार हैं, त्रिलोकी तो इसी द्वैत भाव ही से रची गई जो कि रचना काल से लेकर अभी तक भी निरंतर विस्तृत होती जा रही है। तभी तो सृष्टि् रचना का विनाष अर्थात प्रलयः द्वैत रूपी माया के दो अलग–अलग परन्तु निष्चित पहलु हैं।

मन माया तूं त्याग दे, सुरत सब्द का कर ध्यान।
निःअक्षर सब्द सुरति धारे, पल छिन में निर्वाण।।

निरंकार है देता जीव को, अन्न हवा पानी का दान।
तांहि तो जीव कैद में, सार सुरति सूं चेतन प्राण।।

30 – यथा पिण्डे तथा ब्रह्मण्डे

इस घट अंदर अनहद गरजे, सुरति बाण फुहारा रे।
कहत वे नाम सुनो रे प्यारो, इस में साहिबन वासा रे।
सत्तपुरूष बिन और ना दूजा, जुगन जुगन का संग हमारा रे।।

निरंकार भगवान जी ने ये सारी की सारी त्रिलोकि रचना हँसा (जीवात्मांओं) को भ्रमण करवाने हेतु ही रची थी। इस सारी की सारी त्रिलोकि में जीवों की काया एक, दौ, तीन अथ्वा चार तत्वों से युक्त है, केवल मानव काया ही इस त्रिलोकि में पंच तत्वधारी है। संपूर्ण ब्रह्मण्ड सहित सारी की सारी त्रिलोकि पंच तत्वों से ही रची गई है। केवल एकमात्र मानव काया में ही हँसा पूर्ण सुरतिवान होके मोक्ष प्राप्त कर सकता है अर्थात आवागमण के जाल से मुक्त हो सकता है।

त्रिलोकि संरचना क्रम में मानव काया धारते ही हँसा सुरतिवान होने से अपने निजधाम अमरपुर जा पहुंचता है, अगर इसी क्रमबध श्रृंखला से सभी हँसा एक एक करके मोक्ष को प्राप्त हो जाते तो त्रिलोकि का सारा प्रपंच धरे का धरा रह जाता। बस इसी भाव वशिभूत निरंकार भगवान जी ने हँसा (जो मूलतः सुरति रूप है) सुरति को मानव काया के भीतर सात खण्डों में विभक्त कर दिया है। निरंकार भगवान जी यहीं नहीं रूके, उन्होंने तो सारी की सारी त्रिलोकि का महां अम्बार जीव काया के भीतर भी रच दिया।

मानव भौतिक जगत रूपी माया से भ्रमित होने के संग संग भीतर से भी इस विशाल विक्राल परन्तु मोहनी माया के जाल में उलझ कर रह गया। भगवान निरंकार जी ने तो इन सब भीतरी व बाहरी प्रपंचों की रचना करने के संग संग स्वयं को भी मन रूप में सभी जीव कायाओं में स्थापित कर दिया। चहुं ओर से माया जाल से ग्रसित जीव मन के वश तो पड़ा ही है, इस के साथ साथ सृष्टि् संचालन हेतु 33 प्रकार (कौटिन) के माया रूपी देवी देव भी जीवात्मां को प्रलोभन भरी मोहनी माया रूपी संसाधनों के वर देने के कार्य में संलग्न हैं जिससे जीवात्मां महांकाल के महां प्रपंच रूपी क्रूर जाल में और भी अधिक धंसता व फंसता चला जा रहा है।

सहज सत मार्ग / परा भक्ति / बृहंगा मत के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आये बिन इस महांकाल रूपी मन माया में रमे चक्रव्यूह से कोई भी जीवात्मां आवागमण से मुक्त नहीं हो सकता। तो आईये हम सब वर्तमान काल के एकमात्र पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी में आ कर मोक्ष पथ की ओर अग्रसित हों और इस दुर्लभ मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर के इसे सार्थक करें।

31 – काया भीतर ईक्कीस लोक

इस सृष्टि् की सर्वश्रेष्ठ रचना व आलोकिक शाहकार यह मानव काया ही है। जिस प्रकार भगवान निरंकार जी ने संपूर्ण त्रिलोकी सहित सृष्टि् की रचना की ठीक उसी प्रकार उन्होंने मानव काया के भीतर भी सारी त्रिलोकी की संरचना की है। जिस प्रकार संपूर्ण त्रिलोकी का विधान और क्रियशीलता भगवान निरंकार जी स्वयं संचालित करते हैं ठीक उसी प्रकार मानव काया के भीतर भी निरंकार भगवान मन रूप में विद्यमान होकर इस काया के संपूर्ण कार्य को संचालित करते हैं। इस सब के संचालन में मां आद्यशक्ति, त्रिदेव व तेतीस कौटिन देवी देव भी भगवान निरंकार के इस कार्य में सहायक होते हैं। इन सब के संग संग निरंकार भगवान जी ने मोहनी माया का आशा तृष्णा, काम वासना, विषय भौग व ना ना प्रकार के सम्मोहन भरे प्रयोजनों को रच डाला। भगवान निरंकार जी का इस सारे त्रिलोकी पसार और प्रपंचों को रचने का एक मात्र प्रयोजन केवल चेतन सत्ता 'हंसात्मां' को उसकी निज पहचान अर्थात अपने मूल से दूर रखना ही था। केवल बस इसी कारण वश भगवान निरंकार ने अण्ड मण्ड ब्रह्मण्ड अंतहीन त्रिलोकी को रच डाला। एक ओर 'हंसा' (आत्मां–मन=हंसा) अकेला और दूसरी ओर उसे त्रिलोकी की सम्मोहन भरी भूल भुलेयों में उलझाने के लिये भगवान निरंकार व आद्यशक्ति सहित तेत्तीस कौटिन देवी देवताओं का विस्तार !

काम क्रौध लोभ अहंकार, मन माया लहर सृष्टि् पसार।
बिन मान तजे लहर ना जाये, यही लहर भटकावे संसार।।

संतों की वाणी अनुसार इस मानव काया में कमर से नीचे सात पाताल लोक (अतल, वितल, सुतल, तलातल, महांतल, रसातल व पाताल लोक) हैं। जैसे ये सात लोक काया के भीतर हैं वैसे ही ये सात लोक धरा की गहराईयों में भी हैं, जहां जीव वास करते हैं जैसे सात पाताल लोक, सात स्वर्ग व सात सुन्न लोक ब्रह्मण्ड में हैं, ठीक वैसे ही ये ईक्कीस लोक मानव काया के भीतर भी विद्यमान हैं। जिस कारण मानव भीतर व बाहर दोनों ओर से दृगभ्रमित हो कर अपना निज हंसा रूप भुलाये बैठा है तथा सारे कृत्य अपने आप को केवल शरीर मान के ही किये जा रहा है। बहुत से मानव इन पाताल लोकों को नाग लोक भी कहते हैं। मानव काया अति श्रेष्ठ, अनमोल एवमः मोक्षदायी है, इसे मालिक की भक्ति में लगाओ, मुक्त हो जाओ अथ्वा भौग योनियों में नित्कृष्ट नीच कर्म कमा कर जन्म–मरन बंधन में अंतहीन कष्ट पाओ।

जागे को हीरा मिले, सुरति का मूल ज्ञान।
पत्थर हीरा ईक सम, सतगुरू की ये पहचान।।

32 – सात पाताल लोक

संत वाणी अनुसार मानव काया में कमर से नीचे 7 पाताल लोक हैं :–

(1) कमर के भाग में अत्तल लोक है ।
(2) कमर से थोड़ा नीचे पट्ठे के ऊपरी भाग पर वित्तल लोक है।
(3) घुटने से थोड़े ऊपर पट्ठे के निचले भाग में सुत्तल लोक है।
(4) घुटने में तलातल लोक है।
(5) घुटने से नीचे महातल लोक है।
(6) टखने में रसातल लोक है।
(7) ठीक पांव के नीचे पाताल लोक है।

जैसे ये 7 पाताल लोक मानव काया के भीतर विद्यमान हैं ठीक वैसे ही ये 7 पाताल लोक धरती की ऊपरी परत के भीतर थोड़ी गहराई से लेकर अंतहीन गहराईयों तक व सागर के नीचे की ओर अनंत गहराईयों तक फैले हुए हैं। यहां एक बात सर्वथा ज्ञात रहे कि 7 स्वर्ग व 7 सुन्न–महां लोकों में वासा करने वाले ऋषि–मुणि योगी–योगेश्वर भ्रमण करने हेतु इन पाताल लोकों में आते हैं।

सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी इन पाताल लोकों में भ्रमण हेतु कभी नहीं आते क्योंकि यहां तो जीव केवल कर्मों के भौग हेतु ही आता है।

जैसे 7 स्वर्ग जो परम सुखकारी व 7 नर्क अति दुखदाई त्रिलोकी में है, ठीक वैसे ही 7 स्वर्ग और 7 नर्क मानव काया में भी हैं।

33 – सात स्वर्ग

(1) **मूलाधार चक्र :** मल–द्वार को सिद्धी लोक भी कहते हैं, यहां पर भगवान गणेश जी का वासा है। मानव ऋद्धि–सिद्धी प्राप्ति हेतु मूलाधार चक्र में ध्यान लगाते हैं। कुछ तांत्रिक लोग तांत्रिक–सिद्धियों व वशिकरण सिद्धि हेतु भी यहां ध्यान लगाते हैं तथा जग में चमत्कार कर सिद्ध पुरूष कहलाते हैं। बहुत से तांत्रिक अपनी सिद्धियों का दुरउपयोग भी करते हैं। जीवों द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थों से आवश्यक ऊर्जा युक्त तत्व को ये शरीर ग्रहण करने के उपरांत बाकी बचे व्यर्थ पदार्थों को ये द्वार शरीर से बाहर निकाल कर इसे साफ़ और स्वच्छ रखने का कार्य करता है। ज्ञानी ध्यानी ऋद्धि सिद्धियों

को सिद्ध करने हेतु मूलाधार चक्र में ध्यान लगाते हैं तथा त्वागं शब्द का जाप करते हैं। जो निस्वार्थ भाव से इस चक्र में ध्यान लगा कर त्वांग शब्द का स्मिरण करते हैं वे मृत्यु उपरांत शिव लोक में वासा पाते हैं।

(2) स्वादिष्ट्ठान चक्र : जल–त्याग–द्वार जिसे ब्रह्म लोक भी कहते हैं, यहां जगत रचियता ब्रह्मा जी का वास है, यहां से संसार वृद्धि व नवीन जीवों का सृजन होता है। बहुत से तपि यहां पर ध्यान लगा कर व ब्रह्मचारी, सन्यासी बन कर काम वासना का दमन कर बलिष्ठ योगी बन ब्रह्म लोक में वासा पाते हैं। इस द्वार के माध्यम से शरीर दूषित व व्यर्थ द्रव्य पदार्थों को बाहर निकाल देता है जिस से शरीर के भीतर की स्वच्छता बनी रहती है, यहां पर ध्यान करने वाले सत्त शब्द का स्मिरण करते हैं। इस द्वार को जनन्द्रीय द्वार भी कहा जाता है।

(3) मणिपुर चक्र : नाभी–स्थान एवमः चक्र में भगवान विष्णु जी वास करते हैं, सारी काया को ऊर्जा व स्फूर्ती प्रदान करने का यही मुख्य स्थान है। यहां पर भक्त जन ध्यान में नारायण शब्द का जाप करते हैं। इस स्थान पर ध्यान करने वाले भगत जन जग में ऋषि–मुणि, साधु, महात्मां–जन यहां पर ध्यान लगाने वाले प्रसिद्धि पाकर मृत्यु उपरांत बैकुण्ठ में वासा पाते हैं, यह स्थान सारे शरीर की ऊर्जा की पूर्ती के लिये ऊर्जा स्त्रोत स्थान है, जीव जो भी कुछ ग्रहण करता है इसी चक्र में ही पाचन क्रिया उपरांत सारे शरीर के लिये ऊर्जा का संग्रह एकत्र होता है जो सारे शरीर को हृष्ट पृष्ठ व बलिष्ठ बनाने का कार्य करता है।

(4) हृदय/अनह्द चक्र : छाती के मध्य का स्थान शिव लोक कहलाता है, यहां भगवान भोले नाथ जी वासा करते हैं। नाभी स्थल मनिपुर चक्र से रक्त उत्पति उपरांत रक्त को शुद्ध कर व गति प्रदान करके सारे शरीर में रक्त प्रवाह का संचार अंग–अंग तक पहुंचता है, जिससे सारे शरीर के अंग बलिष्ठ हो क्रियाशील होते हैं। अंतकाल में यहीं से रक्त संचार का प्रवाह रूक जाने से प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है। शरीर जब वृद्ध, किसी रोग व दुर्घटना वश आत्म के ठहरने के योग्य नहीं रहता तब संहार के देवता भूत नाथ शिव जी इस शरीर से प्राणों को विमुक्त कर देते हैं। खण्डर जर्जर ना रहने योग्य कष्टप्रद शरीर से जीवों के प्राण को हर नव नवीन काया अर्थात बाल्य अवस्था के हृष्ट्–पृष्ठ शरीर धारण करवा देते हैं, तभी तो शिव जी को भोले नाथ और जगत जीवों का कल्याणकारी भी कहा जाता है। भोले नाथ जी को भजने वाले भक्त जन अपने ध्यान में त्वांग तत्त शब्द तथा ओम नमः शिवाये मंत्र का जाप करते हैं जो यहां पर ध्यान करने पर मृत्यु उपरांत शिव लोक को प्राप्त करते हैं।

(5) विशुद्ध/कण्ठ चक्र : कण्ठ स्थान मां आद्य्–शक्ति का निवास स्थान है, इस स्थान पर ध्यान व भक्ति करने वाले आद्य् शक्ति लोक में वासा पाते हैं। आद्य्शक्ति के उपासक कण्ठ चक्र में ध्यान लगा कर जय जगदम्बे व जय माता दी शब्दों का जाप करते हैं। महांलक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, दुर्गा व काली आदि भी मां आद्य् शक्ति के ही सरूप हैं, इनमें से किसी भी सरूप की पूजा आराधना करने वाले मृत्यु उपरांत आद्य् शक्ति लोक में प्राणी वासा पाते है। इस स्थान पर ध्यान करने वाले विद्वान, प्रखर वाचक, ज्ञान का पसार करने वाले ज्ञानी जन होते हैं। आद्य् शक्ति सरस्वती रूप के

कृपा पात्र बड़े–बड़े संगीतज्ञ, ज्ञानी व गायक जग में नाम व धन की प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। मां लक्ष्मी के रूप की पूजा करने वाले बड़े धण्डय होते हैं तथा मां दुर्गा व काली की पूजा करने वाले बलशाली और शूरवीर होते हैं। बहुत सारे भगत जन यहीं पर इसे आद्य्–शक्ति–भक्ति की अंतिम परिकाष्ठा समझ लेते हैं। इस कण्ठ चक्र से शरीर स्वस्थवर्धक भौज व जल ग्रहण करता है जिससे शरीर में ऊर्जा व रक्त का संचार होता है तथा यहीं से शरीर में वायु का भी संचार होता है। जिसे ग्रहण करने उपरांत शरीर कार्य करने योग्य शक्ति प्राप्त करता है।

(6) आज्ञा–चक्र : भृकुटि स्थान ये निरंकार का निज लोक है। इस स्थान पर भगवान निरंकार का ध्यान करने वाले भक्त जन अलख निरंझन, ऊँ व ओ३म शब्दों का जाप करते हैं। जगत में सर्वसाधारण व ज्ञानी ध्यानी इस स्थान का ध्यान करने पर निराकार भगवान के सुन्न रूप में दर्शन पाते हैं। बड़े–बड़े जपि–तपि, साध, सन्यासी, हठ्योगी व ध्यानी जन भी इस लोक तक की ही भक्ति करते हैं और इसे निराकार की भक्ति की अंतिम परिकाष्ठा समझ लेते हैं तथा यहीं से मृत्यु के उपरांत अपने–अपने ईष्टों के स्वर्गों में जाते हैं। योगी योगेश्वर व ध्यानी जन सुन्न लोकों में अपनी–अपनी भक्ति की परिकाष्ठा अनुसार ही स्थान पाते हैं। निरंकार भक्ति में कोई बिरला जन ही आज्ञा चक्र के आगे की भक्ति को प्राप्त होता है। यहां पर ध्यान करने वालों का 90 प्रतिशत तक मन शांत हो जाता है परन्तु यदा–कदा मन तरंग उठने की संभावना बनी रहती है। इस भृकुटि स्थान में ध्यान करने पर स्मरण शक्ति तीव्र हो जाती है जिससे जीव जगत में विद्वान व ज्ञानी बन कर यश को प्राप्त होता है। भृकुटि स्थान में ही आत्मां का भी निवास होता है परन्तु गहन निंद्रा अर्थात स्वपन अवस्था में ये कान से ठीक नीचे की ओर विशुद्ध चक्र में कण्ठ के बांई तरफ वास करती है। गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले भक्त जन मृत्यु उपरांत अपने अपने ईष्टों के लोक में स्थान पाते हैं तथा सन्यासी व ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले भक्त जन मृत्यु उपरांत शुद्ध ब्रह्म लोक, सहशास्त्रार सार या सुन्न लोकों में वासा पाते हैं।

(7) सहशास्त्र–चक्र : दशम द्वार काल निरंझन लोक निराकार भक्ति का अंतिम पड़ाव है, ये माथे के ऊपर सिर के मध्य में स्थित है। सहशास्त्र चक्र को बहुत से ज्ञानी जन काल निरंझन कालपुरूष महांकाल का वास स्थान भी कहते हैं। भगवान काल निरंझन निराकार जी को भजने वाले भक्त जन सहशास्त्रार चक्र में ध्यान लगा कर औंकार और रंरकार शब्दों का जाप करते हैं। सहस्त्रार/सहशास्त्रार चक्र दशम द्वार में ध्यान लगा कर निरंकार दायरे की उच्चतम अवस्था को प्राप्त करने वाले भक्त जन योगी, महांयोगी, योगेश्वर व महां योगेश्वर कहलाते हैं। इस स्थान से प्राण तजने वाले भक्त जन शुद्ध ब्रह्म लोक, सहशास्त्रार सार या सुन्न लोकों में वासा पाते हैं। यहां कोई बिरला उच्चकौटि का भक्त जन ही ध्यान लगा कर पहुंचता है। सुन्न लोकों में मुछंदर नाथ जी, राजा जनक, अष्टावक्र आदि योगियों ने स्थान पाया है। यहां पर योगी जन ही ध्यान लगाते हैं परन्तु कंई–कंई महां योगेश्वर अत्याधिक कठौर भक्ति के उपरांत शरीर त्यागने पर महां सुन्न लोकों में वासा पाते हैं। महां सुन्न में स्थान पाने वाले योगेश्वर जन 21 लोकों में कहीं भी आ जा सकते हैं तथा ये सभी ऋद्धियों–सिद्धियों के स्वामी होते हैं। अभी तक जगत में सात महां योगेश्वर हुए हैं जिनमें सुखदेव जी, गौरखनाथ जी, दत्तात्रेय जी, महां ऋषि वेद व्यास जी व त्रिदेव ब्रह्मां–विष्णु–महेश जी

हुए हैं ये निरंकार दायरे की सबसे उच्चतम अवस्था है परन्तु इस अवस्था में भी 99 प्रतिशत मन समाप्त हो जाता है परन्तु 1 प्रतिशत मन फिर भी शेष रह जाता है। इस सहस्त्रार चक्र में ध्यान लगाने वाले तीव्र बुद्धि वाले त्रिकालदर्षि विद्वान होते हैं।

निरंकार की भक्ति की सीमा के उपरांत आगे की भक्ति सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संतों व सतगुरू परमहंस जी की कृपा से ''सार नाम'' की दात पाने के बाद कोई बिरला जन ही शरीर से सवा हाथ उपर भक्ति की परिकाष्ठा से सुरत–कमल में पहुंचता है। सुरत–कमल सहज सत्त मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंसों का निज लोक है। सुरत–कमल में वहीं पर सतगुरू परमहंस जी के दर्शन पाकर सतगुरू रूप में प्रकट साहिब सतपुरूष जी संग मन–माया से रहित होकर 'हंसा' बन जीव निजघर सतलोक जाता है। 'हंसा' निज रूप में मोक्ष पाकर जन्म मरन के बंधन से मुक्त होकर वह परमहंस कहलाता है।

34 – सात नर्क

जैसे सात स्वर्ग इस त्रिलोकि में विद्मान हैं ठीक वैसे ही सात नर्क भी त्रिलोकी व इस मानव काया के भीतर भी समाये हैं।

(1) मस्तिष्क नर्क : मस्तिष्क मानव काया का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मस्तिष्क अर्थात दिमाग यहीं से शरीर की सारी गतिविधियों का संचालन और नियंत्रण होता है। इसे शरीर का नियंत्रण कक्ष भी कहते हैं, जिससे उठने वाली तरंगों द्वारा सारे शरीर की व्यवस्था सुचारू व सकुशल रूप से चलती है। मस्तिष्क में किसी प्रकार की विकृति आ जाने पर सारा शरीर सबल होने उपरांत भी मानव का शरीर पे नियंत्रण नहीं रहता है। मानसिक चिकित्सक विशेषज्ञ व साधारण मानव भी इस अवस्था वाले को मनोरोगी, मंदबुद्धि अथ्वा पागल कहते हैं। ऐसे रोगों का निधान संभव ही नहीं, चिकित्सक ने इन्हें नशे से युक्त दवा देकर गहन निंद्रा अवस्था में ले जाते हैं। होश में आने पर वह अपना पूर्ण मानसिक संतुलन सामान्य नहीं रख पाते। ऐसे रोगी कभी भी पूर्णतः कुशल नहीं हो पाते, दवा बंद करते ही ये कुछ काल उपरांत पुनः रोग अवस्था में लोट आते हैं। इस अवस्था वाला मानव जीते जी स्वपन अवस्था व पूर्वाग्रह से ग्रसित एवमः भयभीत हुआ इस मनोस्थिती से बाहर नहीं आ पाता, जिससे अपने आप पर सामर्थ व उचित नियंत्रण नहीं कर पाता। ऐसा प्राणी जीते जी ही महां नर्क में होने के समान होता है।

(2) कण्ठ–नेत्र दौष नर्क : किसी भी मानव जीवन में वाणी का ना होना एक अति दुर्भाग्य पूर्ण अभाव है। बोलने की शक्ति ना होने से मानव सुनने से भी वंचित अर्थात श्रवणहीन हो जाता है। इस अवस्था वाले मानव भी जीते जी नर्क भौगी समान ही होते है। गूंगेपन वाला मानव ध्वणियों का उच्चारण ना कर पाने के कारण ध्वणियों की धुणों को श्रवन कर पहचान ही नहीं पाते तथा संगीत व ज्ञानवर्धक वार्तालाप अर्थात सत्संग से भी वे वंचित रह जाते हैं, वे गूंगे के साथ सदा के लिए बहरे भी हो जाते हैं। इस अवस्था वाले लोग सारा जीवन संकेतों द्वारा ही अपना जीवन यापन करते हैं। इसी श्रेणी में नेत्रहीन भी आते हैं। 90 प्रतिशत नेत्रहीन अपना

जीवन अंधकारमय जान कर मानसिक तौर पर असहाय ही व्यतीत कर देते हैं। ऐसे मानवों के लिए ना देख पाना एक महां नर्क है तथा यह अक्सर अधिकतर समय स्वपन लेते सपने में ही अपने आप को श्रेष्ठ देखते–देखते जग के प्रति अभिरूची कम कर देते हैं। जिससे मानसिक तनाव तथा अपने आप को पराजित व पर–वश समझते हैं। ये नेत्रहीन गणित में माहिर होते हैं जिस कारण ये अपना गणतव्य कदमों से नाप कर ही कुशल से कुशलतम होते चले जाते हैं, एक बार अगर ये कहीं किसी स्थान पर हो आयें तो भविष्य काल में पुनः इन्हें वहां बिना किसी सहारे के पहुंचने में कोई भी कठिनाई पेश नहीं आती। इन दोनों श्रेणियों के 90 प्रतिशत मानव इस विवशता व हताशा वशिभूत गन्दा व असहाय जीवन व्यतीत कर देते हैं, इनमें से लगभग 10 प्रतिशत सौभाग्यशाली लोग अपनों व समाज का सहारा मिलने पर असहाय होते हुए भी साधारण सा जीवन व्यतीत कर पाते हैं। इनके एक अंग शिथिल (अंगहीन) होने के कारण दूसरे अंग कुछ अधिक ऊर्जावान होके अत्यधिक क्रियाशील हो जाते हैं जिस कारण वे अपने अधिकतर काम सुचारू रूप से करने में सक्षम हो जाते हैं। चाहे कितना भी अच्छा जीवन ये व्यतीत करें परन्तु अंतःकरण में बेचारगी–पूर्ण व असहाय होने के एहसास को अपने से अलग नहीं कर पाते और एक चिड़चिड़ेपन व अपाहिज ग्रस्त होने के भाव से ग्रसित हो जाते हैं जिससे अक्सर वे क्रौधित हो उठते हैं। ऐसे मानव जीते जी एक प्रकार का घौर नर्क ही भौग रहे होते हैं।

(3) **छाती नर्क** : ह्रदय व श्वांस (फेफड़ों के रोग) रोगी अक्सर जन्म जात से ही इस रोग से पीड़ित होते हैं जिस कारण इन्हें सांस लेने में बहुत कष्ट होता है। यह रोग कफ़ के असंतुलन से पैदा होता है। लगभग 10 से 15 प्रतिशत मानव अपने अनुचित खान पान के कारण इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं। बाल्य काल में पुष्ठ शरीर होने के कारण 90 प्रतिशत से ज्यादा मानव इस रोग की कम तीव्रता होने के कारण इस की ओर ध्यान तक भी नहीं देते, परन्तु 10 प्रतिशत मानव ऐसे रोगों की अत्यधिक तीव्रता होने के कारण बाल्य अवस्था से ही इन रोगों से पीड़ित होते हैं। इस रोग की अत्यधिक तीव्रता होने पर ही मानव चिकित्सकों से परामर्श करते हैं। ऐसे मानव अपनी सामर्थता से कोई भी काम करते समय शारीरिक शक्ति का ह्रास (दुर्बलता) अनुभव करते हैं। ये अक्सर कमज़ोर अस्थी पिंझर वाले होते हैं जो दिखते तो स्वस्थ हैं पर वे कोई भी काम करने में निर्बल व कमज़ोरी वश आल्सी होते जाते हैं। हल्की सी चोट पर इनके अस्थी–पिंझर पर घातव घाव हो जाते हैं तथा इन की हड्डियों में विकार आ जाता है। ठीक इसी प्रकार ह्रदय रोग से पीड़ित मानव का रक्त चाप सामान्य से तीव्र या कम हो जाता है और इनकी रक्त कौषिकायें सुकड़ जाती हैं जिससे शरीर में रक्त संचार में बाधा उत्पन्न हो जाती है। ह्रदय रोग से ग्रसित मानव अत्यधिक पीड़ा के कारण अपने आप को असहाय और दयनीय स्थिति में पाते हैं। शरीर में बाल्य काल से युवा होने तक इन रोगों के लक्ष्ण और पीड़ा महसूस होने लगती है। अत्यधिक पीड़ा बड़ जाने के कारण ये लोग शिथिल, असहाय जीवन दूसरों पे आश्रित हो के व्यतीत करते हैं जिस कारण ये अंतःकरण में कुढ़ते, निसहाय व दुखी रहते हैं, 10 प्रतिशत लोगों में ये रोग वृद्ध अवस्था में उभरते हैं। ऐसे सभी मानव अंतःकरण में कष्टमयी जीवन व्यतीत करते व जीते जी घौर नर्क ही भौगते हैं।

(4) **उधर (पेट) नर्क** : पेट, अमाशय या आंतों के रोग वायु के असंतुलन से पैदा होते हैं। ऐसे लोग अक्सर पेट में वायु विकार से ग्रसित रहते हैं जिससे ग्रहण किया गया भौजन ये ठीक प्रकार से हजम नहीं कर पाते। खान पान में परहेज़ होने के कारण ये लोग स्वादिष्ट भौजन देख कर मन मसोस के रह जाते हैं और अपने आप को असहाय सा महसूस करते हैं, जिस के कारण ये मन चाहा खा–पी भी नहीं सकते, पर मन वशिभूत

मानव कितना भी निग्रह क्युं ना करे, ग़ाहे बग़ाहे मन वशिभूत हुआ स्वादिष्ट भौजन ग्रहन कर ही लेता है जिससे इसका शारीरिक वायु संतुलन बिगड़ जाता है। अक्सर ये पीड़ा तथा वायु दबाव अमाशय में महसूस करते हैं। कंई बार तो दूसरों को स्वादिष्ट पदार्थ खाता देख और स्वंय की विवशता के कारण उनसे जलन महसूस करते हैं व उनसे घृणा तक कर बैठते हैं, ऐसे मानव खाते समय भी तथा मल त्यागते समय में भी असहज महसूस करते हैं। देखने पर दूसरों को साधारण दिखते पर अंतःकरण में पेट की पीड़ा से परेशान होते हैं। आपाच्य की स्थिति होने से और मल त्यागते समय कष्ट होने पर इनके शरीर में रक्त की कमी तथा आंतों में सूजन हो जाती है जिससे कंई बार रक्त प्रवाह भी होने लगता है। ऐसे मनुष्य कितनी भी चिकित्सा क्युं ना करवा लें, कभी भी पूर्ण स्वस्थ नहीं हो पाते। किसी भी प्रकार के पेट सबंधी रोगों से ग्रसित होने पर मनुष्यों के आचरण व स्वभाव में हताशा और क्रौध आ दमकते हैं जिससे वे अपने सामर्थय अनुसार व पूर्ण समर्पण भाव से कोई कार्य भी नहीं कर पाते। इस रोग की कुण्ठा से ग्रसित हुआ मानव जीते जी एक प्रकार से नर्क ही भौग रहा होता है।

(5) जल नर्क / मूत्र संबधी रोग : मनुष्य के अंदर गुर्दों से संबधित रोगों से पीड़ित लोग जल नर्क ही भौग रहे होते हैं। ऐसे मनुष्यों के गुर्दे कम विकसित तथा मूत्रेंद्रिय रोग व जल त्याग कौषिकाओं के रोगों से ग्रसित होते हैं। ऐसे मनुष्य धात (स्वपन दौष) रोग से पीड़ित तथा दुबले–पतले होते हैं, बाल्य अवस्था व्यतीत होते ही इस रोग के लक्षण उभरते व दिखने लगते हैं। ऐसे रोगी मूत्र त्यागते समय इस धात के मूत्र में बह जाने से शारीरिक कमज़ोरी महसूस करने लगते हैं। इस दुर्बलता वश इनमें आलस्य पैदा होता है और अधिकतर स्वपनों की दुनियां में खोये रहते हैं। लगभग 80 प्रतिशत ऐसे लोग जो जनिंद्रिय दुर्बलता वश संतान सुखों से वंचित रह जाते हैं, अपने जीवन निर्वाह हेतु कमाई करने में भी असमर्थता व असहजता महसूस करते हैं, चाह कर भी काम से कतराने लगते हैं जिस कारण सभी इन्हें आलसी और निक्कमा–निट्ठला कह कर इनका उपहास उड़ाते हैं। इस रोग के कारण ये निसहाय हो कर आंतरिक तौर पर क्रौध व घृणा से भरे रहते हैं। धात–पतन के कारण ये जीते जी जल सबंधित नर्क भौगते हैं और अल्प आयु में ही शरीर का परित्याग कर देते हैं।

(6) काया नर्क / त्वचा रोग : ऐसे मानव शारीरिक त्वचा (चर्म रोग) सबंधित रोगों से ग्रसित होते हैं। मौसम बदलने पर तथा मन भावन अनुचित खा लेने पर वे इस रोग के प्रभाव में आकर कष्टप्रद स्थिति में होते हैं। जीवन भर इनको अत्यधिक सजग रहना पड़ता है व इन्हें स्वतंत्र जीवन जीने में अति कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। रोग की अत्यधिक तीव्रता होने पर इनकी त्वचा पर दाने निकलना प्रारम्भ हो जाते हैं, खुजली महसूस करते हैं, बड़े–बड़े सूजन युक्त दाने (चत्तके) आ जाते हैं और चमड़ी का रंग गहरा लाल या खुश्क–श्वेत हो जाता है। त्वचा के रंग बदल जाने के कारण ये बदसूरत दिखने लगते हैं, त्वचा के भीतर रक्त कौषिकाओं में स्त्राव होने पर और इनके बंद हो जाने पर इस पर काले धब्बे उभर आते हैं जिसे जगत मानव ग्रहण चिन्ह कह के संबोधित करते हैं, जबकि ग्रह–नक्षत्रों से इसका कोई सबंध नहीं होता। कंई–कंई मनुष्यों में अत्यधिक रोग फैलने पर शारीरिक अंग कमज़ोर तो होते ही हैं, परहेज़ व लापरवाही करने पर ये कुष्ट रोग में बदल जाते हैं जिससे उनके अपाहिज होने की संभावना बनी रहती है। साधारण मानव इस रोग से ग्रसित मानवों से दूरी बना के रखते हैं जिससे ऐसे रोग से ग्रसित मानव अपने आप को समाज से कटा हुआ महसूस करते हैं। त्वचा के अधिकतर रोग जन्म जात ही होते हैं, ऐसे रोगों से ग्रसित मानव ह्रास भाव युक्त स्वंय की बेचारगी के कारण अपने को समाज में कटा व नित्कृष्ट महसूस करते हुए कुढ़ते व सारा जीवन असहज और तकलीफ में व्यतीत कर देते हैं। ऐसे रोगी जीते जी नर्क ही भौग रहे होते हैं।

(7) पिंजर नर्क/हड्डियों के रोग : पिंझर रोगों से पीड़ित मनुष्यों की हड्डियां अविक्सित तथा कमज़ोर होती हैं। 80 प्रतिशत मानव जन्म जात इस रोग से पीड़ित होते हैं और बाकी दुर्घटनाओं तथा असंतुलित आहार–विहार के कारण इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं। अल्प बाल्य काल में इस रोग का पता नहीं लगता, आयु बड़ने पर इसका एहसास और लक्ष्ण दिखने लगते हैं। पोलियो रोग व हड्डियों का मज्जा ना विकसित होने से मानव शरीर खड़ा होने व चलने फिरने व दैनिक जीवन जीने में असमर्थ होता है। अपाहिज होने के कारण जीवन के बहुत से सुख भौगने से वे वंचित रह जाते हैं। रोग पीड़ा के साथ–साथ कुण्ठा अवस्था उभरने पर इस रोग से ग्रसित 90 प्रतिशत मनुष्य असहाय पूर्ण जीवन व्यतीत करने पर विवश हो जाते हैं। चंद मनुष्य ही किसी अप्राकृतिक सहारा जैसे बेसाखी, छड़ी, वहील–चेयर आदि का सहारा लेकर अपना जीवन कुछ हद तक सुगमता पूर्वक व्यतीत कर देते हैं। कुछ मनुष्यों को यह रोग अधेड़ उम्र में आ घेरते हैं। पिंझर रोगों से ग्रसित मनुष्य साधारण जीवन ना व्यतीत कर पाने के कारण एक प्रकार का नर्क ही भौग रहे होते हैं।

अधिकतर यह स्वर्ग–नर्क मानव अपने प्रालब्ध में सैंचित कर्मों के फल के कारण भौगता है तथा इस जीवन काल में लगभग 70 से 80 प्रतिशत किये गये कर्मों का फल इसी जन्म में मनुष्य भौग लेता है और शेष बचे कर्म मानव की प्रालब्ध कौष में जमा हो जाते हैं जिनका फल उसे आगे कहीं आने वाले भविष्य काल तथा जन्म–जन्मांतरों में प्राप्त होता है। यथा पिण्डे तथा ब्रह्मण्डे अर्थात इस पिण्ड घट काया भीतर अपना अंतःकरण शुद्ध बना के तथा अंतःकरण भक्ति से निरंकार या साहिब सतपुरूष जी को भी पाया जा सकता है। सन्यासी व घर बाहर तजने वाले ब्रह्मचारियों से भी उनकी मन तरंग नहीं मिटती। 'मै' 'मेरी' ही तो घट (मन रूप) है। भगवान निरंकार ने तो इस मानव घट भीतर अपने 21 लोकों के सारे सुख साधन प्रदान किये हैं जिस कारण मानव तन अनमोल व आलोकिक है। अब यह मानव पर ही है कि वह इसे भक्ति में लगा कर अपना उद्धार करे या माया में उलझा कर व्यर्थ में गंवाये।

वे नाम पास दौ वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द सार नाम।।

पँच सदी पहले साहिब कबीर ने, पाई सार दात सतपुरूष सूं।
सन् 1912 निजधाम से होकर, वे नाम पाई दौ बार दात सतपुरूष सूं।।

सार सब्द और सुरत सब्द की दात, सतपुरूष सूं।
ब्रह्मण्ड में ऐसी कृपा संत पे देखी ना सुनी, सतपुरूष सूं।।

सत्तगुरू सत्तनाम
सत्त साहिब जी   सत्त साहिब जी   सत्त साहिब जी

35 – त्रिलोकी संरचना और विनाष

काया भ्रम भरमावे, सिद्ध योगी यति परमज्ञानी ध्यानी।
परमहंस शरणी बिना, कोई निरंकार माया ना जानी।।

निरंकार भगवान का महांकाल विक्राल रूपी 8 अरब 64 करोड़ वर्ष का एक दिन–रात अर्थात 4 अरब 32 करोड़ का एक दिन और इतने ही समय की काल–रात्री है। हर अहोरात्री उपरांत फिर से त्रिलोकी संरचना तथा जीव उत्पति काल और फिर हर बार की तरहं प्रलयः उपरांत अहोरात्री होती है। तीन आयोजन कोड़ी काल समाप्त होने उपरांत ये वर्तमान काल चौथी आयोजन कोड़ी का प्रारम्भ काल है। तब से यह क्रम निरंतर चले आ रहा है और आगे भी 17 आयोजन कोड़ी काल की समाप्ति तक चलायेमान रहेगा। संतों की वाणी अनुसार निरंकार भगवान जी इस सृष्टि का सृजन बारम्बार करते हैं, पूर्वता की भांति दौबारा जीवन उपझाते हैं, निर्धारित काल अनुसार अंततः महां प्रलय तद् उपरांत अहोरात्री काल में विश्राम हेतु चले जाते हैं। जगत में फैली धर्म पद्धतियों व पूजा विधियों से मन माया से मुक्ति संभव ही नहीं ! हां, सर्गुण पूजा से स्वर्ग, निर्गुण रूप में पूजें तो शुद्ध ब्रह्म, सुन्न व महांसुन्न लोकों में कर्मों के अनुसार कुछ काल के लिए मानव मुक्त हो जाता है। तद् उपरांत पुनः कर्मों के फल अनुसार जीव जगत माया भ्रम जाल के चौरासी चक्रव्यूह में लौट आता है, अर्थात निरंकार भक्तियों से ये अल्प मुक्तियां ही मिल पाती हैं, पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष तो संभव ही नहीं !

काल विक्राल महांकाल, मन माया सबै निरंकार।
जीव ता के वश पड़ा, निज भूला बना लाचार।।

यह संसार काल का देसा, बिन नामे नहीं पार।
सयय्याद की कैद सब पड़े, बिन सतगुरू होवे ना पार।।

निरंकार की इस मोह लेने वाली त्रिलोकि रूप महांकाल विक्राल का क्रूर रूप तो देखें कि 8 अरब 64 करोड़ वर्ष का एक प्रलयः काल अर्थात निरंकार का दिन और रात, इसमें कर्मों के फलिभूत (प्रालब्ध) हेतु तो लगभग 44 लाख वर्ष मिलते हैं। इसमें से भी 99.9 प्रतिशत समय तो विक्राल स्थिर भुगत योनियों (जैसे पर्वत, सरोवर, बड़े–बड़े वृक्ष आदि) में ही निकल जाता है। बाकी का 0.1 प्रतिशत में से तो अधिकांश समय साधारण भुगत योनियों में ही व्यतीत हो जाता है। एक प्रलयः काल में केवल सात बार मानव जन्म मिलता है अर्थात लगभग एक हज़ार से पंद्रह सौ वर्ष काल का समय ही बीज रूपी कर्मों को क्रियान्वित करने तथा प्रालब्ध सैंचित करने के लिए मिलता है। अहोरात्री काल में जीवात्मां शिथिल अवस्था में होती है, महांप्रलय उपरांत निरंकार भगवान तो चिर–निंद्रा (4 अरब 32 करोड़ वर्ष) काल में सो जाते हैं परन्तु आत्मां तो सदा चेतन रहते हुए भी स्थिर अवस्था में रहने को विवश होती है। अहोरात्री उपरांत भगवान निराकार का दिन जब प्रारम्भ होता है अर्थात सृष्टि् का सृजन काल प्रारम्भ होता है इसे 'अनादि काल' नाम से भी जाना जाता है। अनादि काल 4 अरब 31 करोड़ वर्ष का होता है तथा वनस्पति

तथा जीवों की उत्पति अनादि काल के अंतिम चरण अर्थात शेष एक करोड़ वर्ष के प्रारम्भ में आरम्भ होती है। वनस्पति व जीव उत्पति काल को दो भागों **आदि काल और सभ्यता काल** में वर्णित किया गया है। आदि काल का कुल समय लगभग 56 लाख वर्ष होता है, सारे आदि काल में जीवात्म परमाणु अर्थात जीवाष्म के रूप में विद्यमान होती है और आदि काल का समय तो मानव उत्पति से पहले ही बीत जाता है। बाकी का शेष समय सभ्यता काल के रूप में जाना जाता है, इसे चार युगों **सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलयुग** में वर्णित किया गया है।

चल हंसा तूं देस प्यारे, साहिबन करत पुकार।
सत्त तो केवल सत्तलोक है, झूठा त्रिलोकि पसार।।

निरंकार के तीन लोक में, भजुं तो किसको मैं भजुं।
ना मैं भजुं ना मैं तजुं, बस साहिब सुरति में मग्न रहुं।।

यम को आते देख कर, ईन्द्रियां करें पुकार।
सत्त सब्द दात पाई ना, अब कौन सुने पुकार।।

इसलिए हे मानव ये मानव जन्म बड़ा अनमोल व दुर्लभ है। जगत की मोहनी माया के वशिभूत हुआ तूं इस मानव जीवन के अनमोल समय को यूंहि व्यर्थ ना गंवा। ये मानव जीवन माया में रम कर चन्द खुशियों की चाह में अनगिनत दुख व त्रासदियां सहने के लिए नहीं मिला। इसलिए तूं भक्ति में माया रूपी पदार्थों की मांगे करना छोड़ दे, तेरे प्रालब्ध का किया धरा तो तेरे संग ही है जो तुझे मिलना निश्चित ही है। यदि बस इतनी सी बात मानव के समझ में आ जाए तो वह इस मोहनी माया के प्रलोभनों में और ना फंसे व अति शीघ्र ही इस के क्रूर मकड़ जाल के मोहपाष से अपने आप को स्वतंत्र कराने के मार्ग पर अग्रसर हो जाये। इसी कारण तूं निस्वार्थ मांग रहित भक्ति कर ! निस्वार्थ भक्ति करने वाले को भगवान निरंकार भी स्वयं सहज सत्तमार्ग के वर्तमान काल के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में सौंप देते हैं क्योंकि वह ऐसा करने के लिए साहिब सतपुरूष जी से वचनबद्ध हैं।

यह जीवन अनमोल प्यारे, मिले ना दूजी बार।
सोया चादर तान के, मन सपने देत हज़ार।।

क्या किया जग आईके, क्या पाओगे जग जाई।
कुछ ना पाया जगत में, ना पाओगे जाई।।

इस को विस्तार से जानने के लिए सृष्टि काल चक्रव्यूह चित्र देखें।

सृष्टि काल चक्रव्यूह चित्र

36 – बड़भागी सहज पथिक

चल हंसा सतलोक को, छोड़ ये मृत संसार।
ये संसार मृत्यु लोक है, कर्मन जाल पसार।।

सहज सत मार्ग के पथिक चाहे संख्या बल में अति कम क्युं न हों, परन्तु मानव को निज की पहचान सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस ही करवा सकते हैं। बिन पूर्ण सतगुरू परमहंस जी के कोई निज को जान ही नहीं पाता, तथा बिन निज को जाने पहचाने मोक्ष मिल ही नहीं सकता। निज को जानने का प्रयत्न करना ही सहज सत भक्ति मार्ग है, निज को भूल कर मानव क्रूर मन मोहक मोहिनी माया के भ्रम में चिरकाल से सोया पड़ा है, पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणागत आकर ही मानव निज को जानने अर्थात जागने के पथ पर चल पाता है। जगत में निरंकार रूपों की भक्तियों में मग्न जगत गुरूआजन तो लाखों की संख्या में विद्यमान हैं। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गुरूवाजन भी मानव को त्रिलोकि माया जाल से मुक्त नहीं कर पाते । हां ! ऐसा भी नहीं कि जगत गुरूओं की महानता कमतर हो, उच्च कोटि के जगत गुरूवाजन भी अपने अपने श्रद्धावान अनुयायियों को उनके अपने ईष्टों के दर्शन करवा कर स्वर्ग तक तो भेज ही देते हैं। जगत गुरूजन सैंकड़ों वर्ष की भक्तियों उपरांत भी मन की तरंग अर्थात काम, क्रौध व लोभ को पूर्णतः तज ही नहीं पाते, क्योंकि वे ''सार सब्द'' अर्थात विदेह–दात से वंचित होते हैं तथा जिन शब्दों को वे अपने गुरूओं से ग्रहण करते हैं और अपने अनुयायियों को दीक्षा में देते हैं, इन शब्दों में निरंकार भगवान स्वंय मन रूप में विद्यमान होते हैं। कुछ गुरूवाजन तो अपने–अपने अनुयायियों को वेदों व धार्मिक ग्रंथों में वर्णित मंत्र ही दीक्षा में देते हैं। यह सब निरंकार भगवान की ही भक्ति है। निरंकार भगवान ही जगत में माया रूपी सभी देवी देवताओं और आराध्यों के अधिष्टता हैं तथा वे ही भिन्न भिन्न देवी–देवताओं तथा निराकार रूप में भक्ति करने वालों को दर्श देकर कृतार्थ करते हैं। इन भक्तियों से चंद काल के लिए मन शांत तो हो जाता है परन्तु सदा के लिए मिटता कभी भी नहीं। यही शांत मन तो समय आने पर अकस्मात उजागर हो अहम व काम को जाग्रत कर देता है तथा फिर नीचे की ओर अर्थात माया में लिप्त कर देता है।

एक योगी किले से उतरा, संग लिये चरू चेला।
चारों मिल जग भरमाया, योगी की सुने ना चेला।।

नर तन मानव अनमोल तेरा, बारम्बार ना मिल पायो।
जे ना पाया सतगुरू प्यारा, चौरासी में अति दुख पायो।।

एक बात मूलतः ध्यान में रहे कि सहज सत मार्ग पर चलने वाले हर युग में बड़भागी पथिक संख्या बल में इन्हें गिने ही होते हैं। हर एक सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस व श्रद्धावान साधक जन निस्वार्थ भाव से व बिन निज हित के समस्त संसार के जीवों को जगाने व मोक्ष पथ पर अग्रसित करने में अनथक व भरसक प्रयत्न करते हैं। सत भक्ति मार्ग कहने को तो सहज मार्ग है परन्तु सुरतिवान व बिना सतगुरू परमहंस जी की कृपा होने से

पूर्व साधारण जगतवासी माया तरंग में डूबे हुऐ मोक्ष पथ पर कभी भी नहीं चल पाते। बड़ी दुश्वारियों और कठिन परित्याग व पूर्ण श्रद्धा से युक्त होने पर ही कोई भी साधक मोक्ष पथ का पथिक बन पाता है।

सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी जगत में ईक्का–दुक्का ही होते हैं तथा उनके द्वारा दीक्षा में प्रदत ''सार सब्द'' में स्वंय साहिब सतपुरूष जी का सुरति रूप में वास होता है, तभी तो इसे ''सब्द विदेह'' भी कहते हैं। जो साधक जन पूर्ण समर्पण भाव से सब्द सुरति में बसा लेते हैं वे सर्वदा के लिए मन तरंग (निरंकार त्रिलोकि व्यूह रचना जाल) से मुक्त हो, सतगुरू परमहंस जी संग मोक्ष को पाते हैं। जैसे भगवान निरंकार के किसी रूप की भक्तियों से निरंकार अपने भक्तों को उनके ईष्टों के रूप में दर्श देते हैं, ठीक वैसे ही सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी में साहिब सतपुरूष जी वास करते हैं, तभी तो सहज सत मार्ग के सतगुरू परमहंस जी को साहिब जी तथा परमहंस भी कहा जाता है। सतपुरूष जी सुरति रूप हैं और 'हंसा' सतपुरूष जी का अंश 'सुरति' ही है और यह सुरति मन–माया व काया से परे का विषय है। पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी मन माया से पूर्णतः मुक्त होने के कारण सुरतिवान होते हैं।

सार नाम जाना नहीं, अनमोल जन्म गंवाया।
जग की माया छूटे नांहि, मन ने ऐसा भरमाया।।

हमारी डौर जुड़ी सतलोक से है, वोहि तो देस हमारा है।
हंसा डौर जुड़ी सतपुरूष से है, वो ही तो पिता हमारा है।।

जगत में आज के वर्तमान काल के पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' केवल साहिब सतपुरूष जी का रूप ही नहीं, वे तो इस धरा पर स्वयं साहिब जी ही हैं। बड़े बड़भागी हैं वे सभी गुरूमुख साधक जन जो पूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी आ कर मोक्ष पथ के पथिक बने। अपने अंतःकरण में सतगुरू परमहंस जी की अमृतमयी सुरति से ओत–प्रोत हो कर हम ने सभी जग मानवों के कल्याण भाव की अभिलाषा लिए सतगुरू परमहंस जी के इस सुरति प्रवाह को कलम बद्ध करने का एक प्रयास किया, ताकि जग मानव इस अदभुत आलोकिक सतलोक सुरति से भरपूर एक महान ग्रंथ को पढ़कर सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी आकर मोक्ष पथ की ओर अग्रसित हों।

प्रेम पथ अति कठिन है, बिन संत ना पावे कोये।
सार सब्द जब दात मिले, तब ये वर्षा होये।।

37 – अभागे मानव

माया ठगनी नागनी, हर किसी को खाये।
तीनों देव वश में किये, जीव कहां को जाये।।

यूं तो सारा संसार ही मन मोहनी माया तरंग में ऐसे डूबा पड़ा है कि वह हंसा रूप तो भूला ही है साथ ही साथ माया में लिप्त अपना आत्म रूप भी भूल चुका है। सारे संसारी मानव अपने आप को केवल काया समझ कर ही जीवन बिताये जा रहे हैं। लाखों में कोई बिरला जन ही भक्ति पथ की ओर अग्रसित होता है। निरंकार दायरे की भक्तियां तो संसारी मानव भौतिक जगत के पदार्थों की चाह में किये जा रहा है, जो भी इन भक्तियों में मानव पा रहा है वह सब पदार्थ जीव को और भी मन माया में डुबोये जा रहे हैं जिससे वह सदा के लिये आवागमण के चक्रव्यूह में उलझा रहता है।

आशा तृष्णा मोह अहंकार, जानो इन्हें मन रूप।
इन का तजना कठिन प्यारो, ईन से ढका आत्म रूप।।

मन ही काल का रूप है, जीव नचाये करे बेहाल।
हर जीव संग काल का वास, जीव फिरे बेहाल।।

वो मानव बड़े अभागे होते हैं जो सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहसों की शरणी आ कर के भी मोक्ष से वंचित रह जाते हैं। बड़े अताताई मानव, महां घूसखौर, महां कामी, व महां स्वार्थी प्रवृति वाले मानव सहज सत मार्ग के संत परमहंस जी की शरणी आ ही नहीं सकते, क्योंकि उनके भीतर अंतःकरण की गहराईयों में प्रेम व संवेदना के लिये कोई स्थान नहीं होता। बिन प्रेम व संवेदना के कोई भी सहज सत भक्ति पथ पर चल ही नहीं सकता। हां निरंकार भक्ति मार्ग सभी अच्छे अथ्वा बुरे दोनों प्रकार के अनुयायियों के लिये खुला रहता है। निम्न स्तरिय नीच से नीच कार्य व कर्म करने वाले मानव भी निरंकार रूपी देवी देवों की पूजा करके अपने लिये वरदान सुनिष्चित कर लेते हैं। परन्तु अगर ये मानव किसी भी कारण वश भूले भटके कभी सहज पथ के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी के सत्संग में आ भी जायें तो भी वहां उनकी उपस्थिती स्थूल शरीर के रूप में सत्संग में होती है परन्तु इनका सूक्ष्म काया रूपी ध्यान अपने दुख दर्द व परेशानियों में ही लीन रहता है। ये श्रद्धा व भक्ति भाव का स्वांग रच कर अपनी परेशानियां व बिमारियां परमहंस जी से ठीक करवा ही ले ते हैं। जब तक ऐसे मानव परेशानियों और रोगों से मुक्त नहीं होते तब तक तो ये सभी बड़े श्रद्धावान होने का परिचय देते हैं परन्तु जैसे ही इनका स्वार्थ सिद्ध होता है एक दो सत्संगों के उपरांत पुनः इस ओर मुड़ कर भी नहीं देखते। सबसे बड़ी बात वह अपनी चतुराई व चलाकी पर मन ही मन में बड़े प्रफुल्लित होते हैं। सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की कृपा से ऐसे मानव ठीक तो हो जाते हैं। सत्संगों से दीर्घ काल की दूरी के कारण यही मानव वर्ष दो वर्ष उपरांत अपने प्रालब्ध वशिभूत पुनः किसी ना किसी परेशानी से ग्रस्त हो कर अति कष्ट पाते हैं। सहज सत मार्ग के सतगुरू परमहंस जी साधक वत्सल्य व प्रेम के अथाह साग़र होते हैं, वह उपरोक्त मानवों की स्थिति जानते हुऐ भी परहित वशिभूत सब का कल्याण ही करते हैं परन्तु

ऐसे मानव अति दुर्भाग्यशाली होते हैं जो छोटे छोटे संसारी प्रलोभनों के वशिभूत अपने मूल लक्ष्य मोक्ष पथ से कौसों दूर होते चले जाते हैं।

मन तेरे अंदर देव निरंझन, तां ही रहा भरमाई।
हे हंसा तूं जोत अमर, धूल पड़ा जग आई।।

इस में कुछ संदेह नांहि, जग क्रूर सत्ता के हाथ।
सब ओर दुख ही दुख है, छल कपट संग साथ।।

ठीक ऐसी ही व्यथा उन साधकों की भी होती है जो श्रद्धा भाव होते हुऐ भी छे मास से भी लम्बे काल तक साहिब सतगुरू परमहंस जी के सत्संग में नहीं पधारते तथा ना ही सब्द सिमरन में ध्यान ही करते हैं। संसारी माया वशिभूत हुऐ ऐसे साधकों से ''सार सब्द'' सुरती दात तथा सतगुरू जी की कृपा समाप्त हो जाती है। ऐसे साधक जन भी मोक्ष से वंचित ही रह जाते हैं। इन्हें कंई जन्मों तक भटकने के उपरांत पुनः सहज सत मार्ग संतों की शरण मिल ही जाती है परन्तु उपरोक्त दम्बी व कपटी स्वार्थी प्रवृति वाले मानव कंई कंई प्रलयः काल तक इस माया मोहनी तरंग में उलझे रहते हुऐ घौर कष्ट पाते हैं।

काग़ा काँव काँव बोलता, तूं तो मीठा बोल मेरे भाई।
काग़ा आदतन बिष्ठा खात है, तूं क्युं ऐसा करे मेरे भाई।।

काल हमारा कर गाहे, दिन दिन बीता जाई।
लाखों जन्म सूं जागे नहीं, सोवत बीता जाई।।

हे मानवो, सारे का सारा मानव समाज अपने उत्पति काल से लेकर आज के वर्तमान आधुनिक काल तक निरंतर अपने सुख साधनों को बड़ाने हेतु प्रयासरत है। इस सृष्टि के उद्‌य काल से अब मानव महांप्रलयः काल के समीप आ पहुंचा है। नाना प्रकार के अनगिनत एक से बड़ कर एक भौतिक सुख साधन रचने व नित नवीन आविष्कारों तथा अंतरिक्ष के अनेक रहस्यों को समझने के बावजूद मानव सुख साधनों से संपन्न होने पर भी अशांत, उद्विग्न व क्रौध से भरा सुख से अति दूर हुआ बैठा है अर्थात महां दुखी है। मानव की बहुत विशाल व विस्मय कर देने वाली विडंभना यह है कि मानव ज्युं–ज्युं सुख साधनों से संपन्न होता गया त्युं–त्युं वह अशांत व परेशान रहने लगा। जिस कारण सारे का सारा मानव समाज नित नवीन बिमारियों व रोगों से ग्रसित होता चला गया। बहुत कम काल में ही एक रोग का निधान मानव ढूंढने में सफल होता है, इस का संतोष मनाने से पहले दूसरे नित नवीन रोग व गंभीर बिमारियां नये–नये नामों से और समस्याऐं संग लिए आ दमकती हैं। मानव ने नये–नये आविष्कार कर के सुख के असंख्य साधन अपने जीवन को आरमदायक बनाने के लिए इक्कट्‌ठे कर लिए। जिन के उपयोग से समृद्धि व वैभवता तो आ गई, परन्तु वर्तमान में इस उन्नति ने मानव को सुखी व प्रसन्न करने के बदले में प्रतिद्वंदता व दूसरों की उन्नति तथा आगे बड़ने की होड़ ने मानव जीवन अशांत, उद्विग्न तथा प्रतिशोध भाव से भर दिया है। पहले पहल एक दूसरे से समाज या वर्गों में आगे निकलने की व श्रेष्ठ होने की चाह ने जीवन में प्रेम के स्थान पर

प्रतिशोध व प्रतिद्वदता भर दी जिसने मानव का सुख चैन छीन कर उसे नित्कृष्ट विचारों वाला बना दिया। आज के युग में एक दूसरे से आगे निकलने व दूसरों से श्रेष्ठ बनने तथा दिखने की चाह ने मानव से प्रीत प्रेम स्नेह को विलुप्त ही कर दिया। प्रेम प्यार स्नेह तो केवल मात्र दिखावा भर ही रह गया। जगत के सम्बंधों में प्रेम का दिखावा निर्बद्ध स्वार्थ पूर्ती हेतु जारी है ताकि सबंध निरंतर बने रहें और कभी उनमें बिछोड़ा पैदा ना हो। प्रेम स्नेह व दया भाव विलुप्त होते ही इस के स्थान पर अहम इतना बड़ गया कि क्रौध राग द्वैष व नफ़रत ने मानव समाज को पतन की ओर ही धकेल दिया। प्रतिद्वंदता ने घृणा का विस्तार इतना कर दिया कि मानव परिवारों में निज रिश्ते नातों में प्रेम–स्नेह का स्थान केवल दिखावा भर ही रह गया है, अंदर से अहम ने सब रिश्तों को खोखला कर दिया है और हर रिश्ते नाते में एक संदेह सा मानव के अंदर घर कर गया है।

इसमें कुछ संदेह नांहि, जग क्रूर सत्ता के हाथ।
सब ओर दुख छाया, छल कपट स्वार्थ निज साथ।।

वैज्ञानिक आविष्कारों ने नित नवीन साधन तो दिये हैं पर बदले में ना मिटने वाले प्रतिशोध व दूसरों का सुख चैन मिटाने की भावना प्रत्येक मानव के भीतर रम सी गई है। वर्तमान मानव आधुनिक बनने की चाह में ईन्सानियत से घिर कर शैतान व प्रेत वृत्तियों से भी आगे चला गया है। यह क्रम मानव उत्पति काल से लेकर आज तक निरंतर चलायेमान है और विनाष काल तक आगे भी चलता रहेगा। होना तो यह चाहिए था कि मानव सुख के आधुनिक व आरामदायक साधनों की बड़ोतरी व संपन्नता बड़ने के साथ–साथ शांत, खुश व सुखी हो जाता परन्तु पर्मवैभवशाली होने की चाह ने तो मानव समाज में मानवता को लगभग समाप्त ही कर दिया है। खाने के व्यंजनों में वनस्पतियां व अनाज की अनगिनत तथा असंख्य वस्तुऐं, ऊर्जा से भरपूर भौज पदार्थ होने पर भी मानव फिर से आदिकाल से पहले के असभ्य समाज के खान पान की ओर चल पड़ा है अर्थात सभी नरीह प्राणियों व जीवों को असंख्य संख्या में मार–मार कर खाये जा रहा है। जिस कारण मानव संवेदनहीन हो चुका है, आज का शैतान हुआ सभ्य मानव भूत–प्रेतों व राक्षसों को पीछे छोड़ता हुआ इतना आगे निकल गया है कि इसका वर्णन करना भी अशोभनीय प्रतीत होता है।

वे नाम कहें सुन मेरे मीत, मत कर जीव संहार।
कर्मण लेखे कभी ना मिटते, काल करेगा तेरा हिसाब।।

जीवों का संहार जो करे, संवेदना मरि मरि जाये।
दूजों के जो प्राण हरे, मृत्त हो प्रेत योनि वो पाये।।

कोई ढकी छिपी बात नहीं आदि–मानव ज्युं–ज्युं सभ्य होता गया त्युं–त्युं वह मांसाहारी से शाकाहारी होता गया। मानव के अंदर संवेदना, प्रेम व स्नेह की बड़ोतरी होने लगी तथा मानव के भीतर वासुदेव कटुम्भकम की भावना का भाव पनपने लगा, जिस कारण उसने पशुओं पे अत्याचार करना समाप्त कर दिया और उनके प्रति संवेदनशील रहने लगा। मानव समाज मानवों व सभी जीवों के प्रति संवेदनशील होता चला गया, जिस कारण दूसरों

के दुख के प्रति भी उसका मानवता से भरा भाव प्रकट होने लगा। मानव अपने पालतु जीवों से प्राप्त सुख सुविधाओं के उपयोग के साथ–साथ उनकी विशेष देखभाल भी करने लगा। मानव निज कार्यों में जीवों का उपयोग करते करते उनसे स्नेह भरा व्योवहार भी करता तथा उनके रहने तथा खान पान की भी उचित व्यवस्था करने लगा। इसी प्रेम प्रीत भरे व्यवहार को करते–करते मानव सभ्य से अति सभ्य होता चला गया।

38 – चार काल खण्ड

1758 हज़ार वर्ष सतयुग, 1216 हज़ार वर्ष त्रेता युग।
864 हज़ार वर्ष द्वापर, 432 हज़ार वर्ष वर्तमान काल युग।।

सतयुग त्रेता और द्वापर, देते कलयुग प्रमाण।
तत्व केवल ईक सार नाम, बाकि थोथा सब ज्ञान।।

सभ्य मानव समाज को चार काल खण्डों (युगों) में वर्णित किया गया है :–

(1) सतयुग (2) त्रेतायुग (3) द्वापरयुग (4) कलयुग

वोहि रचे वोहि संहारे, वो ही पूजा जाये।
जीव को मन रूप भरमाये, महांकाल कहलाये।।

39 – सतयुग

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की वाणी अनुसार हर बार सृष्टि रचना के उपरांत पुनः प्रथम युग में सतयुग की आयु लगभग 17 लाख 58 हज़ार वर्ष काल होती है। सतयुग में मानव समाज में सत्य–व्यवहार उसकी जीवनचर्या का नितांत अंग होता है।

सतयुग में सुख साधन तो बहुत कम थे, जिससे मानव का सारे का सारा समय भारी श्रम से संसाधन व जीवन उपयोगिता की वस्तुओं को जुटाने में लग जाता था। आवागमण के साधन जैसे घौड़े, ऊंट व बैल ईत्यादि संपन्न लोगों तक सीमित थे, अक्सर मानव पैदल चल कर ही सफर करते थे, कभी कभार तो दूर यात्रा भी वे दिन–रात पैदल चल कर ही कर देते थे। जीवन यापन में अधिक कठौर परिश्रम करना पड़ता। इन सबके बावजूद मानव जीवन में प्रेम व सत्य से ओत प्रोत व्योवहार था तथा लेष मात्र भी झूठ व छल कपट ना था। खान–पान के सभी व्यंजनों में वनस्पतियां, फल–फूल व कंद–मूल का ही प्रयोग किया जाता

था अर्थात सभी मानव स्वास्थ–वर्धक पदार्थों से युक्त शुद्ध शाकाहारी भौजन ही ग्रहन करते थे। जिस कारण मानव दीर्घ आयु लगभग 150 से 200 वर्षों तक निरोग जीवन जीते थे, स्वस्थ जीवन होने के कारण वैद्य् व चिकित्सकों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। मानव की काया बलिष्ठ व औसत युवा मनुष्य की लम्बाई लगभग 20–22 फुट से भी अधिक हुआ करती थी। सारे श्रम भरे दिनचर्या की आपाधापी में भी मानव मालिक की भक्ति में लीन रहता था तभी इस काल खण्ड को मानव सभ्यता का श्रेष्ठ युग माना गया है। इस काल खण्ड में लोग सात्विक भौजन ग्रहन करते, वार्तालाप में सत्य वाणी का प्रयोग करते तथा दिनचर्या के व्योवहार में भी सत्य से ओत–प्रोत रहते थे। सात्विक होने के कारण सारा का सारा मानव समाज चिंतामुक्त रहता, नम्रता से भरपूर तथा कम संसाधनों के बावजूद भी दूसरों की दुख दर्द में सहायता करने में कोई कसर नहीं छोड़ता था। सात्विक आचरण के कारण राग, द्वैष, लोभ व क्रौध समाज में ना के बराबर थे, अधिकांशता ये काल सत्य से ओत–प्रोत होने के कारण और वासुदेव कटुम्भकम भाव से युक्त होने के कारण स्वर्णिम युग कहलाया। हांलाकि इस युग में प्रत्येक घर में निरंकार के निर्गुण रूप की पूजा अराधना की जाती थी, सत्य से ओत–प्रोत समाज स्वर्ग व सुन्न लोकों की मुक्तियों को प्राप्त करता, सैंकड़ों हज़ारों वर्षों तक स्वर्ग भौगता और पुनः आवागमण में लौट आता।

सतयुग के अंतिम काल तक मानव की संख्या इस धरा पर कुछ लाख ही थी। मानव पूजा ध्यान में लीन रहने से विषय वासनाओं और काम क्रौध में ज्यादा लिप्त नहीं होता था जिस कारण वह अपने आप में संतुष्ट व सुखी था। समाज में कोई धर्म, अधर्म, ऊंच नीच का नामों निशान भी नहीं था। कुछ लोग इस काल को सनातन धर्म का स्वर्णिम काल भी कहते हैं पर बड़ी विचित्र व अचम्भे की बात है कि भक्ति में चलने वालों की कमी तो थी नहीं फिर भी इस युग में कोई भी मोक्ष ना प्राप्त कर सका अर्थात अपने निजघर सतलोक ना जा सका। इस युग में पूर्ण संत साहिब कबीर जी ने धरा पर साहिब सतपुरूष जी की महिमां गाई तथा उनका बहुत गुणगान गाया, परन्तु कोई भी मानव सहज सत मार्ग की ओर ना आकर मोक्ष से वंचित ही रहा तथा भगवान निरंकार जी की पूजा में ही लीन रहा। इस सतयुग काल खण्ड को वेदों व ग्रंथों में स्वर्णिम वैदिक काल से भी वर्णित किया गया है।

(निजधाम के पूर्ण सतगुरू परमहंसों की महिमां)

सतगुरू की महिमां क्या लिखूं, सब कर्ता वह आप।
वोहि सतपुरूष रूप जग पधारयो, सब कुछ उनके हाथ।।

सतगुरू मिला तो सब मिला, खुले मोक्ष द्वार।
उनकी पूर्ण कृपा सूं, करो साहिबन दिदार।।

सतगुरू समान जग दाता नांहि, बिन सतगुरू जीव मसान।
सतगुरू सतपुरूष रूप हैं, जग में करें जीव कल्याण।।

साहिब कबीर जी सहज सत मार्ग के प्रथम पूर्ण संत इस धरा पर हुए, तथा यह कहना सर्वदा उचित होगा कि सत्त भक्ति (परा भक्ति) की शुरूआत ही साहिब कबीर जी से हुई। प्रथम आयोजन कौड़ी काल के प्रथम सतयुग से लेकर आज के वर्तमान काल तक कबीर साहिब जी इस धरा पर सहज सत्त भक्ति मार्ग का प्रचार व प्रसार भिन्न–भिन्न नामों से अवतरित हो के करते रहे। परन्तु अज्ञानता वश मानव–समाज साहिब कबीर जी की महिमां को जान व समझ ही ना पाया। माया मोहिनी की गहरी तन्द्रा वृति नींद वशिभूत हुआ मानव अपने आप को आत्म (हंसा+मन माया=आत्मां) ही नहीं समझ रहा, वह तो स्वंय को काया मान कर इस माया से भरे भ्रम–संसार में जिये जा रहा है। साहिब कबीर जी की महिमां का गुणगान गाना तो दूर, जग जीव तो उनके चेतन सुरति से भरपूर मोक्षदायी ज्ञान से भी वंचित हो गया। जीव ऐसा भटका कि 3 आयोजन कौड़ी समय बीतने तथा चौथी आयोजन कौड़ी जो अभी चलाऐमान है इसके उपरांत भी साहिब कबीर जी के सुरति भरे उपदेशों को ना जानने व समझने के कारण अभी तक क्रूर चौरासी के माया जाल में ही भटक रहा है।

पूजा पाठ ग्रंथ कथा कहानी, सबै जीव मति भरमानी।
भक्ति बनी तृष्णा पूर्ती साधन, पावे वही जो जग छुट जानी।।

प्रेम की ओर उठा जो पग, कभी व्यर्थ ना जाये,
सच्चा पग ईक भला, सतगुरू चरणन सुरति लाये।।

सतयुग में सतोगुण पसार, सुख शांति चहुं ओर।
जब चाहें देव प्रकट हों, सब भजें निरंकार हर ओर।।

सतयुग में अधिकतर मानव समाज सात्विक अनुशासन प्रीय सत से ओत–प्रोत अपने–अपने ईष्टों की पूजा में मग्न रहा। हां ! इस काल खण्ड में मानव प्रालब्ध के श्रेष्ठ कर्मों से युक्त होने के कारण अपने ईष्टों को बहुत जल्दी प्रसन्न व प्रकट कर लेते तथा मन चाहा फल भी तुरन्त प्राप्त कर लेते। इसी मांगन प्रथा ने उन्हें सहज सत मार्ग की ओर अग्रसित ना होने दिया। सत्त काल में मानव निरंकार की भक्ति निर्गुण रूप में ध्यान विधि से करने के कारण बहुत कम काम, विषय और वासना की ओर आकर्षित हुआ। सतयुग में अधिकतर परिवार एक या दो संतानों तक ही सीमित थे, बहुत कम लगभग ना के बराबर परिवारों में तीन या तीन से अधिक संतानें होती थी। सतयुग समाप्ति तक मानव की संख्या लाखों तक ही सीमित थी। मानव समाज के साधा जीवन जीने, साधा खान–पान, सीमित परिवार और ध्यान युक्त जीवन होने से उसका जीवन निरोग, बलिष्ठ् व सुखमय होता था। सतयुग के समाप्त होते–होते त्रेता युग के आरम्भ काल में मानव समाज में निज संपन्नता की ओर अभिरूची विकसित होने लगी।

सत्तोगुणि सत्तोनिष्ट, सत कर्म सूं पायो स्वर्गन ठौर।
बिन सब्दे आवागमण ना मिटे, नांहि पायो मोक्ष ठौर।।

इसी दौरान मानव ने अपने यातायात में सुगमता हेतु बैल गाड़ियों और घौड़ा गाड़ियों का प्रयोग आरम्भ कर दिया, इस कारण दिन चर्या के कामों में पशुओं की उपयोगिता काफी

बड़ गई। सतयुग तक कोई रंग–बिरंगे वस्त्र नहीं पहनता था, सबके वस्त्र श्वेत ही होते थे, परन्तु त्रेता युग में रंग–बिरंगे वस्त्रों का पहनावा और सजने–धजने की प्रथा प्रचलित हुई। सतयुग में जीवन मरन को प्राकृति की नीति समझ कर शोक नहीं मनाया जाता था और नांहि प्राणी के जन्म पर अधिक खुशी मनाई जाती थी। समाज में लोग पहले कंधराओं, गुफाओं वृक्षों के नीचे घास–फूस से बनी साधारण सी छत में अपना जीवन व्यतीत कर देते थे।

40 – त्रेता युग

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार हर त्रेता युग की आयु लगभग 12 लाख 18 हज़ार वर्ष काल होती है। इस युग के आते–आते मानव की आयु घट कर लगभव 120 से 150 वर्ष के आस–पास ही रह जाती है।

महांकाल के इस त्रेता युग के आरम्भ काल में मानव अपने निज निवास स्थान तथा अपने कटुम्बों को नाम तथा पहचान देने लगा। सतयुग के अंत व त्रेता के मध्य तक मानव सत्य से ओत–प्रोत व्यवहार और बिना किसी राग द्वेष के सनातन भाव से ही जीवन व्यतीत कर रहा था अर्थात सम–भाव, एकता व प्रेम व्यवहार से सारा समाज एक अंग था। तब कोई धर्म, जात, वर्ण, रंग–भेद, राग–द्वेष नहीं था। त्रेता युग काल के अंतिम पहर में जात और वर्ण प्रथाओं का आगमन हुआ। इसी कारण सतयुग सनातन काल व त्रेता को मर्यादा काल से जाना गया। सतयुग में सतोगुण प्रधान था इस कारण इसे सतकाल भी कहा गया तथा त्रेता में रजोगुण फला–फूला जिस कारण इसे सत–रज गुण प्रधान काल कहा गया। तभी तो सर्वसमाज में वर्ण व कामों को निर्धारण करने की प्रथा प्रारम्भ हुई। शुरूआत में यह जाति प्रथा अति उत्तम भाव से युक्त तथा कार्य कुशलता अपने निर्धारित कामों को करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। अब अपने–अपने कार्य में निपुण लोग अपनी दक्षता से दूसरों को सुविधाऐं देने लगे, तथा साधनों का अदान–प्रदान व समाज में मानव की दिनचर्या की आवश्यकतायें पूरी करने हेतु आपस में सहयोग करने लगे। अपने–अपने कामों में दक्षता से नित नवीन संसाधन व पदार्थ उपलब्ध होने लगे, जिस कारण जीवन में खुशहाली व तेजी से परिवर्तन आये।

त्रेता युग सत रज का प्रसार था, उत्साह से भरपूर।
मर्यादाओं का मान बड़ा, मर्यादा पुरषोत्तम लियो अवतार।।

त्रेता युग काल के मध्य आते–आते कुटुम्भ व कबीले अपने–अपने कार्य क्षेत्र के कार्यो द्वारा अपने–अपने समूहों में बंट गये। हर समूह की निज पहचान उनके अपने–अपने कार्यों की योग्यता के अनुसार होने लगी और अपनी दक्षता के अनुसार ही वे सभी जाने पहचाने व संबोधित किये जाने लगे। जहां दिन–चर्या के उपयोग के कामों में नवीन साधनों में सुग़मता बड़ी, वहीं सभी मानव अब भौज–पदार्थ पैदा करने हेतु सामुहिक समुदाय अपने–अपने खेत खलियानों का विस्तार करने लगे तथा व्यवसाय व खेती–बाड़ी हेतु पशुओं और औज़ारों का प्रयोग करने लगे। त्रेता काल के प्रारम्भ होते होते मानव धातु का प्रयोग करने में निपुण हो गया। अब धातु के बने औज़ार व वस्तुऐं घरों और खेतों में प्रयोग होने लगे। त्रेता काल में मानव समाज ने बड़ी तीव्रता से प्रगति करी तथा गाँव व नगर और भी तीव्रता से विक्सित होने लगे। मानव की महत्वकाशां विक्सित होने के कारण अब हर समूह अपने–अपने बड़ों को अपना

प्रतिनिधि निर्धारित करने लगा तथा उनकी देख रेख में प्रगति व उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहने लगा जिस कारण उनमें सकारात्मक उत्सुकता और प्रतिद्वंदता बड़ने लगी। जहां सतयुग में सतोगुण प्रधान था वही त्रेतायुग के मध्य तक आते–आते इसका प्रभाव कम होने लगा और रजोगुण बड़ी तीव्रता से फैलता चला गया, जिस के कारण भी मानव की हर कार्य क्षेत्र में सकारात्मक प्रतिद्वंदता बड़ने लगी। कार्य कुशलता बड़े तथा सभी कार्य सुगमता से हो पायें, इसलिये कार्य क्षेत्रों के आधार पर जाती–प्रथा का प्रारम्भ हुआ ताकि मानव अपने कार्य सुगमता से कर पायें और वे हर कार्य क्षेत्र में निपुणता को प्राप्त हों। आगे कुछ काल बीतने उपरांत कार्यों की पद्धत्ति पर उनके समूह को पहचाना जाने लगा। मानव अपने–अपने कार्यों की सुगमता के लिए अलग–अलग समूहों में रहने लगे। उदाहरणतः मिट्टी के बर्तन चाहिए तो कुम्हारों की कुम्हार बस्ती, लकड़ी का काम व सामान चाहिए तो तरखान बस्ती, लोहे के लिए लोहार बस्ती, कपड़ों के लिए जुलाहा बस्ती और सोने के आभूषण चाहिए तो सुनार बस्तियों में जाना पड़ता था। त्रेता काल के अंत तक बाज़ारों की प्रथा नहीं थी, घरों में ही सभी काम–काज निपटा दिए जाते थे। घरों में काम के साथ–साथ व्योपार में भी पूरा परिवार मिल कर सहयोग देता था जिससे सारे काम सुगमता से संपूर्ण हो जाते थे। परन्तु एक बात तब अति श्रेष्ठ थी कि अगर किसी दूसरे समुदाय में शूरवीर होता था तो वह अपनी बस्ती छोड़ कर सेना में सम्मलित हो जाता था जिससे उसे उसके क्षत्रिय गुण के कारण क्षत्री कहा जाता। ठीक ऐसा ही भक्ति करने वाले को ब्राह्मण, व्यवसाय करने वाले को वैष्य कहा जाता था। अगर कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैष्य समुदाय के लोग भी लकड़ी, मिट्टी व लोहे का सामान बनाने की गुणवता हासिल कर लेते तो वे भी उसी कार्य–युक्त समुदाय में प्रवेश पा लेते थे। सारे का सारा समाज निज गुणों से सुसज्जित गुणवानों, विद्वानों, कलाकारों, और सामर्थवानों के प्रति प्रेम–भाव से ओत–प्रोत था। सही मायनों में वह मानव सभ्यता का स्वर्णिम काल था। सनातन सभ्यता जहां प्रेम–प्रीत सर्व समाज में सर्वत्र मानवों में विद्यमान थी। यह स्वर्णिम काल कंई लाखों वर्षों तक सुचारू रूप से चला तथा इसी काल में एक से एक श्रेष्ठ मर्यादायें स्थापित हुईं जो उस काल से आज तक प्रभावी हैं।

त्रेता युग के मध्य काल तक नगरों व गाँवों के समूह सीमित भू–भाग तक अपनी अपनी जरूरतों व साधनों की भिन्नता के कारण अलग–अलग रहने लगे तथा अपने अपने समूहों की सम्पन्नता को सुदृढ़ करने लगे। त्रेता मध्य–काल तक इतना विस्तार होने पर भी मानव जीवन अभी भी सादा था व लौग अभी भी सत्य की राह पर चलते थे, हां समाज में कहीं–कहीं एक–दूसरे से आगे बड़ने की होड़ अर्थात प्रतिस्पर्दा अब आरम्भ हो चुकी थी। त्रेता आरम्भ काल में मानव की ओसत आयु 150 वर्ष काल से कुछ अधिक तक की थी जो त्रेता के समाप्त होते–होते घट कर लगभग 120 वर्ष तक आ पहुंची। अब तक मानव समाज रोगों से लगभग मुक्त था, रजोगुण बड़ने के प्रभाव से मानव में द्वैष व प्रतिस्पर्दात्मक गुण बड़े जिस कारण मानव जीवन अब रोगग्रस्त होने लगा। मानव की ओसत लम्बाई 20 फुट से कम हो कर अब त्रेता युग में लगभग 15 से 12 फुट तक रह गई। अब भौजन में पदार्थों और व्यंजनों की संख्या बड़ने लगी तथा मन मनभावन खाने की ओर लालायित होने लगा। त्रेता युग काल समाप्त होते–होते मानव जीवन में छल–कपट, अभद्रता बड़ने लगी तथा कुटुम्भ कबीलों ने मिलकर साम्राज्यों की स्थापना आरम्भ कर दी। मानव जीवन में अब राग–द्वैष ने प्रवेश कर लिया तथा इसी काल में मानव ने खुद को बलशाली व समाज में अपना दबदबा बड़ाने के लिए अखेट (शिकार) करना शुरू कर दिया, जो कि सर्वप्रथम हिंसक प्रवृति के जानवरों से मानव जीवन की रक्षा के लिए ही किया जाने लगा था। प्रारम्भिक दौर में ये अखेट प्रथा राजाओं व बलशाली लोगों तक ही सीमित थी जो कि बाद में ये प्रथा अपने आप को बलशाली, समृद्ध और महत्वपूर्ण साबित करने के दृष्टिकोण से की जाने

लगी। प्रतिस्पर्दा, राग–द्वैष, समाज में फैलने से यह प्रथा कुरीतियों का रूप लेने लगी जिससे सामाजिक ढांचा चरमराने लगा और लोग अमर्यादित होने लग पड़े। ऐसे युग में निराकार भगवान ने मर्यादा पुरषोत्तम भगवान श्री राम चन्द्र जी के रूप में स्वंय धरा पर अवतार लिया।

साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :–

भगवान श्री रामचन्द्र जी जो स्वयं निराकार भगवान के अवतार थे अर्थात वह स्वयं निज मन रूप होते हुए भी निस्वार्थ भाव से जीवन का हर कार्य व व्योवहार करते हुए लगभग 1100 वर्ष काल तक इस धरा पर रहे। सात्विक भाव से भरपूर मर्यादाओं को स्थापित करते हुए उन्होंने अपने जीवन काल को एक श्रेष्ठ प्रेरणात्मक उदाहरण के रूप में व्यतीत किया। भगवान श्री रामचन्द्र जी ने माता–पिता के प्रति सम्मान, बड़ों व गुरूजनों के प्रति श्रद्धा व आदर भाव, भाई–बहनों व कुटुम्ब सबंधियों में प्रीति–भाव तथा पति–पत्नि व राजा के दायित्व के प्रति उत्तम से उत्तम मर्यादाऐं स्थापित की। उनके द्वारा स्थापित मर्यादाओं का पालन त्रेता काल से आज तक समाज में दैनिक गृहस्थ जीवन में उच्च मर्यादाऐं स्थापित करने व सामाजिक उत्थान के लिए ही होता रहा है। भगवान श्री राम जी द्वारा स्थापित ये मर्यादायें सर्व समाज के लिए एक महत्वपूर्ण मार्ग दर्शक बनी, जिस से सामाजिक एकता व रिश्तों में अनुशासन व प्रेम बना रहा।

प्रकाश जीवन और प्रेम का, जन्म जन्म से जोड़।
प्रकाश जीवन बनता मिटता, प्रेम सदा बिन जोड़।।

जिन जिन सार सब्द प्रीति करि, रहे प्रेम लवलीन।
दर्पण सम उझले भये, अब मन ही होयो अधीन।।

त्रेता काल की स्थापित की हुई मर्यादायें आज भी प्रासंगिक व सात्विक अंश से भरपूर मानवता में प्रेम व एकता को स्थापित किए हुऐ हैं। जब तक इन मान्यताओं और मर्यादाओं का पालन होता रहा तब तक मानव समाज का हर कार्य सुगमता व सुचारू रूप से चलता रहा तथा जब–जब इन मर्यादाओं की अवहेलना होती रही तब–तब समाज में ह्ीन–भावना उजागर हुई और समाज पतन की और अग्रसर होता रहा। जब–जब स्वार्थी–लोभी व कपटी मनुष्य व समुदाये अपना व अपने सबंधियों की अयोग्यता व कमियों को नज़र–अंदाज करने के लिए जात–पात का सहारा लेते और उनकी झूठी महिमां मंडित करवाते रहे तब–तब समाज में घृणा, द्वैष फैला और समरस्ता का विनाष हुआ। बीते समय के साथ–साथ समाज में इसका रूप अति विकृत होता चला गया। जब–जब भी समाज में इन मर्यादाओं का हनन हुआ तब–तब समाज के सुचारू रूप में चलने में बाधा उत्पन्न हुई। घौर कष्टों व सामाजिक पतनों के उपरांत मानव को आखिरकार एक बार फिर से मर्यादाओं का पालन करना ही होता है। बड़े–बड़े युद्धों के बाद भी मर्यादाओं का पालन करके ही समाज में सामाजिक शांति को आज तक स्थापित किया जाता रहा है और आगे भी ऐसे ही मर्यादाओं का पालन होता रहेगा। चुंकि सामाजिक उन्नति व समरस्ता के लिए इन मर्यादाओं का पालन अति महत्वपूर्ण व आवश्यक है इसलिये ये मर्यादायें ही सामाजिक समरस्ता और शांति का पर्याय कल भी थीं, आज भी हैं और आगे भी सर्वदा रहेंगी।

41 – द्वापर युग

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार हर द्वापर युग की आयु लगभग 8 लाख 68 हज़ार वर्ष की होती है। द्वापर युग में मानव के जीवन में रजोगुण के साथ–साथ तमोगुण भी अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ कर देता है।

द्वापर युग रज तम बड़ा, सत्त हुआ कमज़ोर।
साम दंड भेद बताने, शाम रूप लियो अवतार।।

द्वापर युग के आरम्भ काल में मानव समाज की संख्या अभी भी कुछ लाख ही थी परन्तु द्वापर युग समाप्त होते–होते यही संख्या एक करोड़ के करीब जा पहुंची। त्रेता समाप्त होने उपरांत व द्वापर के प्रारम्भिक काल तक समाज के समृद्ध लोगों में प्रतिद्वंदता, ईर्ष्या व द्वैष–भाव घर कर चुका था। इसी काल में सभी साम्राज्य अब अपनी सीमाओं का कठोरता से पालन करने लगे थे तथा वो एक–दूसरे साम्राज्यों का अपनी सीमा में प्रवेश तक नहीं चाहते थे। साम्राज्य व मर्यादाओं के लिए नियम कानून व हदें निर्धारित कर दी गईं थी तथा जिसकी अवहेलना होने पर दण्ड देने का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। द्वापर काल में मानव समाज में राग द्वैष के साथ–साथ तमोगुण का प्रभाव शीघ्रता से फैलने लगा जिस कारण समाज में काम वासना का विस्तार तीव्रता से फैला। अगर ये कहें कि मानव समाज में एक दूसरे की देखा–देखी में सामाजिक बुराईयां तीव्रता से बड़ने लगी थीं तो अतिष्योक्ति नहीं होगी। इस काल में सत्तोगुण का ह्रास हुआ, रजोगुण अत्यधिक प्रभाव दिखाने लगा जिससे समाज में एक–दूसरे से दूरियां व वैम्नस्य बड़ने लगा। रजोगुण बड़ने के साथ–साथ क्रौध व प्रतिद्वंदता तो बड़ी परन्तु अब समाज में एक–दूसरे से लोग उलझना आरम्भ हो गये थे। नित्य नवीन साधन जीवनचर्या में प्रयोग होने लगे तथा स्वादिष्ट व लज़ीज मसालों से भौजन तैयार किया जाने लगा जिससे रोग अति तीव्रता से फैलने लगे। सतयुग काल रोगों से रहित था अर्थात उस समय रोग़ लगभग ना के बराबर होते थे, त्रेता काल में भी कोई बिरला ही रोगों के प्रभाव में आता था। द्वापर काल में अब रोग पांव पसारने लगे तथा इनके निदान हेतु वैद्य् अब समाज का अंग बन चुके थे। द्वापर काल अंत तक ये वैद्य् नग़रों और कसबों से आगे गांव–गांव में भी रोगों का निदान करने हेतु दवा देने लगे। समाज में आम मानव का जीवन अब समृद्ध हो चुका था। तथा साधारण मानव भी अब यातायात के लिए घोड़ों, रथों और बैलगाड़ियों का प्रयोग करने लगा था। पक्के मकान जो त्रेता में जहां समृद्धशाली लोगों के पास होते थे वहीं अब समाज के कसबे व नगरों में भी मध्य व निम्न वर्ग के लोग इनका निर्माण करने लगे थे। द्वापर अंत आते–आते साम्राज्यों के राजाओं में अपने साम्राज्य के विस्तार की लालसा बड़ने लगी थी यहां तक कि अपनी समृद्धि व विस्तार के लिए उन्होंने एक–दूसरे के साम्राज्यों पर एकाधिकार स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। जिसने आगे चल कर चंद काल उपरांत ही युद्धों का स्वरूप ले लिया। इस विस्तारवाद के बीज ने मानव समाज में शालीनता का अभाव तथा वैम्नस्ता का विस्तार फैलाना आरम्भ कर दिया। युद्ध करने की प्रथा ऐसी चली कि हर साम्राज्य ने अपने संसाधनों व धन को अपनी सुरक्षा और इसके विस्तार हेतु सैन्य बलों पे व्यय करना आरम्भ कर दिया। द्वापर काल के प्रारम्भ में सैन्य बलों को सुदृढ़ करने की ये प्रथा ऐसी चली कि दिन प्रति दिन भंयकर विक्राल रूप लेती चली गई, आज के वर्तमान काल में साम्राज्यों के कुल व्यय का लगभग 50 प्रतिशत से भी

ज्यादा धन सैन्य बलों को सुदृढ़ करने में ही लग जाता है। जिससे समाज के दूसरे काम प्रभावित होते हैं, जैसे ग़रीबी, अशिक्षा, भुखमरी व अन्य और भी आवश्यक वस्तुओं के अभाव समाज में तेजी से फैले, यह कुप्रथा त्रेता काल से प्रारम्भ हुई और दिन प्रति दिन निरंतर महां विक्राल रूप धारण करती जा रही है।

अच्छे बुरे कर्म मानव करता, कर्म फल भौगन जन्म ले बारम्बार।
मनुष्य जग में जो कुछ है करता, छूटे ना कर्मन जाल पसार।।

ऐसा भी नहीं कि त्रेता युग में युद्ध ना हुए हों। त्रेता काल में जो भी युद्ध हुए, वह विस्तारवाद व एकाधिकार जमाने के लिए नहीं हुए। इस काल में जो भी युद्ध हुए वह मर्यादाओं को स्थापित करने तथा विचारों में प्रतिद्वंदता के कारण ही हुऐ। इन युद्धों में जीतने वाले राजा महाराजा हारने वाले साम्राज्यों पर अपना अधिपत्य नहीं जमाते थे, हां अपनी धारणाओं के आधार पर उन साम्राज्यों को नियमबद्ध कर देते थे। त्रेता काल से ही युद्धों में हथियारों का प्रचलन भी आरम्भ हुआ, इस काल में योद्धा मानसिक शक्तियों से युक्त हो के युद्ध करते थे और उन शक्तियों का प्रदर्शन वे केवल युद्ध के क्षेत्र तक ही सीमित रखते थे। इस नियम का पालन द्वापर काल के अंत तक किया गया। त्रेता युग में हथियारों का जो प्रचलन आरम्भ हुआ वह द्वापर युग में उन्नत होते–होते महांविनाष के हथियारों में बदल गया, इनका स्वरूप आज के वर्तमान युग में इतना बिगड़ चुका है कि पूरी मानव सभ्यता को ये हथियार सैंकड़ों बार समूल नष्ट कर सकते हैं। द्वापर काल के आरम्भ से लेकर इसका अंत आते–आते विस्तारवाद की भावना परिवारों, समाजों और साम्राज्यों में अब द्वंद–झगड़े उनकी दिनचर्या का हिस्सा बनने लगे। अब समाज में छली–कपटी, व्यभचारी व दबंग लोगों की संख्या तीव्रता से बड़ने लगी तथा व्योपार के लिए दुकाने सजने का क्रम आरम्भ हुआ तथा द्वापर अंत तक साम्राज्यों में 'कर' अथ्वा 'लगान' की व्यवस्थायें भी उनकी आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत्र बन के स्थापित हो चुकीं थी। द्वापर अंत तक मानव की जनसंख्या लगभग करोड़ के आस–पास हो चुकी थी। बुराईयां तो इतना बड़ चुकी थी कि बहुत से उद्दण्ड स्वभाव के लोग बार–बार दण्ड पाने पर भी बुरे काम करना नहीं छोड़ते, इनकी संख्या बड़ने से साम्राज्यों की सुचारू रूप से चल रही शासन व्यवस्था अब चरमराने लगी थी।

सुन्न तत्व अनह्द ग़रजे, सुन्न भी जानो मन रूप।
तीनों ही लोक में, मन ही मन का सरूप।।

सतयुग से ले कर द्वापर काल के अंत तक मानव समाज के सभी जन एक ही ईष्ट को मानते, पूजते तथा वेदों के अनुसार अपना जीवन यापन करते थे। सुचारू साम्राज्य व्यवस्था हेतु राजाओं द्वारा लोगों को राज्यों से निष्कासित करने की प्रथा आरम्भ हुई। ऐसे दम्बी व दुराचारी लोगों का नगरों व बस्तियों में प्रवेश वर्जित कर दिया गया तथा इसी काल में मृत्यु दण्ड देने की प्रथा भी प्रारम्भ हुई। इस निष्कासित प्रथा ने पूरे के पूरे मानव समाज का विघ्टन ही कर डाला, तब का प्रारम्भ हुआ मानव बटवारा समय के साथ–साथ सारी मानव प्रजाति के लिए घौर पतनशील साबित हुआ। मानव समाज में इसी निष्कासन से हुऐ बटवारे के कारण कुछ काल उपरांत समाज में नवीन धर्म सम्प्रदायः उभरने प्रारम्भ हो गये तथा मानव नीच से नीच प्रवृतियों की ओर अग्रसित होने लगा। धीरे–धीरे इनकी संख्या बड़ने लगी, द्वापर काल में नगर–ग्रामों के सामुहिक विस्तार से साम्राज्यों की सीमाऐं फैलने लगी जो

अंततः दूर दराज जंगलों के हदों तक जा पहुंची। समाज से निष्कासित हुए लोग इन जंगलों में वास करने लगे तथा नागरिक जीवन से दूर आदिवासी जीवन जीने लगे। ये निष्कासित लोग कंदमूल खाकर व कुदरती जल स्त्रोत्रों से जल ग्रहन कर अपना जीवन यापन करने लगे। पहले पहल तो खान पान के अभाव में इन लोगों ने जानवरों व पक्षियों को मार कर इनका मांस खाना ही प्रारम्भ किया था परन्तु बाद में धीरे धीरे इससे एक भंयकर प्रथा का जन्म हुआ। वर्तमान काल में तो हर सभ्य मानव समाज में मांसाहारियों की संख्या अति तीव्रता से विकसित हुई है। मानव संख्या बल बड़ने पर अब इन मानवों ने अपने आप को कबीलों के रूप में स्थापित कर लिया तथा अपने नये–नये ईष्टों की स्थापना भी करने लगे।

मन राजा मन प्रजा, मन कामी मन रूप है काल।
मन ही सब कुछ करता, यही है काल का जाल।।

ज्युं–ज्युं समय व्यतीत होता गया, निष्कासित मानव समाज में इन लोगों की संख्या सैंकड़ों, हज़ारों से बड़ कर लाखों तक जा पहुंची। निष्कासित मानवों की अगली पीढ़ी ने द्वैष व घृणा के भाव से युक्त होकर नगरवासियों से उनकी मान्यताओं के विपरीत जीवन जीना आरम्भ कर दिया। अब ये अपनी पहचान अलग–अलग बनाने व दिखाने लगे। इस निष्कासन प्रथा से मानव समाज में मानव को आपस में मानवता के विपरीत करने का और बांटने का काम आरम्भ हुआ। इन्हीं लोगों ने पहले–पहल अपने नये–नये ईष्ट बनाये, अपनी जीवन शैली व वेष–भूषा बदली, तथा कुछ काल बीतने उपरांत ये लोग आदिवासी अर्थात जंगली कहलाने लगे। नगरवासी समाज के मानवों द्वारा इन आदिवासियों को अनादर व घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा।

अच्छे दिन जब पास थे, सतगुरू डूंढा ना कोये।
अब पछताये क्या भयो, जब यम ने बांधा तोये।।

42 – कलयुग

सतयुग सत त्रेता तप, द्वापर पूजें चार।
कलयुग केवल नाम, सतगुरू नाम सूं पार।।

कलयुग साधो हमने जाना, झूठ शब्द दोहराई।
सार नाम मूल है, सतगुरू सूं लो इसे पाई।।

सहज सत भक्ति मार्ग के वर्तमान संपूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार कलयुग की आयु लगभग 4 लाख 32 हज़ार वर्ष काल होती है। इस कलयुग में मानव जीवन में सत्तोगुण व रजोगुण का तीव्रता से ह्रास होता है तथा

तमोगुण बड़ी तीव्रता से बड़ता है। कलयुग के प्रारम्भ काल में मानव की औसतन आयु 100 वर्ष और कलयुग के समाप्त होते–होते मानव की औसत आयु 15 से 20 वर्ष काल तक रह जाती है, तभी तो हर आने वाली पीड़ी पिछली पीड़ी से अति चंचल स्वभाव की होती है क्योंकि सतयुग के 200 वर्ष जीवन काल में तथा कलयुग के प्रारम्भिक 100 वर्ष के जीवन काल में जो कार्य मानव अपनी दैनिक दिनचर्या में करता था, वही कार्य अब उसे कलयुग के समापन काल में 15 से 20 वर्ष में करने पड़ते हैं। इसी कारण हर आने वाली पीड़ी वर्तमान पीड़ी से अति चंचल और व्यग्र स्वभाव की होती है। अति चंचलता व व्यग्र स्वभाव होने के कारण मानव के जीवन में मर्यादाओं और जीवन मूल्यों का स्तर तीव्रता–पूर्वक कम से कमतर होता चला जाता है।

कलयुग बलि काल है, मर्यादा रहे ना लाज।
सत्तोगुण का पतन हुआ, रज तम नर पे करे राज।।

कलयुग से पहले सारा मानव समाज सनातन भाव (मानवता) से बंधे ईक–मिक था। कुछ काल बीतने उपरांत कलयुग के आरम्भ काल में नये–नये धर्म व सम्प्रदायः उपझने लगे। त्रेता युग का आरम्भ होते–होते समाज के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए मानव–समाज को अलग–अलग समूहों में बांटा गया था। कलयुग के आरम्भ काल में ये समूह विकृत हो के जातियों व विषेश वर्ग के सम्बोधन से पहचाने जाने लगे, तथा अब जातिवाद इतना बड़ चुका था कि मानवों के नाम के साथ जातियों के साथ–साथ उपजातिवाचक शब्द भी जुड़ गये। यह प्रथा त्रेता व द्वापर युग तक तो ठीक थी और समाज सुचारू रूप से एक सूत्र में पिरोया भी रहा, परन्तु कलयुग का आगमन होते–होते समाज उस समय तक चार वर्णों में बंट चुका था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य तथा शूद्र ! पहले तीन वर्ण तो अपने आप को उच्चस्तरिय कहलवाने लगे परन्तु शूद्र वर्ण समुदायः को नीच व अछूत कहना प्रारम्भ कर दिया। हालांकि समाज के दैनिक कार्यों के उपयोग की 90 प्रतिशत सामिग्री यही शूद्र वर्ग के लोग ही बनाते थे तथा यह समाज का महत्वपूर्ण अंग थे, अथ्वा यूं कहें कि ये सामाजिक ताने–बाने का मूल स्तम्भ थे और आज भी हैं। इस ऊंच–नीच ने मानव सभ्यता का विनाष व पतन ही कर डाला।

जात धर्म पूछो ना कोये, साहिब भजे साहिब का होये।
जात पात झूठा कवच, साहिबन भक्ति में बाधा होये।।

निष्कासन प्रथा तथा ऊंच–नीच वर्ण प्रथा ने मानव सभ्यता पे इतना विनाषकारी प्रभाव डाला कि मानवता का तो जैसे पतन ही हो गया। जात पात रूपी द्वैष इस हद तक बड़ा कि समानांतर धर्म अब इन वशिकृत समुदायों में उभरने लगे। जिससे विकृत लोगों का समाज एक–झुट व समृद्ध होने लगा, पहले–पहले ये लोग लूट–पाट, चोरी–डाका तथा नगरवासियों की सम्पतियां लूटने तक ही सीमित थे। कुछ समय बीतने पर ये लोग कबीलों के रूप में ईक्कट्ठे हुए और इन्होंने अपने अलग साम्राज्यों की स्थापना तक कर डाली। आरम्भ काल में लोग धर्म व कबीले आसानी से बदल लेते थे परन्तु समय व्यतीत होते–होते इन कबीलों व धर्मों की पहचान स्थाई होती चली गई। पर इस आधुनिक काल में पिछले पांच हज़ार वर्ष काल में

नये–नये धर्म–समुदायः इस तीव्रता से उभरे कि प्राचीन सनातन सत्ता का पतन ही होने लगा है। आज के वर्तमान काल में सनातन सभ्यता को हिन्दु कह के पुकारा जाने लगा है, यह सभ्यता संख्या में सिमटते–सिमटते कुल मानव समाज का दसवां हिस्सा भर ही रह गया है। हर बार सृष्टि् रचना में सतयुग से प्रलयः काल तक सनातन सभ्यता का यूंहि पतन होता जाता है क्योंकि सनातन सभ्यता ही पूर्ण सात्विक सभ्यता है जिसमें मनुष्य भक्ति सर्गुण या निर्गुण किसी भी रूप में क्युं न करे, यहां तक कि मालिक की सत्ता को नक्कारने तथा मानने वाले दोनों ही इस सनातन सभ्यता का अंश हैं। हर बार सृष्टि् रचना से लेकर प्रलयः काल तक सनातन सत्ता से ही नये–नये धर्म सम्प्रदायः व मत्त उपझते ही रहते हैं अर्थात सब धर्मों का मूल सनातन ही है। अभी तक ये क्रम निरंतर जारी है तथा सनातन अर्थात सत्य सभ्यता की समूल समाप्ति ही प्रलयः का मूल है। सभी को अपने में समोह लेना ही सनातन है अर्थात सारा संसार वसुदेव कुटुम्भ है। सभी जीव एक मालिक (साहिब सतपुरूष जी) से उपझे हैं और सभी एक समान ही हैं, यही सनातन का मूल है।

मन राजा मन प्रजा, मन सयाल का फन्द।
मन ही सभी को उलझा रहा, यही काल का फन्द।।

अच्छे बुरे कर्म मन करवाता, आत्म बेबस लाचार।
मनुष्य मन अधीन कर्म है करता, मन ना करने दे आत्म अनुसार।।

मन शत्रु निज जानिये, आत्म का ना चले ज़ोर।
राज ही मन चला रहा, तांहि असंतोष चहुं ओर।।

मन का सुन्न ही रूप है, पवन आकार निराकार।
मन रूपी मूल पवन सहारा, सब्द सुरति साहिबन सरकार।।

43 – भौजन की महत्वता

किसी के घर जाकर बहुत खाना, दौष निकालना अच्छा नहीं।
ऐसा कर्म ईक मूर्ख बिना, दूजा कोई करता नहीं।।

सनातन सभ्यता को छोड़ बाकि सभी समुदायः मांस खाना व जीव हत्या अपनी बहादुरी व धर्म सम्मत काज समझते हैं तभी तो इस राक्षस–वृति को उन्होंने धर्म–कार्य कह कर अपने–अपने ग्रंथों में सम्मिलित कर लिया है। इस मांस भक्षण को अपने धर्मों का अंग मानते हैं तथा कुछ तो अपने ईष्ट्ों के नाम पे ही जीव हत्या (बलि व कुर्बाणी) को उचित ठहराते हैं। जीव हत्या के गुनाह से कोई बच ही नहीं सकता, जिस के कर्मों के फल से कोई भी दौष मुक्त नहीं हो सकता, चाहे कितने भी पूजा–पाठ, बंदगी व यत्न–प्रयत्न क्युं न कर ले। सहज सत मार्ग के संत परमहंसों की वाणी अनुसार हर पदार्थ जिसे अधिकांशता हम ग्रहण करते हैं उनमें जीवों का वास होता ही है। भगवान निराकार के माया रूपी क्रुर जाल विस्तार को देखें कि मानव के अंताःकरण में उठने वाले

भाव ही पुण्य–पाप का निर्धारण करते हैं। जैसे हम जो भी अन्न के दाने ग्रहण करते हैं जिनसे अंकुर फूटते हैं उन सभी में जीवन वास अर्थात आत्मां का वास होता है। अन्न के सभी दाने पीड़ा रहित अचेत अवस्था में होते हैं। कुछ तो अति सूक्ष्म जीव अर्थात अनु व परमाणु तेज हवा के चलने भर से मिटते व बनते रहते हैं। अधिकतर तो स्थितियों के अनुसार अपने रूप को परिवर्तित कर लेते हैं, अधिकांशता की आयु चंद पलों से लेकर कुछ दिनों तक की अल्प आयु होती है। परन्तु ये जानते हुए कि नरीह जीवों को काटना व मारना कितना दुखद व पीड़ादायी होता है फिर भी उनकी हत्या करना अति भारी गुनाह है। त्रिलोकि में भाव प्रदान कर्मों का फल अवश्यंभावी है अर्थात अटल है जिसे किसी भी परिस्थिति में टाला ही नहीं जा सकता। सुशुप्त अवस्था में अन्न के दाने, फल व सब्ज़ियां पीड़ा रहित अवस्था में होती है, इनका ग्रहण जीवन–यापन के भाव से किया जाता है न कि मौज मस्ती और लजीज़ व मन भावन स्वाद के भाव से ग्रहण किया जाता है।

मांसाहारी मानवा, प्रतक्षः राक्षस जान।
जो जीवों को मार खाये, वो तो प्रेत समान।।

जीवों का जो संहार करे, संवेदना मरि मरि जाये।
दूजों के जो प्राण हरे, मृत हो प्रेत योनि वो पाये।।

हे मानवों ये मानव जन्म कर्म रूपी बीजों को बोने के लिये मिला है। बिन सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की कृपा के कोई भी इस बीज रूपी कर्मजाल से जीवात्मां को मुक्त नहीं कर सकता। मानव जीवन में किये गये कर्म हज़ारों व लाखों गुणा फलिभूत होते हैं। यही बीज रूपी सैंचित कर्म मानव विनाष का मूल कारण है। मांसाहार करने वाले सभी मानव चाहे धर्म प्रथा, कुर्बानियां, देवी देवताओं के नाम पर बलि अथ्वा किसी भी चिकित्सक का परामर्श कह कर मांसाहार को उचित ठहराये जा रहे हैं। परन्तु भीतर से इस बात से सभी भलि भांति परिचित होते हैं कि जीव हत्या तो अत्यंत क्रूरता भरा कृत्य है। ऐसे सभी मानव कसाई से लेकर पकाने व खाने वाले सभी मृत्यु उपरांत मांसाहार जैसे कर्मों के फल के प्रतिरूप में नीच भौग योनियों में अति कष्ट व भयंकर पीड़ा सहने को विवश होते हैं।

इन सब के साथ साथ ही हम जितने भी दैनिक भौज में चावल के दाने, आटे में कनक के दाने, दाल के दाने व सब्ज़ि रूपी कोई भी प्रदार्थ ग्रहण करते हैं वे भी अत्यंत भयंकर दौष के रूप में हमारे प्रालब्ध में सैंचित हो जाते हैं जिनके फलस्वरूप जीवात्मां उन दानों के गणित के बराबर ही भिन्न भिन्न योनियों को प्राप्त होती है। परन्तु एक बात मूलतः ज्ञात रहे कि चावल, कनक, दाल व सब्ज़ियां पीड़ा रहित अवस्था में भौग योनियां ही हैं, इन योनियों का विस्तार ही केवल जीवों के पौषन हेतु रचा गया है अर्थात एक मानव जीवन में ग्रहण किया गया भौज अंतहीन जन्मों की श्रृंखला में उलझा देता है।

सारे के सारे जगत गुरू इन दौषों से किसी को भी मुक्त नहीं कर पाते क्योंकि अधिकांष्ताः जगत गुरू भौज रूपी मकड़ जाल कर्मन रूपी जाल को नहीं जानते। वह तो स्वयं ही इस भयंकर आवागमण के वृहद व अंतहीन जाल में उलझते चले जा रहे हैं। सारा संसार व सब के सब जगत गुरूआजन कर्म, ज्ञान व अंतःकरण की ईन्द्रियों को प्रयोग करते हुऐ ही निरंकार भगवान की निरंतर भक्तियां किये जा रहे हैं। यह सब तो मन के अंग हैं और इन द्वारा की गई भक्तियां तो भगवान

निराकार निरंझन अर्थात मन के दायरे तक ही पहुंच पाती हैं। निरंकार भगवान जीवात्मां को प्रालब्ध कर्मन रूपी चौरासी के महां विक्राल चक्रव्यूह जाल से तो कभी भी मुक्त नहीं होने देना चाहते। परन्तु सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जन परा भक्ति में अर्थात मन–माया से परे की सत्ता परमपिता परमेश्वर साहिब सतपुरूष जी के संग सदैव सुरति से जुड़े होते हैं। इसी कारण वे मन–तरंग व मन की सत्ता कर्मन जाल से पूर्णतः मुक्त होते हैं। वह स्वयं मुक्त होने के संग संग सारे संसार के जीवों को भी मन–माया से मुक्त कराने की चेष्ठा जीवन प्रयन्त करते रहते हैं।

जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन,
जैसा होवे मन, वैसी उपझे वृति,
जैसी जाकि वृति, तैसी ताकि प्रवृति,
सु–प्रवृति सूं, परहित जगत कल्याण,
कु–प्रवृति सूं, स्वयं क्रौधी दूजे परेशान' ।

सहज सत मार्ग के वर्तमान काल में एक मात्र पूर्ण सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' जो इस धरा पर सहज सत भक्ति की धारा प्रवाह 'सुरति' से ओत–प्रोत हैं। सुरति द्वारा भौज कैसे ग्रहण किया जाये जिससे जीवात्मां आवागमण के चक्रव्यूह से सुरक्षित रहे, तो हे सभी जिज्ञासुओ व सतगुरू सतनाम सस्थां के अनुयाई हंसात्माओ ! साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की सत सुरति से ओत–प्रोत सत्संगों में पधारें क्योंकि भौजन कैसे किस विधि से ग्रहण किया जाये, इस पर वे अपने प्रवचनों में निरंतर ब्ख़ान करते हैं। साहिब जी बारम्बार दोहराते हैं जो जन निज कल्याण व आध्यात्मिक उत्थान हेतु श्रद्धा व समर्पण भाव से साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के सत्संग में पधार कर मोक्षदायी अमृतमयी प्रवचन सुनते हैं तथा भौजन से मोक्ष पथ पर कैसे अग्रसित हुआ जाता है इसका सुरति ज्ञान उनके सत्संगों में आकर श्रवण व ग्रहण करें।

जीवन जीने के लिए केवल आवश्यकता वश ऐसे पदार्थों का लिया गया भौज ही शाकाहारी भौजन कहलाता है जो पाच्य व तामस वृतियों का शांत करता है जिससे शुद्ध भाव युक्त मानव आध्यात्म व भक्ति मार्ग की ओर अग्रसित हो सकता है। परन्तु मांसाहार भौजन वासायुक्त होने के कारण तामस गुण पैदा करता है जिससे काम वासना और क्रौध और प्रबल होते हैं। इन के बड़ने से दया, क्षमा, शील भाव नष्ट हो जाते हैं। अधिकतर मांसाहारी धर्म के लोग क्रूर, दबंग व असहनशील प्रवति के होते हैं। जो धर्म मांसाहार का समर्थन करते हैं वे मानव–समाज अपने धर्म व विचारों का प्रसार करने में असमर्थ होते हैं तभी तो ज़ोर जबरदस्ती, धन, बल तथा प्रलोभन से वे इसका प्रसार करते हैं, ऐसे धर्म सुविचार–वृद्धि के एकदम विपरीत संख्याबल–वृद्धि पर अधिक ध्यान देते हैं जो आगे चलकर सम्प्रदायों के विनाष का कारण बनते हैं। मांसाहार से बुद्धि क्षीन हो जाती है जिस से क्रौध उपझता है जिस कारण मानवों का मानसिक संतुलन अस्त–व्यस्त हो जाने से वे आक्रोश में आकर सही व ग़ल्त का निर्णय करने में असमर्थ हो जाते हैं।

तभी तो अधिकांशतः मांसाहारी जन शराब व अन्य माद्यक–नशों का सेवन करने लग जाते हैं और अगर वे थोड़े से धनवान हों तो वैश्या गमणकारी भी हो जाते हैं इसिलिए तो समाज में शराब, शबाब व कबाब का अधिकतर बोल बाला है और समाज का ये प्रतिष्ठित वर्ग इसे स्वयं को

उच्च और सभ्य दर्शाने का एक अभिन्न माध्यम मानता है। उपरोक्त सभी का अभिप्रायः एक सर्व सत्य है कि मांसाहार हर तरहं से मानवता का विनाष ही करता है। अधिकतर पीड़ियों से मांस खाने वाले लोगों की संतानों के मस्तिष्क की संवेदनशील कौशिकाऐं विकसित ही नहीं होती, जिससे वे सूक्ष्म व संवेदनशील ज्ञान ग्रहण ही नहीं कर पाते तथा राक्षस वृतियों की तरफ तुरन्त आकर्षित हो जाते हैं तथा ऐसे मानव समाज में उग्र विचार असंवेदनशील वृति वाले हिंसक होके अशांति का प्रचार व प्रसार करते है। मांसाहारियों की संवेदना शीघ्र ही समाप्त हो जाती है जिससे मानवता का नाष होने से समाज में कुकृत बुराईयां व व्यभचार की वृद्धि होती है अर्थात राक्षस वृतियां बड़ने से दूसरों की जान लेने व उनकी ह्वानी में ही उनको अपनी निज सिद्धी दिखने लगती है। जो पूरे के पूरे मानव समाज को पतन की ओर धकेल देती है।

दाता लोभी राजा और रंक, सब मन के हैं संगा।
लाख चौरासी फिरता, जीव जाने ना मनरंगा।।

जग में सभी जीव जंत, पूर्व जन्मों के अपने सारे।
सब में व्यापक साहिब अंश, तूं काहे इनको मारे।।

मानव असंवेदनशील होते ही स्वार्थ सिद्धी के कारण अत्याचार करने की प्रवृति से ग्रस्त हो जाता है जिससे मानव धर्म से अधर्म मार्ग पर चल पड़ता है। ऐसी अवस्था वाले मानव अपने आप को चतुर चालाक व अकलमंद समझने लगते हैं और तरक वितरकों में शीघ्र ही क्रौध भाव में आ जाते हैं, यहां तक कि उचित विचारों को भी सुनना गंवारा नहीं करते, क्योंकि क्रौध के कारण वे अपनी संवेदनशीलता को भी खो चुके होते हैं, जिस कारण ये कुछ भी सहन नहीं कर पाते। परहित भाव मिट चुके होने के कारण ये विनाष वृति से ग्रस्त हो जाते हैं। दूसरों पर अपने पक्ष को पूरी तरहं से व्यक्त न कर पाने की असमर्थता और विवशता से असहाय हो कर छोटी–छोटी बातों पर भी अभद्र भाषा तक का प्रयोग करने लग पड़ते हैं और अत्यधिक क्रौध होने पर तो ये मारा–मारी तक भी आ जाते हैं तथा अपने सभी कु–कृत्यों को धर्म सम्मत व उचित ठहराने का प्रयास करते हैं। ये सब अंतःकरण में अंहकार की अति वृद्धि होने के कारण छोटी सी असफलता होने पर क्रौध व उत्तेजना में अपना संतुलन खो देते हैं तथा दूसरों का अनहित कर बैठते हैं। ऐसे दम्बी राक्षस वृति के लोगों को डर के मारे लोग मान देते प्रतीत होते हैं, इनका हितेषी तो कोई होता नहीं, हां चापलूसों की भरमार होती है। आज के भयक्रांत समाज में नेता, बड़े–बड़े ओहदों के सरकारी अधिकारी व समृद्धशाली लोग इसी विकृति से भरे पड़े हैं। जो मांसाहारी बलहीन होते हैं वे भी चतुर–लौमड़ी भाव से युक्त दूसरों की कमज़ोरीयों का लाभ उठाकर अनैतिक तौर पे लूट–खसूट मचाते हैं। तभी तो वासुदेव कुटुम्भकम की भावना आज के युग में प्रायः लुप्त सी हो गई है। आज जितना मानव समाज में शिक्षा व संसाधनों का प्रसार है इतना अधिक तो कभी किसी युग में नहीं हुआ। जितना अधिक उन्नतशील मानव समाज हुआ उतना ही अधिक अशांत, अविवेकी तथा मानवता से दूर होता गया।

चिंता माया डाकनी, काड कलेजा खाये।
मन के ये अंग हैं, सत सब्द सूं मिट पायें।।

ऐसा भी नहीं की शाकाहारी मानव इन वृतियों से अछूते हों। शाकाहारी मानव भी समय, काल व परिस्थितियों के अनुकूल निजहित की सोचते हैं और उसे साधने का प्रयास करते हैं। यह 90 प्रतिशत अधिकांशता निजहित के संग–संग परहित का भी ध्यान रखते हैं तथा मारपीट व दबंगपन से सदा दूरी बनाये रखते हैं। ये चाहे कितने समृद्ध व बलशाली भी क्युं न हों, कुछ मोकों को छोड़ कर अधिकतर शांत ही रहते हैं। तभी तो सहज मार्ग के संत परमहंसों की वाणी में बड़ा प्रचलित कथन है :–

मांसाहारी मानवा, सदा दुखी रहे जग आन।
ताकि संगति जो करे, उसकी भक्ति में ह्रान।।

जल थल रहते जीव जंत, इन पे दया प्रेम विचारो।
सब घट व्यापक साहिबन अंश, फिर काहे इन्हें मारो।।

ईन्सान अर्थात मानव का संवेदनहीन होना ही कलयुग का प्रत्तीक है। कलयुग कोई बुरा काल नहीं है भाई, काल तो सभी एक समान हैं। इस युग में मानव सत्य से परे बुराई को अपनाता है, जिससे समाज में अशांति व असंतोष का प्रसार होता है तभी तो मानवता के पतन के कारण कलयुग को महां–पाप काल भी कहा गया है। आज के दौर में अभी भी 70 प्रतिशत बुराईयां (पाप) तथा 30 प्रतिशत सुकर्म (पुण्य) का जगत में प्रसार है। इस काल में लघु प्रलयः तो अक्सर आती रहती हैं और आ भी रही हैं जिनमें सैंकड़ों से हज़ारों–लाखों जीव एक साथ मारे जाते हैं। पर जब सभी मानव निज स्वार्थ सिद्धि के ईलावा परहित का त्याग कर एक दूसरे का जीना दूभर कर देंगे अर्थात बात–बात पर एक दूसरे की जान लेने पर उतारू हो जायेंगे और सहन शक्ति प्रायः लुप्त ही हो जाऐगी तभी प्रलयः काल का आरम्भ होगा।

काम मनुष्य पे स्वार हो, आत्म से दूर हो जाये।
काम ही नश्वर पापी शरीर, धारण करने में मन साथ निभाये।।

हर प्रलयः उपरांत अहोरात्री और फिर से सृष्टि् रचना क्रम प्रारम्भ होता है। सृष्टि् रचना उपरांत प्रलयः क्रम लगातार तीन आयोजन कौड़ी काल से चला आ रहा है, वर्तमान चौथी आयोजन कौड़ी का प्रारम्भिक काल अभी चल रहा है जिसमें प्रलयः और सृजन निरंतर चलाऐमान हैं जो 17 आयोजन कौड़ी काल तक आगे भी निरंतर चलाऐमान रहेगा।

मद्य् काम क्रौध लोभ मोह, ये मन के जानो अंग।
ये पांचों मन के अस्त्र हैं, जिन सूं झकड़ा हंसा संग।।

तन मन थिर ना रह सके, काम बाण विषैला बाण।
एक बाण सूं सब जग जागे, सुर नर मुणि जब लगे बाण।।

सतयुग में मानव सतोगुण से पूर्ण युक्त होता है अर्थात सत्य का 99 प्रतिशत प्रसार होता है। मानव की ओस्त आयु 150 से 200 वर्ष काल तक होती है, ओस्त उंचाई लगभग 20 फुट के आस–पास होती है। त्रेता काल का मध्य आते–आते सत्तोगुण के साथ रजोगुण का प्रसार भी बड़ी तीव्रता से होता है। इस काल में सत्य का प्रसार कम होके 70 से 80 प्रतिशत के मध्य रह जाता है। सतयुग में प्रायः मानव रोग मुक्त होता है, त्रेता काल के मध्य पहुंचते–पहुंचते मानवों में रोगों की उत्पति आरम्भ हो जाती है और मानव की ओस्त उंचाई कम हो कर 15 से 12 फुट के आसपास रह जाती है। द्वापर काल में भी मानव ने सामाजिक स्त्रोतों और संसाधनों में तीव्र गति से उन्नति की तथा इस काल में हर ओर विलासता भरे सुख साधनों का प्रसार अत्यधिक बड़ता चला गया। इस काल में सतोगुण और रजोगुण के साथ–साथ अब तमोगुण का प्रसार भी तेजी से फैलता है, साथ ही साथ मानवों की संख्या भी लांखों में हो जाती है। द्वापर आरम्भ से अंत तक सत व रजोगुण का तीव्रता से ह्रास होता है और तमोगुण का प्रसार बड़ने से अब समाज में सत्तोगुण 60 प्रतिशत के आस–पास सिमट के रह जाता है। मानव काया द्वापर काल के आरम्भ में 12 फुट से अधिक और द्वापर अंत तक यह 8 फुट तक सिमट के रह जाती है। कलयुग के आरम्भ काल में रजोगुण व तमोगुण का प्रसार बड़ी तीव्रता से बड़ता है तथा सतोगुण सिमटने लगता है जिससे समाज में कुरीतियां और असंतोष की वृद्धि होती है। कलयुग के आरम्भकाल में मानव की ओस्त उंचाई 8 फुट के आस–पास होती है तथा कलयुग के अंत आते–आते ये 3 फुट के आस–पास रह जाती है। कलयुग के अंतकाल में तमोगुण बहुत अधिक बड़ जाता है, रजोगुण लेषमात्र का रह जाता है तथा सतोगुण प्रायः विलुप्त सा हुआ प्रतीत होता है। एक बात सर्वदा ज्ञात रहे, चारों युगों में यह तीनों गुण सदैव विद्यमान रहते हैं, हां ! इनका प्रसार कम–अधिक हो सकता है परन्तु इनका अस्तित्व हर युग व हर काल में सदैव विद्यमान रहता है। यह क्रम प्रत्येक सृष्टि रचना काल से प्रलयः काल तक बारम्बार दोहराया जाता है जो आगे भी निरंतर जारी रहेगा।

मन बिन डौरी सबै नचावे, दिखती कौऊ कौ नांहि डौर।
आत्म अति व्याकुल पड़ी, मन बांधी कर्मन डौर।।

तन को कुछ भी चाह नहीं, जो दो सोहि कबूल।
खट्टा मीठा नमकीन जो, मन झट करता कबूल।।

द्वापर काल में समाज में मांस–मंदिरा का प्रचलन आरम्भ हुआ और वर्तमान काल तक बड़ता ही चला जा रहा है, आरम्भ में तो इसे मानव अपनी समृद्धि व प्रतिष्ठता का प्रतीक समझने लगा और वर्तमान काल में तो समाज के लगभग 90 प्रतिशत लोग नशे और मांस का सेवन करते हैं। इससे समाज में घृणा, द्वेष व बुराईयां तीव्रता से फैलती हैं। द्वापर अंत और कलयुग के प्रारम्भ में सत्य प्रसार 50 प्रतिशत से भी कम रह जाता है। साधु संतों का प्रभाव भी इस काल में तेजी से फैलता है। कलयुग के क्या कहने ! वर्तमान युग में सत्य तो प्रचलन में बहुत कम रह गया, कथनी व करनी में अंतर स्पष्ट नज़र आने लगा है, अंदर अंतःकरण भाव कुछ और ! कर्म कुछ और ! सब निजहित व स्वार्थ पे आधारित होते हैं, तभी तो लघु प्रलयों का प्रारम्भ द्वापर के अंत काल से आरम्भ होकर कलयुग में तेजी से बड़ने लग जाता है। अभी प्रलयः होने में लम्बी काल अवधि (लाखों वर्ष) बाकी है, हां ! लघु प्रलयः तो हो रही हैं और आगे भी निरंतर होती रहेंगी। जब मानव की ओस्त उंचाई 3 फुट से भी कम रह जायेगी, रजोगुण और तमोगुण का

प्रसार ही हर ओर होगा और 'सत्य' अर्थात सत्तोगुण तो प्रायः विलुप्त ही हो चुका होगा, तभी इस सृष्टि् का विनाष होगा अर्थात प्रलयः होगी।

जगत को जानो, दो मुंही तलवार।
ईक भीतर घाव करे, दूजी करे बाहर।।

मनसा वाचा कर्मना, चित को देखो आप।
जो कुछ हृदय में चल रहा, वो ही है संताप।।

सहज मार्ग के संत परमहंसों की वाणी अनुसार ये सारी की सारी त्रिलोकि द्वैत नियम पर ही आधारित है। इस सारी त्रिलोकि में सत्य–असत्य हर समय रहते हैं। यह द्वैत ही त्रिलोकि का माया आधार है। इस धरा पर सच व झूठ सर्वदा विद्ध्मान रहते हैं तथा इनका प्रसार कम व अधिक होता रहता है। सच–झूठ के संग–संग दिन/रात, बनना/मिटना, अच्छाई/बुराई, श्रेष्ठ/नितकृष्ट, सज्जनता/दुर्जनता, अमीरी/गरीबी, संग्रह/त्याग, सदाचार/व्यभचार, जमना/मरना ही तो द्वैत है। कहने का अभिप्रायः यह है कि द्वैत सदैव इस धरती पर विद्ध्मान है और आगे भी रहेगा। त्रिलोकि के मुख्य आधारों में द्वैत भी एक महत्वपूर्ण आधार है। जैसे द्वैत त्रिलोकि का महत्वपूर्ण अंग है वैसे ही सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण आधारित त्रिलोकि भी त्रिगुणि माया है। समय–समय पर ये गुण कम–अधिक होते रहते हैं परन्तु तीनों गुण हर काल में विद्ध्मान होते ही हैं। सतोगुण से मानव–समाज परहितकारी अर्थात सब की भागीदारी में अपनी उन्नति समझता है और रजोगुण प्रभाव से हर संभव प्रयत्न से अपनी निज उन्नति हेतु क्रियाशील रहता है। तमोगुण वृद्धि से समाज में विलासता, कामातुरता, व आलस्य का प्रभाव मानव समाज में बड़ता है जिससे अवगुणों में वृद्धि होती है। ये तीनों गुणों की महानता है कि सत्त से समरसता, रज से निज व सामाजिक उन्नति, तम से प्रमाद, क्रौध और काम भाव की वृद्धि होती है। तभी तो कलयुग में मानव समाज में तमोगुण की वृद्धि के कारण मानव जन–संख्या विस्फोटक स्तर तक पहुंच जाती है जिस कारण संसाधन कम से कमतर होते चले जाते हैं जिसके कारण राग, द्वेष, और वैम्नस्ता का प्रचार व प्रसार बड़ी तीव्र गति से होने लगता है जो आगे चलकर विनाष अर्थात प्रलयः ही का कारण बनता है। इन तीनों गुणों का त्रिगुणि त्रिलोकि में सर्वत्र पसार है।

44 – साहिब कबीर जी की महिमां

कंई युगों से भक्ति करि, पाया नांहि मोक्ष द्वार।
बिन जागे जो भक्ति करे सो नांहि भव सूं पार।।

कबीर साहिब जी की महिमां का गुणगान करना सीधे साहिब सतपुरूष जी का गुणगान करना ही है। वे सहज सत्त भक्ति के प्रथम पूर्ण संत परमहंस इस धरा पर हुए हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम सतयुग में बिन सतगुरू व बिन ''सार सब्द'' (विदेह नाम) के अपनी निज चेतन सुरति द्वारा पूर्ण मोक्ष पाया। वे ही प्रथम साहिबन अंश हंसा हैं, जिन्होंने धरती पर निरंकार मोहिनी

माया रूपी त्रिलोकि में आकर भी अपनी चेतन सुरति से साहिब सतपुरूष जी की महिमां ज्योत जलाये रक्खी व जीते जी ही सतलोक अर्थात पूर्ण मोक्ष को पा लिया। साहिब कबीर जी ने तो स्वंय मोक्ष अवस्था को तो प्राप्त किया ही, साथ ही साथ हंस साथियों को निजधाम सतलोक जाने की प्रेरणा भी देते रहे। साहिब कबीर जी हर आयोजन कोड़ी काल के हर युग में बारम्बार इस मोक्षदायी धरा पर अवतरित होते रहे हैं तथा आगे भी होते रहेंगे, ताकि हम सब हंसा निज (साहिबन अंश) रूप को जान कर अपने मूल साहिब सतपुरूष जी में जा समाऐं और त्रिलोकि की क्रूर माया रूपी कष्ट भरी भूल भुलेयां से मुक्त हो अपने मूल में जा समाऐं। साहिब कबीर जी जगत दृष्टि से साहिब सतपुरूष जी के प्रथम निज अंश हुऐ, जिन्होंने सतपुरूष महिमां का गुणगान गाया। सहज सत मार्ग के बहुत सारे पूर्ण संत व सतगुरू परमहंसों ने कबीर साहिब जी को साहिब सतपुरूष जी का 'पुत्र' अलंकृत उपाधि के रूप में कह कर भी सम्भोधित किया। साहिब कबीर जी ने साहिब सतपुरूष सतलोक की जीते जी सैल (भ्रमण) की तथा साहिब सतपुरूष जी की महिमां को गा–गा कर जग जीवों के मोक्ष हेतु उनका मार्ग प्रशस्थ किया। ऐसा करने वाले वे सहज सत मार्ग के प्रथम पूर्ण संत सतगुरू परमहंस हुऐ। आगे आने वाले सभी संतों व सतगुरू परमहंसों के प्रेरणा स्त्रोत, साहिब कबीर जी ही ईक ऐसे संत हुए जिन्होंने यह ''सार सब्द'' स्वंय सतपुरूष जी के मुखारबिंद से सीधे सुरति द्वारा ग्रहण किया। आगे आने वाले सभी निजधाम के पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों ने ये सब्द सीधे साहिब कबीर जी से पाया या कंई कंई साधकों ने यह ''सार–सब्द'' विदेह नाम दात अपने–अपने सतगुरूओं से पाई। इसी कारण कबीर साहिब जी की महिमां ब्ख़ान से परे अनंत व अति महान है, तभी तो वह संत सम्राट व संत शिरोमणि भी कहे जाते हैं।

अच्छे बुरे के भेद ने, जग में जीव दियो उलझाये।
सतगुरू कृपा जो बरसी, हर जीव में साहिबन दर्स पायें।।

सतयुग काल में सारे का सारा मानव समाज सात्विक अर्थात सत्तोगुण से सुसज्जित होने के बावजूद भी अल्प मुक्ति स्वर्ग तो पा गया परन्तु इस काल में साहिब कबीर जी को छोड़ और कोई भी मोक्ष को प्राप्त ना हो सका। बड़ी विचित्र विडंभना देखें साहिब कबीर जी ने सतयुग में साहिब 'सत सुकृत' नाम से साहिब सतपुरूष जी की बहुत महिमां गाई तथा सतलोक सत्ता का खूब प्रचार भी किया पर कोई भी सहज सत मार्ग पर ना चला। त्रेता युग में साहिब कबीर जी साहिब 'मुन्निंद्र जी' नाम से विख्यात हुए तथा द्वापर युग में साहिब 'करूणामय जी' नाम से विख्यात हुए। कबीर साहिब जी हर युग में माया में भ्रमित हंसात्माओं को साहिब सतपुरूष जी के सतलोक चलने के लिए प्रेरित करते रहे, परन्तु माया में ग्रसित अधिकतर जीव मोक्ष पथ की ओर चलने के लिए कभी भी तैयार ही नहीं हुऐ। कोई बिरले बड़भागी जन ही उनके भावों के तथ्य और मूल को समझ कर इस मोक्ष मार्ग पर चल कर आवागमण से मुक़्त हो पाये।

अब कौन उभारे जीव को, जब तीनों पकड़ें हाथ।
अब संत ही तीनों भिन्न करे, सार सब्द के साथ।
करें चेतन आत्म को, ले चलें निजघर निज साथ।।

दास तो जग में कुछ नहीं, केवल साहिबन परछाई।
साहिब जी सतपुरूष हैं, जित देखूं तित वोई।।

सहज सत मार्ग के बहुत से संतों ने पूर्व काल में निस्वार्थ निरंकार की भक्ति जीवन भर करने के उपरांत अपनी सुरति को पहले से अत्यधिक चेतन पाया। निस्वार्थ अर्थात बिन मांग निरंतर भक्ति करने वालों को निरंकार भगवान सहज सतमार्ग के पूर्ण संतों की शरणी में भेजने को वचनबद्ध हैं, इसी कारण निरंकार भक्ति के उच्च कौटि के संत अंतिम काल में या तो सतलोक के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणागत आकर ''सार सब्द'' की दात को ग्रहण कर मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं अथ्वा उस काल में कोई पूर्ण संत अगर धरती पर विद्‌मान न हों तो वे अपनी सुरति से संत कबीर साहिब जी को प्रकट कर लेते हैं, फिर उन्हीं द्वारा सुरति से ही दात ग्रहण कर मोक्ष पद पा जाते हैं। इसी कारण निजधाम के बहुत से संत सतगुरू परमहंसों ने बहुत कम साहिब सतपुरूष जी की महिमां गाई। उनके प्रारम्भिक जीवन काल का अधिकांश समय निराकार भक्ति में व्यतीत होने के कारण उन्हें साहिब सतपुरूष जी की भक्ति महिमां का गुणगान व ब्खान करने के लिए बहुत ही अल्प समय मिला। परन्तु ''सार सब्द'' की दीक्षा के उपरांत अधिकतर समय ध्यान और सिमरन में लीन रहने के कारण भी वे साहिब सतपुरूष जी का अधिक गुणगान नहीं कर पाये और ना ही उनके द्वारा रचित पुस्तकों व ग्रंथों में साहिब सतपुरूष जी की महिमां का अधिक उल्लेख पढ़ने को मिलता है। जिससे साधारण जन–मानव सतलोक की बहुत सी महान विभूतियों की महिमां को जानने से वंचित रह गये, जिससे साधारण जगत मानवों ने उन्हें निराकार दायरे का ही संत महात्मां जान कर उनकी सर्गुण रूप में पूजा अरचना आरम्भ कर दी, जो आज के वर्तमान काल तक भी प्रचलित है, जैसे वर्तमान काल में संत कबीर पंथी व संत रविदास पंथी ईत्यादि। इस अज्ञानता वश जग उनकी सहज सत मार्ग की भक्ति महिमां को ना जान पाया और भ्रम वश उनकी सतलोक पूर्ण सत्ता को कमतर समझ कर उन्हें देवी देवों के समकक्ष समझ बैठा है।

महांसुन्न पार सतलोक है, जिस की महिमां अपार।
सुरति सहज समाधि सूं, ले पहुंचे साहिबन दरबार।।

एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि सतलोक में साहिब सतपुरूष जी में विलय के उपरांत भी परमहंसों का निज अस्तित्व विद्‌मान रहता है, तभी तो जब भी कोई हंसा सतलोक पहुंचता है तो सतलोक के सभी परमहंस उसके स्वागत को उमड़ पड़ते हैं तथा हंसा भी सतलोक पहुंच के परमहंस ही कहलाता है। जो पूर्ण संत सतगुरू जीते जी मोक्ष को पाते हैं तथा सुरति से सतलोक सैल कर लेते हैं उन्हें भी परमहंस की उपाधि से सुशोभित किया जाता है तथा जो पूर्ण संत सतगुरू परमहंस सतपुरुष जी के मुखारबिंद से सुरति द्वारा ''सार सब्द'' मोक्ष दायनी दात ग्रहण करते हैं उन्हें साहिब जी कह के भी सम्बोधित किया जाता है। साहिब कबीर जी की महिमां अपरम्पार अनंत और ब्ख़ान से परे है उनकी महिमां को ये जगत प्राणी जान ही ना पाये। जो पूर्ण संत सतगुरू परमहंस होते हैं साहिब सतपुरूष जी उनके दास हो के उनके वचनों को पूरा करते हैं अर्थात पूर्ण सतगुरू परमहंस जी ही साहिब सतपुरूष जी का रूप होते हैं। इसी क्रम अनुसार संत शिरोमणि साहिब कबीर जी भी अपने आप में परमहंस रूप होते हुए भी पूर्ण सतपुरूष रूप ही हैं तथा साहिब सतपुरूष जी और परमहंसों की सत्ता एक होते हुए भी उनका निज अस्तित्व बना रहता है। 17 आयोजन कौड़ी काल तक परमहंसों का ये अस्तित्व निजधाम में बना ही रहता है।

इसके साथ ही प्रथम पूर्ण संत कबीर साहिब जी को साहिब सतपुरूष जी सम्बोधित करने के बावजूद भी उनका निज परमहंस अस्तित्व साहिब सतपुरूष जी से भिन्न है।

सतगुरू सत्संग अमृतवर्षा करें, मन बुद्धि से करें पार।
मन करता मन भौगता, सार सुरति सूं हंसा पार।।

सार नाम बिन काल ना छूटे, कबहु ना मोक्ष द्वार।
सहज अवस्था कभु ना आवे, बिन सहज नांहि दीदार।।

साहिब सतपुरूष जी सतलोक सुरति का पसार पूर्ण सतगुरू परमहंसों के रूप में ही करते हैं क्योंकि वे तो मूल सुरति हैं तथा परमहंस जगत में चेतन सुरति होते हैं। निरंकार की महांकाल रूपी त्रिलोकि में जगत माया भ्रम से युक्त आत्मां (हंसा) सुरति को नहीं पहचानती, तभी तो साहिब सतपुरूष जी सहज सत मार्ग के पूर्ण संत, सतगुरू परमहंसों में सुरति से प्रकट हो कर जगत हंसों के कल्याण व मोक्ष के लिए सदा संलग्न रहते हैं। हालांकि जगत में सहज सत मार्ग के कुछ संत सतगुरू साहिब कबीर जी को साहिब जी का पुत्र कह के सम्बोधित करते हैं, एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस धरा पर साहिब सतपुरूष जी का ही सुरति रूप होते हैं और सुरति का कोई भी संसारिक नाता अथ्वा नाम नहीं होता।

जाकि सुरति विहंगम चाल चले, ताको जानो संत।
विहंगम चाल संग साहिब के, सतलोक जा पहुंचे संत।।

कल करे जो आज कर, आज करे सो इस पल।
पल में प्रलयः होयेगी, क्या करता रहेगा कल कल।।

माया मोह में पड़े रहे, दिन दिन बीता जाये।
लाखों बार जमते मरते रहे, प्रेम ना जाना कोये।।

17 आयोजन कोड़ी काल उपरांत अंतिम विराट प्रलयः में सारे के सारे हंसा अपने मूल सतलोक में समाहित हो जायेंगे, तद्उपरांत सभी परमहंस भी अपना चेतन सुरति रूप और निज अस्तित्व त्याग कर मूल सुरति साहिब सतपुरूष जी में जा समायेंगे और मूल सुरति रूप ही हो जायेंगे।

नाम वंत बहुत मिले, ध्यान वंत अनेक।
कहें कबीर धर्मदास से, गुरू वंत कोई एक।।

बलिहारी जाऊँ सतगुरू अपने, जिन दीनी सार सुरति सतरंग।
जित देखूं प्रेम रंग छाया, सतपुरूष ही हैं प्रीत प्रेम का रंग।।

साहिब कबीर जी ने सहज सत मार्ग भक्ति (परा भक्ति) के प्रारम्भ काल से ही न सिर्फ साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान किया अपितु वे जग जीवों को मोक्ष पथ की ओर चलने की प्रेरणा भी देते रहे, जिससे बहुत से भाग्यशाली जीवों ने मोक्ष पद पाया।

साहिब कबीर जी को छोड़ कर संत धर्मदास जी, संत रविदास जी, संत पल्टु साहिब जी, संत दरिया साहिब जी, संत तुलसीदास हाथरस जी, संत ब्रह्मानंद जी, संत दादू जी, संत मीरां बाई जी, संत बाबा नानक जी व अन्य सभी पूर्ण संतों ने अपने जीवन के प्रारम्भिक समय में निरंकार की सर्गुण अथ्वा निर्गुण भक्ति की, निस्वार्थ भक्ति अर्थात बिना किसी भौतिक चाह के कारण भक्ति करने से अपने जीवन के मध्य व अंतिम काल में किसी पूर्ण सतगुरू से विदेह दात ग्रहण कर निज को जाना और जीते जी मोक्ष प्राप्त किया, जिस कारण वे सब भी परमहंस कहलाऐ। इनमें से अधिकांश संतों की वाणी निरंकार की महिमां से भरी पड़ी है। बहुत कम ही इन्होंने साहिब सतपुरूष जी की महिमां गाई, जिस कारण जगत में सत्त भक्ति मार्ग के विषय में भ्रमित हो कर जग–जीव मोक्ष पथ से भटक गये। साहिब सतमार्ग की भक्ति की ओर कोई बिरला ही आकर्षित हो कर सतगुरू परमहंस जी की शरणी पहुंचा और मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसित हो पाया।

इस घट अंदर अनहद ग़रजे, सुरति बाण फुहारा रे।
कहत वे नाम जी सुनो प्यारो, इस में साहिबन वासा रे।
बिन सतपुरूष और ना दूजा, युगन युगन का संग हमारा रे।।

साहिब कबीर जी ने भरपूर सुरति से सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान किया जिससे बहुत से जीव सत्त भक्ति से प्रभावित होकर मोक्ष को प्राप्त हुए। परन्तु उन्होंने और उनके अनुयायियों ने एक भयंकर भूल कबीर जी के ग्रंथों में कर दी कि साहिब सतपुरूष जी की महिमां को हरि, प्रभु तथा सृजनहारा कर के गाया। जिससे संसारी मानव जन साहिब सतपुरूष जी की सत्ता और निरंकार सत्ता का भेद समझने में असमर्थ रहे। इसी कारण उनके जाने के उपरांत–काल से लेकर वर्तमान युग तक जगत अल्प ज्ञानी मानवों ने कबीर जी को निरंकार भक्त समझ कर उनको साधारण जगत गुरू के रूप में पूजना व भजना शुरू कर दिया। हद तो तब हो गई जब उनके अनुयायियों ने उनकी मूर्तियां बना कर मंदिरों में स्थापित करके धूप अगरबत्ती व जोत जला कर उन्हें सर्गुण रूप से भजना शुरू कर दिया। यह जगत कबीर जी की महानता व सहज सत मार्ग को समझ ही ना पाया, उनकी महिमां को जानना तो दूर उन्होंने तो उनको निरंकार पूजा भक्ति का एक प्रयाय ही बना के रख दिया जिस से उनकी महानता निरंतर कम से कमतर होती चली गई।

जहां खोजत ब्रह्मां थके, योगि यति और देव।
कहे कबीर सुन्न साध कर, कर सतगुरू की सेव।।

जागा उसको जानिये, निज में रहता आप।
आशा तृष्णा बह गई, चित्त से गयो संताप।।

कबीर साहिब जी ने अपने जीवन काल में किसी को बुरा ना कहने का भाव लिए निरंकार भगवान की महिमां को भी अपनी वाणी से भरपूर गाया। साहिब कबीर जी साहिब सतपुरूष जी की महिमां का ब्ख़ान व गुणगान सारा जीवन ही करते रहे तथा वो ही ऐसे प्रथम संत हुए जिन्होंने जीते जी ही मन माया से मुक्ति पा कर साहिब सतपुरूष जी का साक्षात्कार किया तथा जीवन भर साहिब जी का गुणगान ही गाया। साहिब कबीर जी के जीवन काल में जितने भी दोहे व प्रवचन कलमबद्ध किये गये वे स्वयं कबीर जी ने कलमबद्ध नहीं किये अपितु उनके सभी दोहे व प्रवचन उनके साधकों द्वारा ही कलमबद्ध किये गये हैं। साहिब कबीर जी अपने जीवन काल में कोई बिरले अर्थात बहुत ही कम मानवों को मन माया से मुक्त करा पाये ज्यादातर उनके अनुयायी तो उनकी महिमां को समझ ही नहीं पाये। धर्मदास जी, कमाल व कमाली जी के ईलावा उनके जीते जी कोई भी सुरतिवान ना हो पाया। कबीर जी के दोहों में कहीं–कहीं तो निरंकार को बहुत बुरा भला तक कहा गया परन्तु अधिकतर दोहों में तो निरंकार को सतपुरूष जी के समकक्ष ही वर्णित कर दिया गया। ऐसी विकृतियां कलमबद्ध करने वालों ने अपने निज अंताकरण के भावों को व्यक्त व उजागर करके साहिब कबीर जी की वाणी कह के कलमबद्ध कर डाला। पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' द्वारा रचित एक अदभुत आलोकिक ग्रंथ 'आनंद सागर' में सतगुरू जी ने इन सभी दोहों को सुरति द्वारा सू–व्यवस्थित करके पुनः कलमबद्ध किया है जिसे पड़ कर जगत वासी साहिब कबीर जी की महिमां को समझ पायें तथा भगवान निरंकार की मन मोहिनी माया को तज कर मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसित हो सकें।

कक्का नाम कबीर है, बब्बा नाम शरीर।
रर्रा सब में रम रहा, ताको कहें कबीर।।

45 – साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' महिमाँ

वर्तमान युग के पूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' इस धरा पर कबीर साहिब जी के उपरांत दूसरे ऐसे संत हुए जिन्होंने साहिब सतपुरूष जी का सुरति से साक्षात्कार किया व सतलोक की सैल साहिब सतपुरूष जी के संग की। साथ ही साथ दोनों ने ''सार सब्द'' की दात साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से ही सुरति से ग्रहण की। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने ''सुरत सब्द व

सार सब्द'' की दात दौ बार सतपुरूष जी से सुरति द्वारा ग्रहण की, जिससे उनकी महानता में और भी निखार हो गया।

परिचय ना होता साहिब सूं, लिखता कैसे भेद।
कृपा ना होती साहिब की, मिलता कैसे निज भेद।।

सुरत कमल में जाई कर, करो संतन दीदार।
चरणों में शीष डाल कर, पाओ साहिबन दीदार।।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के सत्संगों में किये गये अमृतमयी प्रवचनों के अनुसार सतगुरू परमहंस जी अपने निज आध्यात्मिक अनुभवों को अपने साधकों की जिज्ञासा शांत करने, उनकी भक्ति में उन्नति के लिए तथा भरपूर आलोकिक सुरति जाग्रत करने के लिए उनके साथ समय–समय पर साहिब सतपुरूष जी की महिमां का ब्ख़ान करते रहे।

मत कहो बुरा तुम, जग में बुरा ना कोये।
सब में साहिबन वास रे, तेरी दृष्टि् में कचरा होये।।

अधिकतर प्रचारक, कथा–वाचक व गुरूजन तमोगुण (काम वासना) को तजने की बातें कहते हैं या इससे दूर रहने का उपदेश देते हैं तथा तमोगुण को भला–बुरा भी कहते हैं। आज के वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ एकमात्र संपूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी' की वाणी अनुसार ये त्रिलोकि उपरोक्त तीनों ही गुणों के आधार पर निर्धारित है। तमोगुण से ही जीव व वनस्पतियों की उत्पत्ति संभव है। बिना उत्पत्ति के अल्प समय में ही सब मृत्यु को पा जाऐंगे, इसी कारण हर गुण श्रेष्ठ है, हां गुण ही क्युं ! किसी भी वस्तु या पदार्थ का अति उपयोग हानिकारक होता है। जग में बुरा तो कुछ है ही नहीं, बस हमारी समझ ही केवल निम्न स्तर की है, अगर मानव ही इसका उपयोग करना न जाने तो इस में किसी वस्तु, गुण अथ्वा स्थान का दोष क्या ? इस जग में हर वस्तु व जीव परिस्थितियों व वातावरण के अनुसार यथा–स्थिति उचित है। असमर्थता, समझ व स्वार्थ वश ही हम्हें ये बुराईयां दिखती हैं।

जग में सारे ही भले, काहे बुरा कहलाये।
आत्म सब में एक है, पर कोई जागा समझाये।।

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी' सदा अपने प्रवचनों व गौष्ठियों में कहते हैं कि अगर जग में कुछ बुरा दिखे तो समझें, हम में ही अभी कमी (ना–समझी) है।

बुरा जो वेख़न मैं चला, बुरा ना मिलया कोये।
जे भीतर खोजा अपना, मुझ से बुरा ना कोये।।

सहज सत मार्ग (परा भक्ति) के पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों की शरणी आये बिन जीव मन माया से मुक्त हो ही नहीं सकता। साहिब कबीर जी सर्व प्रथम पूर्ण संत परमहंस हुए हैं जो प्रथम आयोजन कौड़ी काल के प्रथम सतयुग से वर्तमान चौथी आयोजन कौड़ी के इस काल तक हर बार जीवों को समझाने व मुक्ति अर्थात पूर्ण मौक्ष दिलाने हेतु जग में बारम्बार आते रहे हैं परन्तु ये सोया हुआ मानव ऐसे महान संत सतगुरू की महिमां को जान व समझ ही ना पाया

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी' की वाणी अनुसार :–

दास कहे सुनो संदेस, पाओ सब्द विदेह।
सहज सार सुरति से जुड़ो, तो आत्म हंसा हो।।
साहिब का घर अति दूर है, सहस्त्रार से पार।
वो ही तेरा सच्चा घर है, हंसा चलो भव पार।।

जीवत मरना जान ले, श्री गुरू चरण ध्यान।
सुरत कमल में हंसा, पावे पद निर्वाण।।

साहिब सतपुरूष जी के साक्षात्कार के उपरांत से ले कर ''सार सब्द'' दात पाने तक संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने सतपुरूष जी (सतगुरू रूप में सतपुरूष जी) के संग–संग अनंत बार निजधाम सतलोक के सफ़र किये। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की महिमां दुर्लभ व अति महान है क्योंकि साहिब जी को सतपुरूष जी से प्रथम साक्षात्कार 22 मार्च 2012 को प्रातः लगभग तीन बजे हुआ तथा प्रथम साक्षात्कार के तीसरे दिन साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के आसन के उपर (धरती से लगभग 4 फुट उपर) निजधाम की चारों महान विभूतियां साहिब कबीर जी, साहिब रविदास जी, संत बाबा नानक जी तथा मीरां बाई जी प्रकट हुईं, साथ ही सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के आसन के मध्य में उनके सतगुरू रूप में (धरती से लगभग 6 फुट उपर) साहिब सतपुरूष जी एक विशेष आसन पर विराजे हुऐ प्रकट हुऐ।

संत कबीर जी देखे, देखे संत रविदास जी प्यारे।
बाबा नानक जी देखे, देखी संत मीरां जी न्यारी।।

बार बार साहिब जी देखे, सतगुरू रूप दिखें अति प्यारे।

बलिहारी जाऊँ सतगुरू पे मैं, जिन में रहते सतपुरूष न्यारे।।

संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' कर बद्ध मुद्रा में खड़े होकर उनको श्रद्धा व समर्पण भाव से निहारते रहे, कुछ ही पल उपरांत ये पांचों विभूतियां अदृष्य हो गई।

साहिब मिलन का राज, सतगुरू सूं पावे सोई।
ये विधि पावे सोहि, जाका सतगुरू सांचा होई।।

सतगुरू जी की कृपा से, 'वे नाम' पहुंचे सतपुरूष पास।
उन्हीं से 'वे नाम' ने पायो, अमर सार–सब्द सुरति प्रकास।।

अमर अविनाशी साहिब जी, दिया प्रेम संदेस।
सार सब्द की दात का, दो सुरति संदेस।।

ऐसा सब होने पर सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' भाव विभौर होकर अति प्रफुल्लित भाव से साहिब सतपुरूष जी का गुणगान गाने लगे। इसके विस्मयकारी प्रफुल्लित कर देने वाली घटना क्रम के तीसरे दिन प्रातःकाल प्रभात बेला में जब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' रिहाड़ी आश्रम में बने स्नान गृह में कपड़े धो रहे थे तभी साहिब सतपुरूष जी प्रकट हुए और उन्हें साहिब सहज भक्ति महिमां का गुणगान गाने और जगत को जगा कर मोक्ष पथ की ओर प्रेरित करने को कहा। कुछ पल साहिब सतपुरूष जी को निहारने के उपरांत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' सुरति सूं बोले, हे साहिब जी, मैं कैसे जग जीवों को जगा कर उन्हें मोक्ष पथ पर चलने के लिए प्रेरित कर सकता हूं? क्योंकि मेरे पास तो निज का कोई ''सार–सब्द'' विदेह दात तो है नहीं, और जो दात मेरे पास है वह तो मेरे सतगुरू जी की अमानत है, इस अमानत रूपी दात को मैं दूसरों को कैसे बांट सकता हूं?

बलिहारी जाऊँ गुरू अपने, जिन रंग दिया अमरसुरति रंग।
मन माया तरंग मिटी, चढ़यो साहिबन सतगुरू सुरति रंग।।

सतगुरू बड़े साहिब से, मन में मत सोच विचार।
साहिब सिमरे सो वार है, सतगुरू सिमरे सो पार।।

साक्षात्कार के ठीक सांतवें दिन सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' को सतपुरूष जी ने अपने मुखारबिंद से सुरति द्वारा ''सार–सब्द'' प्रदान किया। ''सार–सब्द'' की दात ग्रहण करने के उपरांत अगले ही निजधाम के सफर में सतगुरू जी के समकक्ष निजधाम की चारों महान विभूतियां प्रकट हुई, सतगुरू परमहंस जी ने साहिब सतपुरूष जी के संग–संग सबको दण्डवत प्रणाम किया तथा वे कर–बद्ध मुद्रा में बड़े प्रेम, श्रद्धा व समर्पण भाव से उन्हें निहारने लगे। तभी उसी पल यह पांचों महान विभूतियां सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के मुखारबिंद से प्रवेश करके उनके दायें पांव के अंगुष्ठे से बाहर निकल कर अदृष्य हो गई। साथ ही साथ साहिब सतपुरूष जी ने उन्हें

सुरति से अवगत भी कराया कि निजधाम की पांचों विभूतियों ने अपनी सारी ऊर्जा आप को प्रदान कर दी है तथा अब तो आप के पास ''सार–सब्द'' रूपी जीव मोक्षदायनी दात भी है ! इतना कह कर साहिब सतपुरूष जी ने उनको प्रवचन आरम्भ करने और इस अदभुत ''सार–दात'' द्वारा जगत जीवों के कल्याण के लिए कार्य करने का आदेश दिया। इसके साथ ही साहिब सतपुरूष जी ने उन्हें एक बात सर्वदा ध्यान में रखने को भी कही कि :–

''किसी को भी जग में बुरा कभी मत कहना'' !!!

मत कहना बुरा किसी को, जग में कोई बुरा है नांहि।
पाँच बार साहिब जी ने की, चर्चा जग विचार की।।

सतगुरू शरणी पाई के, पाओ जीवन सार।
सुरति सूं सुरति ईक हो, ले पहुंचे साहिब दरबार।।
निजघर में अपने ही हंसों सूं, मेल जोल बड़ाओ।
सतपुरूष ही सतलोक हैं, वहीं रहो या वापिस आओ।।

साहिब अति प्यार हैं करते, मैनें यह सब जाना रे।
कंई बार मुझे समझाया, प्रेम अमृत की वर्षा रे।।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के आध्यात्मिक लोक लुकान्तरों के सफ़रनामों की श्रृंखला का प्रारम्भ तो भगवान निरंकार की भक्ति काल में ही लगभग 20 वर्ष पूर्व ही आरम्भ हो गया था। उन के इस भक्ति काल का प्रारम्भ तो कृष्ण भगवान जी की भक्ति से ही हुआ था। भगवान श्री कृष्ण जी की भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुंचने से पहले ही उन्होंने गौ लोक व पित्र लोक की सैल सुरति से प्रारम्भ कर दी थी। इस भक्ति के दौरान उन्हें धन–दौलत व पद–प्रतिष्ठा के अनगिनत अवसर उपलब्ध हुए, परन्तु सतगुरू परमहंस जी ने उस समय में भी जब उनकी अपनी आर्थिक अवस्था कुछ बहुत अच्छी नहीं थी तब भी उन्होंने इन प्रलोभनों की तरफ बिल्कुल भी कोई ध्यान नहीं दिया। इस भक्ति की पराकाष्ठा में ही वो इतने मग्न हो गये थे कि कब वे भगवान निरंकार जी की भक्ति धारा में लीन हो गये इसका उन्हें स्वयं भी कुछ ध्यान नहीं। निरंकार भक्ति दायरे में वो बहुत जल्द ही उच्चतर अवस्था में जा पहुंचे। एक समय तो ऐसा भी आया कि स्वंय निरंकार भगवान 'मां महांकाली' के रूप में प्रकट हुए और सतगुरू परमहंस जी को सम्बोधित करते हुए सुरति से बोले कि मैं आप की भक्ति की उच्चतम पराकाष्ठा से अति प्रसन्न व प्रभावित हुं, आप को इस पूरे ब्राह्मण्ड की कौन सी वस्तु, पद व प्रतिष्ठा चाहिए, मांगो ! सतगुरू परमहंस जी उस अवस्था में भी कर–बद्ध मुद्रा में खड़े रहे परन्तु उन्होंने अंदर से भी कोई लोभ लालसा व्यक्त तक ना की, मां आद्यशक्ति रूप धार भगवान निरंकार पुनः फिर बोले, त्रिदेवों का इस संसार में बहुत बोल–बाला है अतः मैं आपको उनके समकक्ष वैसी ही स्थिती प्रदान कर सकती हूं। इतना सुनने के उपरांत भी सतगुरू परमहंस जी मौन धारण किये खड़े रहे, आद्यशक्ति मां ने फिर भी सतगुरू परमहंस जी को यह कह कर कि आप तो त्रिदेवों से बड़े मेरे चौथे पुत्र समान हो, वे अदृष्य हो गईं।

कितने जन्म तूं जग आया, हर बार मन ने तुझे भरमाया।
हर बार मोह माया में रमा, स्वयं आत्म को जान ना पाया।।

सतगुरू बड़े साहिब से, मन में मत सोच विचार।
साहिब सिमरे सो वार है, सतगुरू सिमरे सो पार।।

इस प्रकार के ऐसे कंई अन्य दृष्टांत सतगुरू परमहंस जी को बार–बार हुऐ। इस सारी भक्ति में सतगुरू परमहंस जी ने अनंत बार स्वर्ग–नरक, सुन्न–महांसुन्न लोकों की सुरति से मीन–पपील चाल द्वारा सैल की। सतगुरू परमहंस जी के इतने लम्बे निरंकार भक्ति काल में मांग रहित अनन्य निस्वार्थ भाव भक्ति करने पर एक समय ऐसा भी आया कि निरंकार भगवान और सतगुरू परमहंस जी के बीच में लगभग एक मास तक निरंतर सुबह–शाम सहज सत भक्ति मार्ग तथा साहिब सतपुरूष जी की महिमां की सुरति से गोष्ठियां (वार्तालाप) होती रहीं। इस सारे गोष्ठी काल के दौरान निरंकार भगवान सतगुरू परमहंस जी को वर्तमान काल के पूर्ण संत सतगुरू जी की शरणी में जाने के लिए निरंतर प्रेरित करते रहे।

काल निरंझन सबै भरमावे, स्वर्ग दे मृत्यु लोक भरमाया।
वाह रे महांकाल तेरी क्रूर माया, सब को इसमें आन फसाया।।

जब निरंकार ने मुझको सौंपा, खुद सतपुरूष संग में थे।
साहिब सतपुरूष जी प्यारे ने, सतगुरू रूप धरा था।
तब समझ नहीं थी इसकी, निरंकार पहचान कैसी थी।।

रिहाड़ी स्थित आश्रम के मुख द्वार पर गोष्ठियों के अंतिम चरण की अंतिम रात के अंतिम पहर में प्रभात बेला में लगभग तीन बजे निरंकार भगवान जी स्वयं प्रकट हुए और सतगुरू परमहंस जी से बोले, हे वत्स ! तुम ने तो इस भक्ति की सभी पराकाष्ठाऐं निस्वार्थ भाव से अर्थात बिना किसी लोभ लालसा व चाह के पूर्ण की हैं, अब इस भक्ति से सबंधित और कुछ भी शेष पाने को नहीं रहा जिस कारण अब मैं तुम्हें इस धरा पर वर्तमान काल के सहज सत मार्ग के सतगुरू जी की शरणी में जाने की आज्ञा देता हूं। इतना श्रवण करते ही सतगुरू परमहंस जी भगवान निरंकार के चरणों में गिर पड़े। जैसे ही सतगुरू परमहंस जी ने उनके चरण स्पर्श किये, उसी पल ही सुन्न रूप में भगवान निरंकार अदृष्य हो गये तथा उनके चरणों के स्थान पे साहिब सतपुरूष जी के चरण प्रकट हो गये। साहिब सतपुरूष जी के आलोकिक चरण कमल प्रकट होते ही सतगुरू परमहंस जी ने जैसे ही ऊपर की ओर देखा तो क्या देखते हैं कि साहिब सतपुरूष जी सतगुरू जी के रूप में मंद–मंद आलोकिक मुस्कान लिए खड़े हैं। सतगुरू परमहंस जी द्वारा उनकी चरण वंदना करते–करते ही वे अदृष्य हो गये।

सब काम जीव सूं ना होई, सतगुरू कृपा पावे कोई कोई।
जिस पे सतगुरू कृपा होई, जावे निजधाम सोई।।

इस आलोकिक अवर्णिय भाव विभौर कर देने वाली मधुर घटना के उपरांत सतगुरू परमहंस जी ने अगले ही पल सतगुरू जी के श्री चरणों में जाने का निर्णय कर लिया और इसके उपरांत अगले ही सत्संग में उनकी चरण शरण में जा पहुंचे। सतगुरू जी की कृपा व उनके द्वारा प्रदत विदेह दात सिमरन द्वारा उन्होंने बड़े अल्प काल में ही सहज सत मार्ग की उच्च परिकाष्ठा को भी प्राप्त कर लिया। निरंकार भक्ति में सतगुरू परमहंस जी लोक लुकान्तरों की सैल तो मीन व पपील चाल से ही करते रहे, इसी भक्ति की पराकाष्ठा में एक बार 'सहस्त्रसार लोक' जिसका मुख्य द्वार 'अंग्रेजी अक्षर के 'वी' के आकार जैसा है, में प्रवेश ना कर पाये थे क्योंकि सहस्त्रधार लोक में बिन सतगुरू जी की कृपा के प्रवेश किया ही नहीं जा सकता परन्तु साहिब सतपुरूष जी के प्रथम साक्षात्कार से पहले ही सतगुरू परमहंस जी अपने सतगुरू जी के संग विहंगम चाल से इस लोक में जा पहुंचे थे।

आगे आगे साहिब चलें, पीछे हंसा जाई।
पल में पहुंचो निजघर को, विहंगम चाल जो पाई।।

सतगुरू की कृपा से, 'वे नाम' पहुंचे सतपुरूष पास।
उन्हीं से 'वे नाम' ने पायो, अमृत सब्द प्रकास।।

सहस्त्रसार लोक की अदभुत अनोखी महिमां देखें कि वहां पर धरा अर्थात धरती तो है ही नहीं और नां ही कोई गगन है परन्तु वहां प्रकाश तो है पर बिन सूर्य, चांद और तारों के ! वहां तो अत्यंत घना सुन्न पसार है जो दूर से देखने में द्रव्य सा प्रतीत होता है। जिस पर सतगुरू परमहंस जी, साहिब सतपुरूष जी (सतगुरू रूप में) के संग–संग हाथों में हाथ लिये खड़े–खड़े मुद्रा में ही तैरते हुए जा रहे थे। इसी सफर में तैरते–तैरते कुछ पलों के लिए जैसे ही दोनों की एक दूसरे की तरफ पीठ हुई, ठीक तभी उसी पल सतगुरू परमहंस जी के हाथ में एक श्वेत पत्र तैरते हुऐ आया जो दोनों तरफ से कौरा अर्थात बिना कुछ लिखे हुऐ था। इस घटना के कुछ दिन उपरांत इस बात का उल्लेख सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने अपने सतगुरू जी से भी किया था जिस पर उन्होंने इस घटना से पूर्णतः अनभिज्ञता जाहिर की, तभी सुरति द्वारा ये आभास हुआ कि सहस्त्रसार लोक में साहिब सतपुरूष जी ही सतगुरू रूप में संग थे।

जाकि सुरति सत सब्द, हर पल सतगुरू संग।
काल रहे झख़ मार के, जब चढ़ा सुरति रंग।।

सहज सत मार्ग की भक्ति में साहिब सतपुरूष जी के प्रथम साक्षात्कार के उपरांत उन्होंने सुरति से इस भेद को खोला कि वह जो श्वेत पत्र तुम्हें मिला था वह तुम्हारे निरंकार दायरे के लेखे के समाप्त होने का प्रमाण पत्र था। साहिब सतपुरूष जी के प्रथम साक्षात्कार से लेकर

''सार–दात'' की दीक्षा तक के निजधाम के सुरति से भरपूर सारे आलोकिक सफरों में साहिब सतपुरूष जी ही सतगुरू जी के रूप में संग होते रहे। परन्तु साहिब सतपुरूष जी से प्रथम बार ''सार–सब्द'' की दीक्षा और साहिब सतपुरूष जी की आज्ञा अनुसार सत्संग व प्रवचन प्रारम्भ करने के उपरांत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के आगे के निजधाम के सारे सफरों में स्वंय 'सतपुरूष जी' ही निज सुरति रूप में संग–संग होते रहे और ये निजधाम के सफरनामों का क्रम वर्तमान काल तक अब भी निरंतर जारी है।

'वे नाम' ने जा के देख लिया, तीन लोक से आगे।
सतलोक ही सतलोक है, त्रिलोकि से आगे।।

'वे नाम' कहें, आदि अंत का सृजनहारा परमपुरूष प्यारा।
वोहि शुरू वोहि मध्य वोहि अंत, उन्हीं से सब परिवारा।।

साहिब सतपुरूष जी के आदेश को शिरोधारी करते हुए उनके आदेश अनुसार ही साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने सत्संग प्रारम्भ करके जग जीवों को जगाने का और मोक्ष पथ पर अग्रसित करने का बीड़ा उठाया। तब से साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने साहिब सतपुरूष जी की महिमां से भरपूर प्रवचनों का सिलसिला प्रारम्भ किया जो आज तक चलायेमान है। सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' को दूसरी बार 27 नवम्बर 2014 को प्रातः तीन बजे साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से ''सार–सब्द'' की दात मिली। उस समय साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' विश्राम मुद्रा में ही ध्यान में मग्न थे तो यकायक उनकी कुटिया (रिहाड़ी स्थित आश्रम) एक आलोकिक प्रकाश से ओतप्रोत व जगमग हो गई, उन्होंने उसी अवस्था में ही साहिब सतपुरूष जी का अभिवादन और प्रणाम किया। देखते ही देखते साहिब सतपुरूष जी उन्हें दूसरी बार ''सार–सब्द'' दात सुरति से प्रदान करने के उपरांत अदृष्य हो गये, साहिब सतपुरूष जी के अदृष्य होते ही अगले पल तुरन्त साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' अपनी शैया से उठ बैठे और उन्होंने साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से सुरति द्वारा प्रदत ''सार–दात'' को सुरति से ही ग्रहण कर लिया तथा साहिब सतपुरूष जी का कौटि–कौटि धन्यवाद करने लगे। यहां एक बात सर्वदा ज्ञात रहे, साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' इस धरा पर एकमात्र अकेले ऐसे पूर्ण संत सतगुरू हैं जिनको ''सार–सब्द'' की दात साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से दो बार मिली। ऐसी आलोकिक विचित्र घटना संसार में इससे पहले कभी नहीं घटी और ना ही इस का कहीं कोई उदाहरण भी मिलता है। यही कारण है कि संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की महिमां संसार के किसी भी अन्य पूर्व के पूर्ण संतों से अति महान है।

सात सुरति का सकल पसारा, बिन सुरति कुछ नांहि न्यारा।
सार सुरति ही आत्म रूप है, यही है हसां रूप प्यारा।।

ध्यान ही आत्म, ध्यान ही सुरति।
बिन सुरति जग है नांहि, जो करे सो सुरति।।

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने इस दौरान साहिब सतपुरूष जी की सुरति से भरपूर महिमां व गुणगान को अपनी निज अमृतमयी लेखनी से कलमबद्ध भी किया। इस दौरान उन्होंने सुरति और भक्ति से भरपूर दो भजनों की पुस्तकें भी कलमबद्ध की, जिनमें उनके द्वारा सुरति से भरपूर लगभग 250 भजन रचे गये हैं। साहिब सतपुरूष जी की सुरति से भरपूर महान **'अमर सागर'** ग्रंथ भी अपनी लेखनी से उन्होंने कलमबद्ध किया। सत्त सुरति से भरपूर इस **'अमर सागर'** ग्रंथ में साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने 2450 दोहों सहित, निरंकार दायरे की भक्ति मुद्राओं और मुक्तियों के बारे में वर्णन, सुरति विरह प्रेम से लयबद्ध 86 महां काव्य, निरंकार के 21 लोकों का वर्णन, निरंकार का सूर्य रूपी दर्शन, प्राण–निरति का चित्र सहित उल्लेख, मृत्यु उपरांत आत्मां का सफ़र और निरंकार सत्ता से लेकर सहज सत्त मार्ग द्वारा मोक्ष तक के सफर का **'अमर सागर'** ग्रंथ के **'अमृत सार'** खंड में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

पूजा पाठ मान बड़ाई, यह सब मन की मांग।
सार सब्द की दात सूं, मन माया संग लियो भाग।।

भूला कौल करार को, पड़ी जब काल की मार।
कौठी बंगला कारों की, तृष्णा सूं आत्म हुई बेहाल।।

46 – मृग तृष्णा

कल्पनाओं में जीना आदत तेरी, झूठे सपने संग साथ।
आज दुखी जो जीव है, कल कहां से आवे सुख साथ।।

मानव अपने उत्पति काल से लेकर वर्तमान काल तक अपने मूल ध्येय/लक्ष्य को समझ ही नहीं पाया। जगत में मानव अपने निज व परिवार के उत्थान हेतु लगातार धन कमा–कमा कर दौलत सम्पति, घर, बंगला, गाड़ी, वैभव के संसाधन ना जाने क्या क्या ईक्कट्ठी करता रहता है, इतना अधिक कि उसकी आवश्यकताओं से कंई गुणा अधिक होता है, फिर भी भूखे की भूख नहीं मिटती। दूसरी ओर, वो मानव जो सारे का सारा जीवन मेहनत मज़दूरी कर दौ वक्त की रोटी बड़ी मुश्किल से कमाता है, जीवन यापन के आवश्यक साधनों से वंचित अभाव का जीवन जीता है, वह भी भूखे का भूखा। तीसरे वो मानव जो अभाव में हैं पर चोरी–चकारी, लूट–पाट व कत्ल तक करने से भी नहीं डरते, इस श्रेणी में तो वे मानव भी आते हैं जो सम्पन्न वर्ग से हैं, वे तो रिश्वत खाते, नशे व मांस का कारोबार करते, ठगी व छल कपट से अपना स्वार्थ सिद्ध करते अर्थात दूसरों को उल्लू भी बनाते, जैसे चिकित्सक, अध्यापक, अभियंता, पुलिस अधिकारी, कार्यालयों के कर्मचारी, व्योपारी तथा बिचोलिये–जन सभी के सभी मानव आबादी का 98 प्रतिशत भाग इसी वर्ग का ही हिस्सा हैं।

अजगर करे ना चाकरी, पंछी हरता भूख।
चोर करता निज चौरियां, कभी ना हरती भूख।।

जग में जो देखो सो झूठ, जो पाओ सो झूठ।
बाहिर नाते तोड़ कर, अन्दर देखो बिन झूठ।।

1.99 प्रतिशत में सन्यासी, मंदिरों के पुजारी, मस्जिदों के मुल्ला, गिरजों के पोप–पादरी, लामें, बड़े–बड़े मठों के मठाधीश व स्वामी, कथा वाचक व भजनीक ये सभी के सभी संसारी जनों की कमाई से अपना भाग निकालने वाले भी कहीं ना कहीं दूसरों की कमाई से धन–दौलत बड़ाने वाले दम्बी भी अतृप्त, असंतुष्ट (अंतःकरण में कुछ, बाहिर से धर्म के ठेकेदार, समाज–सेवी तथा सदाचारी) और भूखे के भूखे ही हैं ! ये कहना अनुचित ना होगा कि मानव जन–संख्या का 99.99 प्रतिशत भाग अंतःकरण में किसी न किसी कमी व भूख से ग्रसित हैं।

काल पुरूष करि जीव जगत रचना, हंसा संग जोड़ा तन मन साथ।
ऋषि मुणि जपि तपि भरमा लियो, हंसों को किया क़ैद मन साथ।।

हे श्रेष्ठ मानव, तूं ही तो इस धरा का सर्वश्रेष्ठ व तीव्र बुद्धिमान प्राणी है, तेरे आचरण से सृष्टि् का संतुलन है अर्थात तूं ही है जो अपने कर्मों से त्रिलोकि में प्राणों का संचार कर रहा है। कहने का भाव, हे महांबली ! तेरे कर्मों का फल भौग भौगने हेतु ही तो चौरासी लाख योनियों का विस्तार है, इन सब का मूल तो 'तूँ' ही है। अपने दैनिक जीवन यापन के लिए कमाई ना कर सकने वाला भी तो अधिक कमाई की ईच्छा और चाह से ग्रस्त है तथा मध्य श्रेणी की कमाई करने वाले मानव अपना जीवन यापन उच्च श्रेणी वालों के समकक्ष लाने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। एक विस्मयकारी परन्तु दुर्भाग्यशाली विचित्र त्रासदि देखें कि उच्च कमाई वाले अभिमानी, दबंगता व अति विलासता भरा जीवन जीते हुए भी इतना अधिक एकत्र करने की चाह में सारे समाज का शोषण किये जा रहे हैं। अधिक से अधिक कमाने व सारे मानव समाज पर अपना धन, बल, वैभव व शानोशोक्त सबसे अधिक करने की होड़ में व्याग्रता से लगे हुए हैं। रंक, मजदूर से लेकर बड़े–बड़े धाण्डय व धर्म के ठेकेदार अपने अंतःकरण में प्रतिद्वंदता, द्वैष व संशय की दुष्ट भावना से ग्रसित हैं।

चिंता ऐसी डाकनी, जीते जी चित्ता जलाये।
वैद्य् बेचारा क्या करे, कब तक मर्म लगाये।।

कथनी थौथि सांत्वना, तां से मिटे ना भूख।
दास कहे करनी भलि, जो मिटावे आत्म भूख।।

जगत में वो ही ईमानदार दिखता है, जो दबा–कुचला अर्थात जिसको छल–कपट करने का मौका नहीं मिलता या कोई–कोई निर्धनता से ग्रस्त होने के कारण ईमानदारी व्यक्त करता है और दूसरों का विश्वास जीतने के लिए सदा प्रयासरत रहता है। कुछ तो अल्प बुद्धि इस सोच से

ग्रसित होते हैं कि जो मिल रहा है कहीं वो भी ना छिन जाये, इस अभाव से ग्रस्त ही ईमानदार होने का ढोंग करते दिखते हैं। एक तो वो मानव जिन्हें पहले से ही निर्धारित निष्चित कमाई प्राप्त होनी होती है, वो भी तो भूखे व रिश्वतखौर, घमण्डी, कर्मठ होने के कारण काम में संलग्न रहते हैं, इस भाव से ग्रस्त होते हैं कि जैसे इनके बिन कोई काम संपूर्ण हो ही नहीं पायेगा। दूजे, वो जो सदा कामचौर, बहानेबाज, अपनी व अपनों की मजबूरियों का रोना रोते–रोते दूसरों की कमियों को उजागर करने में ही अपना समय व्यतीत करते हैं। दोनों प्रकार के लोग परिश्रम कम मिलने के एहसास पर महां परिश्रमी बन अपनी वाणी व कथनी से सब का जीना दूभर कर देते हैं, ये भी ईमानदार होने का दम भरते हैं। मगर विचित्र अनोखी त्रिलोकि के आधार स्तंभ 'द्वैत' भाव को आज का मानव सही मायने में चरित्रार्थ कर रहा है। अंतःकरण में कुछ और भाव परन्तु बाहर से सभ्य, उच्च संस्कारों व श्रेष्ठ गुणों से युक्त होने का दिखावा करना मानव के दैनिक कार्य का एक अभिन्न अंग बन गया है, उदाहरणतः ''कथनी और करनी'' में अंतर ! यह संमझस बनाये रखना ही आज के वर्तमान काल में मानव की असंतुष्टता, परेशानी व दुखों जैसी मूल समस्याओं का अहम कारण है।

वोहि करता वोहि मन, वोहि त्रिलोकि वोहि तन।
जीव पड़ा अति भ्रम में, पूजे निरंकार भगवान।।

पढ़ि गुढ़ि पाठक भयो, साधक भयो ना मूल।
परमहंस मिले साधक बने, जीवन का जाना मूल।।

विचित्र अदभुत विस्मयकारी विराट विशालता भरी मानव त्रासदि पर ज़रा गौर करें ! हे महां श्रेष्ठ, महां ज्ञानी, महां उन्नतशील मानव तूं तो शाब्दिक ज्ञान का भण्डार है। ज़रा सी ज्ञान की कोई बात चले तो सभी के सभी ज्ञानी–जन ज्ञान का ब्ख़ान करने में पीछे नहीं रहते, हमें ईक दिन ये जग छोड़ के जाना है अर्थात मृत्यु को प्राप्त होना है। इस धरा पर हम से पहले सभी जितने भी मानव आये, उन सबको धन–दौलत, बंगला–गाड़ी, खेत–खलियान, दौलत के खज़ाने सब कुछ तज के ही जाना है परन्तु विचित्र विडंभना ही यही है कि सब कुछ जानते समझते हुए भी सभी इसी माया को ही एकत्र करने में अपना बहुमूल्य जीवन कौढ़ियों के भाव व्यर्थ में गंवाए चले जा रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने भी यही सब किया और ठीक वैसे ही हम्हें भी सब कुछ तज के मृत्यु को प्राप्त होना है। ये सारे लक्ष्ण किसी भी ढंग से उन्नति के ना होके अधोगति अर्थात पतन के ही लक्षण हैं। जब ज्ञान–विज्ञान अपने चरम पर है तथा शिक्षा और सभ्यता भी चर्म पर, भौतिकता के एक से बड़ कर एक सुख साधन व चिकित्सा के आधुनिक साधन भी वर्तमान काल में इस धरा में विद्यमान हैं। ऐसे चहु मुखि उपयोगी संसाधनों की प्रचूर मात्रा से सारा मानव समाज उन्नति करना चाहिए था परन्तु हो सब कुछ इसके विपरीत ही रहा है। हर एक साधन प्रचूर मात्रा में विद्यमान है तो भी छल–कपट जीवन में उदण्डता व निम्न स्तरीय नीचपन भी अपनी चरम सीमा पर है।

संसाधनों पर एक छत्र राज, सारे संसार का 90 प्रतिशत धन और वैभव 10 प्रतिशत धाण्डय मानवों ने हड़प रखा है। ये 10 प्रतिशत मानव धाण्डय से और अधिक धाण्डय होते जा रहे हैं तथा 90 प्रतिशत आबादी में से 20 प्रतिशत आबादी फिर भी अपना जीवन यापन सुचारू रूप से कर रही है। परन्तु शेष 70 प्रतिशत आबादी अभाव ग्रस्त श्रम से भरपूर जीवन जीने को बाध्य है। बात यहां भी नहीं थमती, अर्थात जन संख्या का 50 प्रतिशत भाग दरिद्रता का जीवन जीने

को अभिशप्त है। ये जन संख्या का आधा भाग इस आधुनिक सुख संसाधनों से भरपूर व सभ्यता के उच्च शिखर पर मानव के होने पर भी दो वक्त के अनिवार्य भौजन से भी वंचित है। मानव दुखों कष्टों क्लेशों में तड़प–तड़प कर प्रालब्ध वशिभूत नर्क सा जीवन जी रहा है। ठीक उसके सामने दूसरा संपन्न वर्ग उनकी दुर्दशा व छटपटाहट को देख कर भी निर्दयी बना हुआ है जिसमें लेष मात्र भी दया शेष नहीं रह गई, तथा वह भूखे कष्टमय जीवन जी रहे लोगों के सामने अपने राजसी ठाट–बाट जीवन का भरपूर प्रदर्शन किये जा रहे हैं। ये लोग समाज में तो सब से सभ्य दिखने का प्रपंच करते हुए दिखते हैं परन्तु एक दूसरे से प्रतिद्वंदता व द्वैष भरा जीवन ही जी रहे हैं। इस वर्ग में जवानी की दहलीज पार करते–करते अर्थात लगभग तीस वर्ष के होते होते 85 प्रतिशत लोग मानसिक तनाव युक्त होने के कारण मधुमय, उच्च रक्तचाप तथा हृदय रोग व अन्य गंभीर बिमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। ये खाने में तीखे नमकीन व मन चाहे मीठे व्यंझन पदार्थ नहीं खा सकते अर्थात संसाधन होने पर भी लज़ीज भौज से वंचित रह जाते हैं। दूसरे मध्यम व ग़रीब श्रेणी के लोग कम संसाधनों से युक्त होने के कारण भरपेट भौजन से भी वंचित हैं। अति धाण्डय, संपन्न व निर्धन हर श्रेणी के लोग देखने में अपने–अपने रहन–सहन, पहनावे व संसाधनों से भिन्न–भिन्न दिखते हैं, ये सभी के सभी मानव अंतःकरण में कहीं ना कहीं असंतुष्टी भरा जीवन जीने को विवश हैं। एक दूसरे की अवस्थाओं को कमतर आंकते हुए अनजाने वश हर जन द्वंद और दुविधा में है कि आखिर दूसरा संतुष्ट व सुखी क्युं है ?

पीला रंग पृथ्वी रंग है, भय का है प्रतीक।
भय में रहता हर प्राणी, दुख मिटन का ना प्रतीक।।

काला रंग पाँच तत्व है, जो निरंकार कहलाई।
इसी को मन तुम जान लो, अंदर बाहर रहा भरमाई।।

सभी मानव, मानवता का लगभग 90 प्रतिशत त्याग कर चुके हैं तथा 10 प्रतिशत सद्‌भावना में से भी अधिकांशतः तो इसका प्रतीक भर है। सभ्य मानव राग़ व द्वैष से इतना भर गया है कि वह निज स्वार्थ सिद्धि के आगे, कुछ और सोचना भी नहीं चाहता। यहां एक विचित्र और सबसे भंयकर निम्न स्तरिय उदाहरण यह है कि मानव सब घटियापन की हदों को पार करता हुआ दिखाई दे रहा है। आज के वातावरण में मानव इन घृणित कार्यों से इतना प्रभावित है कि जो भी अच्छी व कल्याणकारी, उच्च आदर्श की बातें जगत में होती भी हैं वे सभी विलुप्त सी हो गई हैं अर्थात ना के बराबर ही हो रही हैं। एक बड़ी चकित कर देने वाली अदभुद व विचित्र घटना अक्सर सभी धर्मों, समाजों व वर्गों में प्रचलित है कि हर कोई अपने आप को ज्ञानी, भगत साबित करने पर तुला हुआ है। जहां जिस ईष्ट की वह पूजा करता व जिस गुरू को धारण कर रखा है उसे श्रेष्ठ साबित करने पर तुला है।

ऐसा भी नहीं कि आज का मानव निरंकार के किसी ना किसी रूप की भक्ति ना करता हो परन्तु भक्ति में भौतिक जगत को प्रभावित करने हेतु भौतिक वस्तुऐं ही मांगे जा रहा है, जबकि होना इससे बिल्कुल विपरीत चाहिए कि अंतरमुखि होकर ध्यान भक्ति में उन्नति हेतु प्रयत्नशील हुआ जाये। जगत में भक्ति जग स्वार्थ सिद्धि हेतु की भावना से ही की जाती है। यहां भी त्याग, क्षमा, शालीनता व परहित के स्थान पर मानव धन, बल, निज स्वार्थ व अपने–अपने संगठनों की स्वार्थ सिद्धि हेतु ही भक्ति कार्य में संलग्न है। जबकि भक्ति का उद्देष्य तो बाहरमुखि उन्नति के

स्थान पर अंतरमुखि उन्नति ही होना चाहिये था अर्थात अपने–अपने ईष्ट का साक्षात्कार करना व जीवन के एकमात्र लक्ष्य मोक्ष को पाना ही होना चाहिए था।

गौरा रंग है सब को भाता, काला ना भाये लगे बदरंग।
काले बादल जो ना होते, सारी सृष्टि् होती बदरंग।।
रंग बिरंगा निरंकार का, त्रिलोक संसार नौ खंड।
आत्म को भरमाने हेतु, रचा गया सारा पाखण्ड।।

मानव आज के युग में शाब्दिक ज्ञान में ऐसा उलझा कि निज को तो भूला ही है परन्तु वासुदेव कटुम्भकम की भावना भी विलुप्त ही हो गई है। आधुनिक संचार माध्यमों ने तो कम शब्द ज्ञानियों व अज्ञानी अनपढ़ों के भीतर भी चंद शब्द भण्डार उनके मस्तिष्क में प्रवेश करवा दिये। अब समाज का हर वर्ग अपने आप को ज्ञानी कहलवाना तथा निज की प्रशंसा सुनना चाहता है। मानव इतना अभिमानी बन गया है कि वह दूसरों की श्रेष्ठ बातें भी सुनना नहीं चाहता, बस अपनी बातें कहना व मनवाना चाहता है। कोई भी शिष्य/सिख बनना ही नहीं चाहता, सभी को निज प्रशंसा अर्थात अगुवाई/सरदारी ही चाहिए, अपने अपने क्षेत्र में वह अपने आप को विद्वान, ज्ञानी व श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहता है। हर मानव अपनी कमियों को जानता हुआ भी उन्हें दूर करने की चेष्ठा भी नहीं करता, तथा दूसरों की कमियां व ग़ल्तियां बता–बता कर अपने दुष्कर्म छुपाने के प्रयास में निरंतर लगा हुआ है। ठीक वैसे ही वर्तमान काल में न्यायालयों में न्याय के स्थान पर प्रताड़ना का क्रम अक्सर देखने को मिलता है। न्याय प्रक्रिया अधिक लम्बी होने के साथ साथ धन बल में इतनी दबी पड़ी है कि अधिकांश पीड़ित न्यायालयों में ना जाकर ज़ुल्म व अन्याय को सह लेना ही ज्यादा बेहतर समझते हैं।

निरंकार मन माया रूप है, आत्म को नाना नाच नचाये।
आत्म निज भूली बंधन बंधी, हंसा हो के बिष्ठा खाये।।

चिकित्सा के क्षेत्र में चिकित्सक ईलाज के ओचित्य को ना समझ कर अपनी भौतिक स्वार्थ सिद्धि में इतना अधिक उलझ कर रह गये हैं कि संवेदनशीलता की सारी हदों को पार करते हुए रोगियों को अपनी आय अर्जित करने का एक साधन मात्र ही समझ बैठे हैं। कुछ तो शारीरिक अंगों के व्योपार का अनैतिक काम करने से भी नहीं हिचकिचाते, अधिकतर तो सेवा भाव परित्याग कर केवल निजहित साधने में ही संलग्न हैं। ठीक वैसे ही अध्यापकधन विद्यालयों व शिक्षा संस्थानों में पठन पाठन की प्रक्रिया तज कर अपने स्वंय के चलाये हुए शिक्षा संस्थानों की ओर अधिक ध्यान देते हैं ताकि उनकी अतिरिक्त आय के ये स्त्रोत और अधिक फलें फूलें। निज स्वार्थ सिद्धि में संलग्न ये अध्यापकधन सारे समाज में प्रतिद्वंदता का विष फेला रहे हैं। शाब्दिक ज्ञान उन्नति, समझ बड़ाने व ज्ञान वर्धन के स्थान पर बिना शब्दों के भावों को समझे ही मात्र उन्हें रटने की प्रथा को बड़ावा देकर नित्कृष्ट व द्वैष भरी प्रतिद्वंदता की ओर मानव समाज को धकेले जा रहे हैं। तभी तो वर्तमान समाज में हर कोई अपने रटे रटाये ज्ञान भण्डार को लुटाने में ही व्यस्त है। समाज में जो मानव जितना अधिक सभ्य व ऊंचे पदों पर कार्यरत है, भीतर से तो वह कपटी, स्वार्थी परन्तु स्वयं को सबके सामने समाज सेवी, दयावान और ईमानदार दर्शाने में कोई कसर नहीं छोड़ रहा है। समाज सेवा के नाम पे तो वह अपनी निज संपति में लाखों, करोड़ों का

बड़ावा ही किये जा रहा है। ठीक वैसी ही स्थिति धर्म, व्योपार, आंतरिक व बाहरी सुरक्षा के हर क्षेत्र में निम्न स्तर को छुऐ जा रही है। सारा जगत ही निज स्वार्थ सिद्धि में मग्न है, वसुदेव कटुम्बकम की भावना तो विलुप्त हो के ही रह गई है।

ऐसे घुटन भरे सामाजिक ताने बाने में मानव जाये तो जाये कहां ? मानव जब सभी ओर से निराश हताश होता है तो वह भक्ति मार्ग की ओर चलने की सोचता है। दुख व कष्टमय काल में भक्ति में ध्यान लग ही नहीं सकता, हां कष्टों के छुटकारे को मध्य नज़र रख कर ही भक्ति मार्ग पर चलना श्रेष्ठकर नहीं क्योंकि कर्मफल अर्थात प्रालब्ध से तो बचा ही नहीं जा सकता। बड़े–बड़े ऋषि–मुणियों के जीवन काल में भी विपत्ति व कष्टपूर्ण काल आता ही रहता है। भक्ति तो स्वस्थ व प्रसन्नचित्त काल में शीघ्र फलिभूत होती है। वर्तमान युग में जब मानव अपने समाज में तथोकथित धर्म गुरूआजनों के पास पहुंचता है तो उसे भक्ति मार्ग दर्शन के स्थान पर गुरूआजनों से भी जगत माया में भ्रमित कर देने वाले प्रपंच ही मिलते हैं। इस घनघौर अधोपतन के काल में धर्म के अधिकांश गुरूआजन, मुल्ला, मौलवी, पंडित, पादरी, लामे व पाई प्रेम भक्ति के स्थान पर भीतर ही भीतर एक दूसरे के प्रति राग़ व द्वैष भाव से बुरी तरहं से ग्रसित हैं। ये धार्मिक स्थलों से फतवों और आदेशों के द्वारा एक दूसरे के प्रति घृणा व द्वैष ही फैलाये जा रहे हैं।

साधक मरे क्या रोईये, जो निज घर को जाये।
रोईये जो सोया मरे, काल जाल फस जाये।।

धर्म तो सत्य व आपसी हितों के प्रति प्रेम का प्रचार प्रसार करने का माध्यम होने चाहिए, पर वर्तमान में अधिकांश धर्म तो मालिक प्रेम का दिखावा करने में ही संलग्न हैं और भीतर ही भीतर प्रतिद्वंदता के द्वैष में मालिक प्रेम से कौसों दूर होते जा रहे हैं। इनके भीतर द्वैष भाव इतना बड़ गया है कि अब तो वे तुच्छ से तुच्छ बात पर भी जीवों की हत्या करने तक से भी नहीं हिचकिचाते। आज के वर्तमान युग में धर्म के नाम पर दूसरों को मारना व हत्या करना धर्म सम्मत कार्य कह कर उसे उचित ठहराया जा रहा है। समाज का लगभग 90 प्रतिशत मानव मुखर ना हो के इन्हीं के साथ ही खड़ा दिखाई देता है अथ्वा अधिकांशता मानव समाज इसके विरूद्ध कुछ ना बोलकर मौन स्वीकृति ही प्रदान कर रहा है। अधिकतर लोग धर्म सेवा या जेहाद कह के इसे महिमां मंडित किये जा रहे हैं। ये लोग धन बल, संख्या बल व सशस्त्र बल से दूसरों को भयभीत कर अपने कुकृत्यों के प्रति मौन रहने के लिए विवश कर देते हैं। इस दुर्प्रवृति के लोग धर्म के नाम पर निरीह जीवों को भी कुर्बानी और बलि के नाम पर इनकी हत्या कर के खाये जा रहे हैं। जिस से वर्तमान काल में मनुष्यों की संवेदना कम से कमतर होती जा रही है। संवेदनहीन मानव समाज अपने निज स्वार्थ सिद्धि के कारण दूसरों के हितों की अनदेखी किये जा रहा है।

मन के रूप अनेक हैं, पल पल बदले रंग।
तीन लोक मन रूप है, हर नर के रहता संग।।

मन ही सृष्टि् से परे, आप निरंकार कहलाये।
मन ही साकार निराकार है, दोनों निज रूप कहाये।।

इस बेचैनी व घुटन भरे वातावरण में मानव समाज में प्रेम, प्रीत, स्नेह, दया व क्षमा के स्थान पर क्रौध, काम वासना, राग़, द्वैष, व हत्या करने का प्रचलन निज मानव स्वार्थ सिद्धि के कारण दिनों–दिन बड़ता ही चला जा रहा है। वर्तमान में अभी चाहे तमो व रजो गुण का प्रभाव बड़ता ही क्युं ना चला जा रहा हो परन्तु सत्तो गुण चाहे कम मात्रा में क्युं ना हो, पर समाज में विद्य्मान अभी भी है। सत्तोगुण की मात्रा सतयुग, द्वापर, व त्रेता के अनुपात में बहुत कम अर्थात लेष मात्र ही रह गई है, पर अभी भी इसका प्रभाव समाज में विद्य्मान है और ये महांप्रलय तक निरंतर कम से कमतर होता चला जायेगा। एक बात ज्ञात रहे कि चाहे कोई भी काल व युग क्युं ना हो, ये तीनों ही गुण कम या अधिक मात्रा में विद्य्मान अवश्य रहते हैं। सतगुण का पूर्णतः विनाष ही महांप्रलय का एक मात्र कारण बनता है। वर्तमान काल में अभी तक सत्त का प्रभाव चाहे घटता ही क्युं नहीं जा रहा परन्तु अभी भी संतों व सतगुरूओं के प्रचारों, सत्संगों व समाज के कुछ विलक्षण कृत्यों में व्याप्त है।

वाणी द्वार तुम बंद करो, मन दूर हो जाये।
बिन विचार तुम सुरति धारो, ईन्द्रि जाल खो जाये।।

आगे आने वाला काल अपने आप में जीवन को अत्यधिक गिरावट की ओर ले जा रहा है क्योंकि तीव्र गति से जगत में शाब्दिक ज्ञान बड़ता जा रहा है जो मानव को अत्यधिक भौतिक वाद की तरफ ले जा रहा है। ये शाब्दिक ज्ञान मानव में अपने अधिकारों व दावों के प्रति जागरूक तो करता ही है परन्तु अंतरमुखि ना होने के कारण संवेदनहीन मानव अपने कर्तव्यों से विमुख होता चला जाता है। शाब्दिक ज्ञान तो सदा मानव को बाहरमुखि भौतिक साधनों की ओर ही धकेलता जाता है जिससे वह और अधिक जगत संसाधन पाने की चाह में व इससे भी बड़कर उसे पूरा ना होने की स्थिति में और भी क्रौधी, व्यग्र हो जीवन में दुखी व अशांत हो जाता है। प्रायः अधिकतर मानवों को ज्ञान है कि अंतरमुखि अर्थात भक्ति मार्ग ही इन आशा तृष्णा भरी चाहतों से मुक्ति दिला सकता है, परन्तु सब ज्ञान होने पर भी मानव भक़्ति मार्ग की ओर चलना ही नहीं चाहता और अगर कोई भूले भटके भक्ति की और प्रेरित भी होते हैं तो अधिकांशता भौतिक जगत के राग़, कष्ट व दुखों से ही मुक़्त होना चाहते हैं तथा अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए ही इस ओर आते हैं। कोई बिरला जन ही पूरी श्रद्धा, समर्पण व अपने आध्यात्मिक उद्देष्य की पूर्ति अर्थात पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति के लिए भक्ति मार्ग की और आता है। वर्तमान काल में सत्त व रजोगुण का ह्रास लगातार होता जा रहा है तथा तमोगुण का अत्यधिक पसार हो रहा है जो निरंतर ऐसे ही आगे भी होता रहेगा। समाज में सतोगुण में कमी होने के कारण भ्रष्टाचार, लूट, चौरी, ठगी व वार्तालाप व व्योवहारों में दूसरों को नीचा दिखाने की प्रवृति बड़ती जा रही है व दूसरों के कुकृत्यों का ब्खान करने की आड़ में अपने दुर्गुणों को छुपाने का प्रयास भी लगातार बड़ता जा रहा है। जिससे समाज में क्रौध, हत्या, व्यभचार के साथ साथ आपसी रंजिशें भी बड़ती जा रही हैं। सतोगुण के साथ साथ रजोगुण में कमी के कारण इस काल में अपने ही अपनों को धोखा दिये जा रहे हैं, जिससे सामाजिक व परिवारिक ताना बाना निर्बल होता चला जा रहा है।

मन को देवी देव तुम जानो, यही खुदा यशु गुरूआई।
मानव तो इनमें फंसा, निरंकार रूप इन सब में समाई।।

यह सारा संपूर्ण जगत भगवान निरंकार जी ने मोहिणी माया आद्य्शक्ति संग मिलकर रचा

है तथा कहीं ना कहीं इस सारी रचना में साहिब सतपुरूष जी की मौन स्वीकृति भी है, क्योंकि बिन चेतन सत्ता के कुछ भी तो संभव नहीं ! चेतना अर्थात सुरति का मूल स्त्रोत्र हंसा साहिब सतपुरूष जी का निज सुरति अंश है। ये हंसा कायाधारी होने पर माया में लिप्त हो कर जगत में आत्मां कहलाता है, तभी तो आत्म सत्ता की महानता व गुणगान बिन चेतन सुरति किया ही नहीं जा सकता। संत समाज ने हंसा महिमां का गुणगान इस प्रकार किया है कि आत्मां निर्मल, निष्चल, सुख–दुख से रहित व माया से निर्लेप रहती है। हंसा (आत्मां) पाप, पुण्य, कर्म व प्रालब्ध में कदापि लिप्त नहीं होती, कर्मों को करने व भौगने के लिए ही काया धारण करनी पड़ती है अर्थात करता व भौगता शरीर/काया है, आत्मां तो निर्लेप है। तभी तो निरंकार भगवान ने आत्म को भ्रमित कर देने वाली मोहिनी माया की चकाचौंध व रंग–बिरंगी, सुख–दुख, आशा–तृष्णा तथा काम, विषय, वासना से भरपूर 21 लोकों से युक्त त्रिलोकि की रचना कर डाली। हंसात्मां एक सुरति धारा है जो मूल सुरति पुण्झ साहिब सतपुरूष जी का ही एक निज अंश है। भगवान निरंकार ने त्रिलोकि माया से इस हंस आत्म सुरति को अपनी चकाचौंध में भ्रमित कर भवसागर में उलझा दिया है। ये हंसात्मां निज को भूली हुई स्वयं को काया समझ कर काया रूपी शरीर के रिश्ते नाते व आशा तृष्णा को निभाने में उलझी हुई है। ये शरीर, मन, सृष्टि, देवी–देव व ईष्ट सब माया ही हैं जिसने आत्मां को भ्रमित करके उसे उस के निज रूप से अनभिज्ञ बनाये रक्खा है।

मन को देवी देव तुम जानो, यही खुदा यशु गुरूआई।
मानव तो इनमें फंसा, अवतार ले निरंकार भरमाई।।

ये निरंकार भगवान सहज मार्ग के संपूर्ण संत परमहसों की वाणी अनुसार शब्द से ही प्रकट हुए हैं और इसी शब्द व शक्ति द्वारा ही उन्होंने सारे देवी–देवों व ईष्टों सहित सारे ब्रह्मण्ड को रच डाला। शब्द की सत्ता, हंसा सत्ता के समकक्ष कहीं भी नहीं ठहर सकती। हंसा सुरति सत्ता शब्द सत्ता से कहीं श्रेष्ठ है। हर जीव मरने उपरांत तीव्र तृष्णा लिए अपने सगे संबधियों में ही पुनः वापिस लौटना चाहता है क्योंकि हंसात्मां निज रूप को भूला हुआ स्वंय को काया ही समझा बैठा है। ज्युं ही जीवात्मां तन से मुक्त होती है उस समय वह अपनी पूर्ण सुरति अवस्था में होती है, परन्तु आशा तृष्णा का त्याग ना कर पाने के कारण फिर 84 बंधन में लिप्त हो जाती है। जीवात्मां की सत्ता श्रेष्ठ होने के कारण त्रिलोकि–देव उसकी ये तिव्र ईच्छा पूरी करते हुए जन्म पे जन्म दिये जा रहे उसे सदा के लिए जन्म–मरन बंधन में ही उलझाये हुए हैं। अपनी इस दुर्दशा के लिए जीवात्मां स्वयं ही दोषी है। जीवात्मां अपने लिए माया मोहिनी कैद स्वयं ही चुनता है तो बतायें कि निरंकार भगवान जी का क्या दोष ? इस आवागमण बंधन के लिए जीवात्मां स्वंय ही दोषी है कोई दूसरा नहीं।

काल पुरूष करि जीव जगत की रचना, हंसा संग जोड़ा तन मन साथ।
ऋषि मुणि जपि तपि सभी लियो भरमाये, हंसों को किया कैद मन साथ।।

निरंकार भक्ति 'ऊँ' आदि, सब नामों में नाम। (आदि = प्राचीन)
जो भजे 'ऊँ' शब्द को, सुन्न में पावे धाम।।

योगी एक किले से उतरा, संग लिए चरू चेला।

चारों मिल जग भरमाया, योगी की सुने ना चेला।।

निरंकार भगवान स्वंय शब्द से ही प्रकट हुए हैं, तभी तो जगत के गुरूआजन दीक्षा में शब्द ही देते हैं, दीक्षा में दिये गये शब्द कहीं ना कहीं ग्रंथों में उल्लेखित होते हैं, कंई–कंई गुरूजन तो दीक्षा में पूरे का पूरा मंत्र ही दे देते हैं तथा कुछ गुरूजन तो देवी–देवों, आराध्यों अथ्वा ईष्टों का नाम ही दीक्षा में प्रदान करते हैं। शब्द से प्रकटे भगवान निरंकार ने सारे देवी–देव व त्रिलोकि भी शब्द–शक्ति द्वारा ही रच डाले, तथा साहिब सतपुरूष जी के अंश हंसों को निरंकार ने इस महां विक्राल काल रूपी माया मोहनी त्रिलोकि में विचरण व भ्रमण हेतु ही लाया था। हंसा जगत–माया मोहनी के मोह में ऐसा फंसा कि निज को भूल कर माया भ्रम में स्वंय को आत्म रूप कह कर ही केवल संबोधित करता है परन्तु जीवों के आचरण वश आत्म सुरति आशा–तृष्णा में जन्मों–जन्मों से उलझी पड़ी है। वह स्वयं को मन तरंग समझ कर ही सभी कार्य और व्योवहार किये जा रही है।

जाका गुरू सोया पड़ा, चेला भी उस संग।
दोनों सोये उस संग, कैसे छूटे काल संग।।

एक महां विडंभना देखें ! अधिकांष्ता मानव किसी ना किसी सगुण व निर्गुण भक्ति अपने अपने धर्म मत व सम्प्रदायः के अनुसार किये जा रहे हैं। अधिकांष्ता तो निज विवेक का प्रयोग करते ही नहीं, वे दूसरों के प्रभाव में कोई भी भक्ति मार्ग अपना लेते हैं, परन्तु इनमें से भी अधिकतर तो अपने बड़ों की देखा–देखी बिन सोचे समझे ही उनके बताये मार्ग पर चल पड़ते हैं। वे इस बात से पूर्णतः अवगत होते हैं कि हमारे बड़े इस भक्ति में भौतिक माया जगत को तज ही नहीं पाये, इसी जगत माया की तृष्णा के लिए मृत्यु को प्राप्त हो गये, तो भी इतना समझते भूजते हुऐ उन्हीं के अनुसरण किये हुऐ मार्ग पर चल पड़ते हैं। जगत में बिना ज्ञान के नकल व सिखावट सदा विनाषकारी ही होती है। तभी तो दूसरों व बड़ों की देखा देखी अंध अनुसरण करके सारा मानव समाज जगत स्वार्थ सिद्धि के लिए भक्तियां किये जा रहा है। भक्तियां तो जगत में 90 प्रतिशत मानव अपनी भौतिक जगत संसाधनों की आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए ही देवी–देवों की कर रहे हैं। बाकी शेष बचे मानवों में से अधिकांष्ता तो जगत में भौतिक जगत की आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए ही गुरू धारण करते हैं। कोई बिरला मानव ही केवल अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरू धारण करता है। एक तो जगत गुरूआजन माया रूपी मन से युक्त मन तरंग में स्वंय उलझे हुए हैं परन्तु ये अपनी संगतों को मन से मुक्त हो कर साधा व भक्तिमय जीवन जीने का उपदेश देते हैं। अधिकतर ये जगत गुरू व प्रचारक भली–भांति इस बात से अवगत होते हैं कि वे पूर्ण मोक्ष के पथ पर नहीं चल रहे। जिस मार्ग पर वे चल रहे हैं तथा जिस ईष्ट की वे भक़्ति कर रहे हैं उसके लोक में भक्ति व अपने कर्मों के प्रालब्ध से मृत्यु उपरांत स्थान अथ्वा अल्प मुक्ति तो पा सकते हैं परन्तु पूर्ण मोक्ष कभी भी नहीं पा सकते। ऐसे धर्माचार्य स्वयं मोक्ष से वंचित होते हुए भी अपनी शरणागत आये साधकों व भक्तजनों को मोक्ष की झूठी आस बंधाते हैं। माया धारी मानव माया अर्थात झूठ–भ्रम में इतना रमा है कि सारा जीवन वह झूठ के सहारे ही बिता देता है कि गुरू दीक्षा तो मैनें ले ली है अर्थात गुरू ने मुझे अपनी गौदड़ी एवमः शरणी में ले लिया है, मोक्ष तो मुझे अब मिलना ही मिलना है। ना तो समर्पण, ना ही सिमरन और ना ही जगत के प्रलोभनों को तजना त्यागना, फिर भी ये मानव अक्सर क्रौधी अहंकारी होते हुए भी मोक्ष मुक्ति पाने का दावा करते हैं। यही तो त्रिलोकि ब्रह्मण्ड में सबसे विचित्र व विस्मयकारी मोहनी माया का मोह भ्रम है।

प्रलयः काल पाँच तत्व, सुन्न में विलय हो जायें।
सुन्नकार निरंकार ज्योति, ता में हंसा समायें।।

सदा से हर प्रलयः उपरांत इस वर्तमान युग में आकर मानव को ऐसे ही घुटन भरे विस्मयकारी परिस्थितियों से दो चार होना पड़ता है। यही परिस्थितियां पूर्वता की भांति प्रत्येक प्रलयः उपरांत सृष्टि रचना क्रम में लगभग वर्तमान कलयुग काल जैसी परिस्थितियां ही होती हैं। हां ! संसाधन, पात्र व जीवात्मां बदल जाते हैं परन्तु अवस्थायें और परिस्थितियां हर युग के इस काल में एक जैसी ही होती हैं। मानव के सभ्य होने के उपरांत सतयुग से आज तक निरंकार ने ही अपने भक्तों, अवतारों व पैगंबरों द्वारा नये–नये धर्म, मत्त व संप्रदाये उत्पन्न करके सत्तोगुण से तमोगुण की ओर ले जाकर मानव समाज को निरंतर बांटने का काम पूर्वता की भांति किया। निरंकार स्वयं शब्द रूपी होने के कारण हर मानव की सुरति को शब्द भंडार से युक्त करके उसमें अहम, अभिमान, संशय व स्वार्थी होने की प्रवृति को भर देते हैं। ये शब्द भण्डार ही अहम अभिमान उपझाता है, अहम ही जीवों के अंतःकरण में संवेदना को मार के सभी को व्यग्र व अशांत कर देता है, जैसे इस सारे त्रिलोकि पसार के मृत्यु लोकों में शब्द ज्ञान का ही पसार है परन्तु इस से परे देव–लोकों, स्वर्गों व सुन्न लोक में भी सुरति पसार ही है, तभी तो इन लोकों में कोई द्वंद नहीं होता। सारे काम सुरति से ही सुचारू रूप से निर्विघ्न संपन्न होते हैं। अर्थात ये शब्द ज्ञान ही है जो मृत्यु लोक में एक जीव को दूसरे जीव से उलझाये जा रहा है क्योंकि मानव के अंदर चंद शब्दों का ज्ञान भंडार ही अपने को दूसरों से अधिक ज्ञान–वान होने का अहम भर देता है जिससे मानव में एक दूसरे के प्रति अहम व द्वैष का प्रसार अति शीघ्रता से बड़ता है। मायाधारी मानव स्वार्थी तो है ही, तभी तो वह अपने स्वार्थ सिद्धि के कारण सारे समाज, देश व प्रदेशों में द्वंद का कारण बनता है। यही शब्द रूपी भंडार का अहम ही पूरे विश्व में एक मानव को दूसरे मानव से विमुक्त करके क्रौध, राग, द्वैष व घृणा के तेजी से फलने–फूलने का एक मूल कारण है।

सुर नर मुणि और देवता, तीन लोक का खण्ड।
कहे दास सबन भौगियो, निज कर्मों का दण्ड।।

47 – नित्य नवीन धर्म प्रपंच

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की वाणी अनुसार जगत में हर वस्तु अपने–अपने स्थान पर उचित है तो फिर शब्द को क्युंकर बुरा कह सकते हैं ? यह शब्द ज्ञान ही है जो माया के अहम व प्रलोभन रूप में जीव को उलझा देता है परन्तु अगर मानव को इन मायावी शब्दों का रूपांतरण करना आ जाये तो वह मोक्ष पथ की ओर भी अग्रसर हो सकता है। इस त्रिलोकी में शब्दों की अदभुद लीला देखें, जगत में अनगिनत ग्रंथ रचे गये जिनमें से अधिकांश तो समय की आवश्यकता तथा अपने–अपने ईष्टों, आराध्यों, गुरूओं, और देवों की महिमां गाने के लिए लिखे गये। हांलाकि इन सब की रचना के पीछे कहीं ना कहीं सात्विक अंश विद्यमान रहा, इनमें से अधिकांशता ग्रंथ अथ्वा धार्मिक पुस्तकें अपने–अपने संप्रदाये, समाज व अनुयायियों के मार्गदर्शन हेतु ही लिखे गये। ये जग द्वैत से भरा है जहां श्रेष्ठजन व आध्यात्मिकता से भरपूर

ज्ञानवान ज्ञानियों द्वारा जगत के पथ प्रदर्शन के लिए पुस्तकें व ग्रंथ लिखे गये, परन्तु इनके साथ–साथ बहुत से श्रद्धालुओं और अनुयायियों ने अपने–अपने ईष्ठों, आराध्यों की महिमां का गुणगान करते समय मर्यादाओं की सीमाऐं लांघ दी। जैसे अज्ञानतावश और यथार्थ से परे किसी एक ईष्ट की पूजा करने वाले ने लिख डाला कि उसके देव ही इस सृष्टि के रचियता हैं और इसे चलायेमान रखने में भी पूर्णतः वही संचालक हैं। किसी दूसरे देवी–देव व ईष्टों के अनुयायियों ने उसी तर्ज पर अपने ईष्टों और आराध्यों का बड़–चड़ कर प्रचार–प्रसार करना और इसे कलमबद्ध करना शुरू कर दिया, फिर चाहे किसी भी मर्यादा का उल्लंघन क्युं ना करना पड़ता हो, ये प्रतिस्पर्धात्मक सोच बद् से बद्तर रूप धारण करती चली गई जो आज तक निरंतर जारी हैं। जिस कारण समाज में एक दूसरे के प्रति प्यार, प्रीत और आपसी मेल–जोल बड़ने के स्थान पर नफ़रत, हिंसा और द्वैष फैलता चला गया। वर्तमान काल का मानव इतना संवेदनहीन हो चुका है कि वह निज स्वार्थ वशिभूत हुआ धार्मिक पुस्तकों, ग्रंथों को श्रद्धा भाव से पढ़ने के स्थान पर उन में अरानगल व अनुचित बातों को डूंढ–डूंढ कर और ज्यादा वैम्नस्था फैलाता जा रहा है।

ज्ञानी जन जग बहुत हैं, पंडित मौलवी पाई पादरी अनेक।
निःअक्षर शब्द की दात को, पावे बिरला कोई एक।।

इन सब की देखा–देखी कलयुग में नये–नये धर्म अति तीव्रता से उभरे, तथा कुछ ऐसे भी धर्म फले–फूले जिन्होंने रचनात्मिकता और नित्त–नवीन विचारों के फलिभूत होने में बाधाऐं खड़ी कर दी। ऐसे धर्मों ने एक ही ग्रंथ रच कर उसमें कुछ भी नवीन विचार चाहे वो पूर्णतः सत्य ही से क्युं ना ओत–प्रोत हों उनके समावेश का रास्ता ही बंद कर दिया। ऐसे धर्मों ने एक विचित्र सीमा ही बांध दी कि जो उनके ग्रंथ में कलमबद्ध हो गया वो ही आगे से सभी के लिए सर्वमान्य होगा, इसी के चलते आज के पश्चात कोई भी उचित व अति श्रेष्ठ किसी भी विचार को उनके ग्रंथ में कभी भी सम्मिलित नहीं किया जायेगा। जो इस पर कोई भी उचित टीका–टिप्पणी भी करता है उसे उनके अनुसार धर्म–द्रोही माना जाऐगा तथा उसे धर्म व संप्रदायः से भी वष्किृत कर दिया जाऐगा। इससे लम्बे काल के लिए संप्रदायः में एकता तो रह सकती है परन्तु नवीन ज्ञान, विचारों व संसाधनों को ना अपनाने से ये तथोकथित संप्रदायः मुख्य धारा से कटते ही चले जाते हैं जिससे इनमें जहालता तथा कट्टरता का संचार होने लगता है, जिस कारण मानव एक–दूसरे के संप्रदायों को हीन भाव से देखने के कारण एक दूसरे से पूर्णतः विमुख हो जाते हैं। इसी प्रभाव वश वर्तमान काल में मानव एक–दूसरे के अस्तित्व को ही समाप्त करने पे उतारू हो चुका है।

शब्दे धरति शब्दे आकाश, शब्द ही सुन्न लोक पसार।
देवी देव शब्द से आये, शब्द ही निरंकार पसार।।

निरंकार भगवान स्वयं भी शब्द द्वारा ही प्रकट हुए हैं तथा इस शब्द शक्ति द्वारा ही आत्म–सुरति को इतना भरमाया गया कि जीवात्म निरंकार रूपी ईष्टों को ही सब कुछ माने बैठा है। निरंकार के इस शब्द रूपी क्रूर माया मोह जाल में आत्मां अनंत युगों से अपने निज स्वरूप व मूल को भूले बैठी है। यहां तक ही नहीं इससे भी आगे जाकर आत्मां तो निरंकार को ही सब कुछ माने बैठी है, निरंकार की त्रिगुणि युगों से युक्त माया देखिये कि समय–समय

पर जीवात्मां को भरमाने हेतु नित्त–नवीन पंथ व अवतार पैग़म्बर और पथ प्रदर्शक होते रहे। चूंकि ये सभी अपने काल में सत्य मार्ग की ओर चलने को प्रेरित करते रहे परन्तु जैसे ही ये महांनुभूतियां जगत से प्रस्थान करती हैं तो थोड़े ही काल उपरांत इनके द्वारा स्थापित मर्यादाओं और सत्य विचारों को इनके अनुयायी यथा परिस्थिति, स्वार्थवश और अपनी सुविधा अनुसार प्रयोग करना आरम्भ कर देते हैं। इन्हीं विचारों का क्रम कुछ समय उपरांत समाज में असहशुन्ता के प्रचार–प्रसार का कारण बनता है। जगत में साधारण मानव जन तो माया की गहरी नींद सोया पड़ा है। वह इन आध्यात्मिक ग्रंथों व पुस्तकों में सुरति द्वारा भरे गये ज्ञान को समझने में असमर्थ होता है। वह वही समझता है जो उसे वर्तमान काल के पथ प्रदर्शक अपनी वाणी और शब्दों द्वारा अर्थ–अनर्थ निकाल कर समझाना चाहते हैं क्योंकि साधारण मानव उचित और अनुचित में अंतर जान ही नहीं पाता और समय के प्रवाह में ही बहता चला जाता है।

तीन लोक शब्द मोह जाल में, झूठी झिलमिल होई।
साहिब जी मृग तृष्णा जगत देखि, सत्त फिर ना जाना सोई।।

48 – खर अक्षर और निःअक्षर

शब्दों को प्रायः दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है जैसे 'खर' व 'अक्षर' ! 'खर' अर्थात ज्ञानता से दूर माया ही में लिप्त और अहम अहंकार से युक्त भावों की श्रृंखला जो कि सर्वदा सत्य से परे केवल झूठ की ही अवस्था है। 'अक्षर' ज्ञान केवल भौतिक जगत उन्नति के लिए ही ज्ञान अर्जित करने का एकमात्र माध्यम भर है। अक्षर ज्ञानधारी अधिकतर अहंकारी होके अपना विनाष कर लेते हैं। इन दोनों के प्रयोग में शब्दों का क्या दौष ? दौष तो केवल अपने निज स्वार्थ हेतु शब्द कौष का अनुचित प्रयोग करने वालों का ही है।

निःअक्षर नाम हीरा छोड़ि के, करी आन की आस।
कर्म धर्म जाल फंस जायेगा, छूटन की नहीं आस।।

साहिब खौजि बनो तुम सब्द के, सतगुरू शरणी जाये।
पल छिन सुरति धरो सब्द में, भव जल पार हो जाये।।

साहिब ''वे नाम परमहंस जी'' की वाणी अनुसार :– 'खर' अर्थात जगत में प्रचलित शब्दों द्वारा ही सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस अपने प्रवचनों के प्रवाह में साहिब सतपुरूष जी का सुरति प्रसार अपने–अपने शब्दों में ही करते हैं क्योंकि लाखों जन्मों से जीव माया में लिप्त 'खर' और 'अक्षर' की भाषा ही समझता व बोलता है। तभी तो सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी निःअक्षर दात अर्थात साहिब–सुरति–दात, विदेह दात अर्थात ''सार सब्द'' भी जीव को जगत व्योवहारिक शब्दों का ही सहारा लेकर प्रदान करते हैं। जिसके प्रभावाधीन जीव मन माया तरंग से कुछ पलों के लिए मुक्त हो जाता है। जो साधक निज आध्यात्मिक कल्याण भाव (निज को जानकर मोक्ष पथ पर चलने का भाव) से सतगुरू परमहंस जी की शरण में आते हैं वो बिरले बड़भागी जन ही होते हैं, ऐसे बड़बागी जन सतगुरू परमहंस जी की शरणी में समर्पित होके

सतगुरू से पूर्ण मोक्ष दात अर्थात विदेह दात को सुरति द्वारा ही ग्रहण करते हैं। विदेह दात को ग्रहण करते ही उनकी सुरति मन माया तरंग को तज कर मोक्ष पथ की ओर अग्रसित हो जाती है तथा ऐसे साधक सतगुरू–कृपा पाकर मोक्ष प्राप्त कर के आवागमण से मुक्त हो जाते हैं। अगरचे हमें स्वयं ही शब्दों का प्रयोग करना नहीं आता तो फिर हम शब्द ज्ञान को ही केवल कैसे दौष दे सकते हैं ?

संत तो सच्चे सारथी, ले चलें भवजल पार।
निराकार जो हो सारथी, बहे मन की धार।।

काम क्रौध लोभ मोह अहंकार, अंदर का परिवार।
पाँच अंतःकरण की ईन्द्रियां, मन का ही विस्तार।।

दिल की दुनियां बस रही, आजकल चहु ओर है।
अंदर अंधेरा फैला हुआ, दिखता हर ओर है।।

हर बार सृष्टि रचना क्रमबद्ध पूर्व श्रृंखलाओं की भांति :–

कलयुग के वर्तमान काल खंड में भी मानव की संवेदना पिछले बीते युगों से अधिक तीव्रता से अवगति को प्राप्त हो रही है। मानव संवेदना का क्षेय होना इतना तीव्र है कि पिछले सौ वर्षों में ही युगों–युगों जितना परिवर्तन आ गया है। आज से सौ वर्ष पहले, संपूर्ण संसार में घर के बड़े चाहे कितनी भी उम्र के क्यु ना हों व उनकी ज्ञानशीलता किसी भी स्तर की क्यु ना रही हो तथा चाहे वे शारीरिक तौर भी कितने दुर्बल क्यु ना हों, परिवार में फिर भी उनकी बातों और निर्णयों का आदर किया जाता था और उनकी सेवा को परम धर्म समझा जाता था।

अधिकांशतः परिवारिक व सामाजिक निर्णयों में उनकी विशेष भुमिका हुआ करती थी। परन्तु पिछले करीब 50 वर्षों के अंतराल में इन सभी मर्यादाओं और मूल्यों का अति तीव्रता से ह्नन हुआ। जहां पहले घर के बड़े बजुर्ग परिवार के मुखिया होने के साथ–साथ परिवारिक आय स्त्रोत व व्यय आदि सभी निर्णयों का नियंत्रण रखते थे तथा परिवार के सभी जन उनके हर निर्णय का सम्मान सहित पालन भी करते थे जिससे परिवारिक ढांचे सुदृढ़ से सुदृढ़ होकर कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपना संतुलन नहीं खोते थे जिस कारण उन सब में परिवारिक एकता व प्रेम सदैव बना रहता था। वर्तमान काल में समाज में मानव के रहन–सहन व उसकी औसत आय का स्तर तो काफी ऊंचा हुआ है परन्तु फिर भी मानव के अंदर की संवेदना निरंतर मिटती ही चली गई है। जहां पहले मां–बाप का भरपूर सम्मान और आदर किया जाता था तथा माता–पिता को ईश्वर के बराबर पूजनीय माना जाता था, परन्तु वर्तमान काल में मानव उन्हीं माता–पिता व परिवार के बुजुर्गों को बोज सा समझने लगा है। वह यहां तक भी भूल चुका है कि आज जिस स्तर व ऊँचाई पर वो पहुंचा है ये सब तो उन्हीं मां–बाप के अताह परिश्रम के कारण ही तो संभव हो पाया है, वर्णा आज वह ना जाने किस परिस्थिति में हो सकता था इसका अनुमान लगाना भी उसके वश की बात नहीं ! परिस्थितियां यहां तक बिगड़ चुकी हैं कि समपन्न घरों में भी मां–बाप के रहने के लिए

स्थान नहीं बचे हैं जबकि वृद्ध आश्रमों में निरंतर भीड़ बड़ती ही जा रही है। अक्सर अधिकांश बुजुर्गों को तो अपने जीवन यापन के लिए सड़कों पर भीख मांगते हुए भी देखा जाता है और जो अपने घरों में भी हैं उनमें भी अधिकतर की हालत कुछ अच्छी नहीं कही जा सकती। लगभग ऐसा ही व्योवहार वर्तमान काल में परिवार के सभी दूसरे रिश्ते–नातों में भी देखने को मिलता है।

यह तन माया जाल है, आत्म फिरे लिए उसे साथ।
आत्म हंसा जब हुई, छूटा मन माया का साथ।।

अभी बहुत अधिक काल नहीं बीता कि घर में पुत्री का जन्म लक्ष्मी का ही शुभागमन मान कर खुशियां मनाई जाती थी। परन्तु आज के वर्तमान काल में मानव की जैसे पूरी संवेदना ही मिट गई है, वह अपने स्वार्थ सिद्धि में इतना मग्न हो चुका है कि जहां वह पहले अपने निज स्वार्थ के लिए जीवों व दूसरों की हत्या करता था वहीं वह आज अपने निज अंश कन्या भ्रूण को गर्भ में ही मरवा देता है। अपनी निज संतान से ऐसा क्रूर व अत्याचारी व्योवहार करने वाला मानव दूसरों से बड़ी–बड़ी संवेदना व ज्ञान की ढींगे हांकता है। ऐसे क्रूर मानव ही जगत में सब से ज्यादा व्यग्र होने व बेचारगी का रोना रोते हैं। अपने ही निज अंश के साथ ऐसा जघन्य अपराध करने के उपरांत नीचता की गिरावट में अब इससे निम्न क्या शेष रह जाता है कि मानव के निम्न स्तर का अवलोकन कैसे किया जाये समझ में नहीं आता। समाज में धाण्डय, पढ़ा लिखा व सू–सभ्य कहे जाने वाला विषेश–वर्ग इस हत्या में सबसे अग्रणीय अर्थात प्रथम कतार में खड़ा है तथा जगत में भगवान तुल्य समझा जाने वाला चिकित्सक वर्ग भी इस घृणित कार्य में अपना अहम योगदान देते हुऐ रत्ति भर भी लज्जा महसूस नहीं करता। वर्तमान का मानव स्वार्थ सिद्धि में इतना मग्न है कि वह जीते जी ही प्रेत के समान व्योवहार करने लगा है। इस सारे घटनाक्रम का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये सौ वर्ष मानो एक–एक युग के समान हों।

नोट :– सृष्टि् में जितने भी कायाधारी प्राणी हैं वे सभी मां के गर्भ से ही पैदा होते हैं। एक प्रेत योनि ही तो ऐसी है जिसमें जीव मानव शरीर तजने के उपरांत बिना गर्भ में जाये ही सीधे प्रवेश पाता है तभी तो इस योनि में कोई रिश्ते–नातों का बंधन नहीं होता अर्थात दया, ममता, भाव अथ्वा संवेदना का कहीं कोई स्थान ही नहीं होता।

कलयुग साधो हमने जाना, झूठ शब्द दोहराई।
अक्का नाम मूल सब्द, सतगुरू सूं लो इसे पाई।।

अभी तो ये कलयुग का मध्य काल ही है पर जैसे–जैसे समय बीतता जा रहा है मानव और अधिक संवेदनहीन व स्वार्थी होता जा रहा है। वर्तमान काल में मानव अपने परिवार (स्वयं, पत्नि व बच्चे) तक ही सोचने में सीमित है जो सब उसे अपना ही अंग प्रतीत होते हैं परन्तु ऐसा समय अति शीघ्र आने वाला है जब उसकी सोच केवल और केवल स्वयं तक ही सीमित रह जायेगी तथा कलयुग के अंत आते–आते मानव बिल्कुल संवेदनहीन हो चुका होगा। सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की वाणी अनुसार कलयुग के अंत काल तक मानव की औसत ऊंचाई

तीन फुट से भी कम रह जायेगी, यहां तक कि मानव केवल भौजन प्राप्ति के लिए ही एक दूसरे की हत्या करने पर उतारू हो जायेगा। ऐसे लक्ष्ण ही महां प्रलयः के आने के संकेत होते हैं।

सगुण निर्गुण सब ही पूज रहे, निरंकार को दिन रात।
निरंकार मन रूप ही पूजें, कैसे आत्म छूटे मन साथ।।
सुर नर मुणि सब को ठगे, मन ही है अवतार।
जो कोई याको साध ले, तीन लोक से पार।।

49 – प्रालब्ध

कभी कोई बनता बाप है, कबहु कौ तेरा पूत।
कभी तो तेरा भाई है, कभी वो तेरा दूत।।

कर्म फल में फंसा प्राणी, तांहि कीन्हा गर्भ शरीर।
गर्भ भवन में घौर अंधियारा, पग उपर तल शीष।।

हे मानवो ! जगत में मन द्वारा मन रूपी देवी–देव व ईष्टों की भक्ति व आराधना कर के मन की सत्ता पर काबू नहीं पाया जा सकता। ये त्रिलोकि तो कर्म फल के अटल नियम से बंधी है, आप किसी भी देवी–देव व आराध्य की पूजा भक्ति, आराधना, ध्यान व जप–तप कितना भी क्युं ना कर लें तो भी किसी को प्रालब्ध से अधिक कुछ नहीं मिल सकता। ये सभी देवी–देव तो अपने–अपने जगत संचालन के कर्तव्यों से बंधे हैं तथा ये आप की किसी भी मांग को आप के कर्म प्रालब्ध से ही पूरी करते हैं। अगर आप के द्वारा मांगी गई मांग आप के प्रालब्ध कौष में नहीं है तो वे ऐसी मांग को अनसुनी कर देते हैं अर्थात बिन प्रालब्ध अधिकतर मांगें इन ईष्टों द्वारा अनसुनी कर दी जाती हैं। जो मांग पूरी भी होती है वे आप के भविष्य में मिलने वाले प्रालब्ध रूपी फल से ही पूरी कर दी जाती है, परन्तु मांग मांगने वाले जीव का भविष्य अंधकार व अति कष्टपूर्ण हो जाता है। राजा हो या रंक, दाण्डय हो या भिखारी, संसारी से लेकर सभी मायाधारी, ऋषि–मुणि और साधु–साध सभी आशा व तृष्णाओं की पूर्ती के लिए ही भक्तियों में इन मांगों को मांगे जा रहे हैं। जो साधु व ऋषि–मुणि मांग रहित भक्ति भी करते हैं तो भी उन्हें काम–वासना मोहनी रूप में देर–सवेर आकर घेर ही लेती है तभी तो ये सभी मोक्ष से वंचित रह जाते हैं। इनमें से अधिकतर तो अपने–अपने ईष्टों के लोकों को प्राप्त करने हेतु ही भक्तियां किये जा रहे हैं। वे सब स्वर्ग तथा अल्प मुक्तियां तो पा सकते हैं पर पूर्ण मोक्ष से वंचित ही रह जाते हैं। इन मांगों की पूर्ती हेतु की गई पूजा ही जन्म–मरण अर्थात आवागमण का कभी ना समाप्त होने वाला मूल कारण है। मानव जिस परिवार से मृत्यु उपरांत बिछड़ता है, उससे ना बिछड़ने की तीव्र ईच्छा एवमः मोह ममता व अपने परिवार व सम्बंधियों को ना तजने की तृष्णा ही उस जीवात्मां को अपनों के पास पुनः वापिस ले आती है। ये जीव प्रालब्ध वश किसी दूसरे पशु–पक्षी या कीट–पतंग के रूप में शरीर धारण कर पुनः अपनों के पास लोट आता है। बड़ा विचित्र व भ्रमित कर देने वाला क्रूर माया चक्रव्यूह तो देखें कि जीवात्मां तो अपने पुराने परिवार के मोह वश खिंचा चला

आया परन्तु वह अपने पूर्व जन्म के परिवार को भूल कर वर्तमान के नये परिवार में ही रच बस जाता है और वही उसे अपने लगने लग जाते हैं। मगर जिन अपनों के लिए वह मोह वश खिंचा चला आया था वह परिवार तो उसके लिए अब पराया हो गया है। बार–बार यही क्रम जीवात्मां दोहरा–दोहरा कर कर्म प्रालब्ध में फंसा अपने आवागमण से मुक्त नहीं हो पाता।

चौरी करि है आत्म की, तन का करता मान।
मन सबै भरमावता, देता चार मुक्ति का दान।।

एक बात सर्वदा ज्ञात रहे मानव चाहे कितना भी यत्न प्रयत्न क्युं ना कर ले, वह वर्तमान जीवन में वही पाता है जो उसके प्रालब्ध में निष्वित होता है। मानव का कर्म करना परम धर्म है, वह चाहे ना चाहे कर्म क्रिया तो अवश्यमभावी है। विलासता अथ्वा आलस्य के कारण कर्म ना करना भी अकर्म की श्रेणी में आता है जिसके फल स्वरूप जीव को बिष्टा वाले कीट बन कर जन्म लेना पड़ता है। इसलिये कर्महीन रहने से निरंतर कर्म करते रहना ही सर्वदा श्रेष्ठ है। सदा ध्यान में रहे कोई भी मानव चाहे ईमानदारी व परिश्रम से धन कमाये अथ्वा चोरी ठगी व रिश्वतखौरी द्वारा धन दौलत कमाये, मिलता तो उसे प्रालब्ध अनुसार ही है। बड़ी विचित्र व अनोखी विडम्भना है कि हर नीच से नीच कर्म द्वारा धन अर्जित करने वाले मानव ऐसा कहते हुये सुने जाते हैं कि ये धन सम्पदा मैनें अपने सामर्थ और छल बल से अर्जित की है। असलियत तो यह है कि वर्तमान जन्म में ये धन सम्पदा उसे प्रालब्ध अनुसार प्राप्त होनी ही थी। अब मानव कौन सा मार्ग अपनाये, ये उसी पर निर्भर करता है।

आत्म प्यास जगी जब अंदर, कैसे रोकी जाये।
चात्तक की तृष्णा जागी, झरना कैसे बुझाये।।

आत्मां तो सुरति अर्थात चेतन शक्ति है। इस मन माया रूपी संसारिक मोह जाल में आत्म–सुरति भ्रमित हुई अपना निज रूप व सामर्थता भुलाये बैठी है तथा मन के अधीन हो कर सभी कार्यों को किये जा रही है। सब कुछ भुला निज को काया समझ कर व काया सम्बंधी रिश्ते–नाते व धन–सम्पदा को बड़ाने में आत्मां अपनी सुरति आभा को नष्ट कर देती है। यही रिश्ते नाते ही महां तृष्णा रूपी महां–काल का 'मै' और 'मेरी' का अहम जाल है। जगत भक्तियां भी माया जाल को ही सुदृड़ करने का काम करती हैं तथा स्वार्थ वशिभूत की गई भक्तियां तो जीव का आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्थ ना कर के केवल उसकी स्वार्थ सिद्धि व जगत भौतिकता को बड़ाने वाली ही होती हैं। 99 प्रतिशत मानव स्वार्थ वशिभूत अपने–अपने आराध्यों को पूजते व भजते हैं और केवल एक प्रतिशत में से ऋषि–मुणि, साधु–साध और सन्यासी भी देवी–देवों व निरंकार को पूज–पूज कर स्वर्ग व अल्प मुक्तियां अर्थात सुन्न लोकों में वासा पाते हैं। प्रालब्ध कर्मों के फल भोग–भोग कर वापिस मृत्यु लोक में आवागमण जाल में पुनः लोट आते हैं। एक बात सर्वदा ज्ञात रहे, मुख व मन दोनों ही महांमाया का मोहनी विक्राल क्रूर रूप हैं, इन दोनों के द्वारा जगत माया रूपी संसाधनों से की गई भक्तियां आवागमण से कभी मुक्त नहीं करा सकती। मोक्ष तो केवल इस माया सत्ता से उपर की सहज सत मार्ग भक्ति के पूर्ण सतगुरू परमहंसों की शरणी में जा के ही मिलता है।

सुर नर मुनि और देवता, तीन लोक के खण्ड।
कहे दास सब भौगिया, निज कर्मन का दण्ड।।

यह जगत मन का विस्तारा, आत्म बीज बना सहारा।
सतगुरू आत्म आज़ाद कराये, मन से छूटे पीछा हमारा।।

50 – भक़्ति पथ

वर्तमान युग में अधिकांष्ता संसारी जन भक़्तियां करते हुऐ ही दिखाई देते हैं। ये जो जगत में भक़्ति पद्धत्तियां प्रचलित हैं वास्तव में ये सभी भक़्ति से कौसों दूर हैं। 'भक़्ति' अर्थात स्वयं को भौतिकता से समेट कर अपने आप को जानने के साथ साथ अपने मूल को जानना ही 'भक़्ति' है। तथा अपने अपने मूल को पहचान कर उसी में जा समाना ही भक़्ति का केवल एकमात्र लक्ष्य है। क्या संसार में कोई भी भक़्ति पथ इस लक्ष्य की ओर बड़ता दिखाई दे रहा है।

सभी की सभी भक़्तियां अपने मूल से कौसों दूर अंध भक़्तियों में सलंग्न हैं। भक़्ति तो समस्त संसारी राग़, द्वैष, प्रलोभन व बंधनों से स्वयं को मुक्त करने का नाम है। क्या किसी भी संसारी भक़्ति से ये सब संभव है ? संसारी भक़्तियां तो तीन प्रमुख प्रयोजनों से ही की जाती हैं। भौतिक ईच्छाओं की पूर्ती के लिये, अपने धर्म समुदाये के प्रचार पसार के लिये अथ्वा संसारिक दुख, क्लेश, कष्टों से छुटकारा पाने व आर्थिक परेशानियों से मुक़्ति के भाव से ही जगत में मानव भक़्तियां किये जा रहे हैं। 99.9 प्रतिशत जगत मानव केवल इन्हीं कारणों से बंधे ही भक़्तियां किये जा रहे हैं परन्तु सभी के सभी मानव, धर्म व समुदाये इन सब प्रयोजनों से इन्कार करते हैं।

ग्रंथों का स्वध्याय अथ्वा संसारी शब्द ज्ञान मानव को ज्ञानवान होने के साथ साथ परहित, प्रेम व वसुदेव कटुम्भकम भाव से औत प्रोत होना चाहिये। अधिकांश संसारिक ज्ञानी जन इन से परे केवल दिखावा मात्र के लिये इन गुणों का प्रदर्शन करते हैं परन्तु अंतःकरण में स्वयं के ज्ञानी होने के अहम से बुरी तरहं से झकड़े हुऐ हैं। ये दिखावटी ज्ञानी भक्त इतने अभिमानी व क्रौधी होते हैं कि अपने, अपनों के प्रति व अपने मठ, मन्दिर,

मस्जिद, गुरूद्वारे व धामों के विपरीत कुछ भी सुनना पसंद नहीं करते। अक्सर ये कहीं भांप भी लें तो भी ये तर्क वितर्क करते हुऐ दूसरों को नीचा दिखाने के लिये भाषाओं की मर्यादाओं को भी लांघ देते हैं। अगर इससे भी इनका अहम संतुष्ट ना हो तो ये दूसरों के साथ मारा मारी पर भी उतारू हो जाते हैं। अब तो धर्म सम्मत कार्य कह के दूसरों के प्राण लेना भी श्रेष्ठकर समझने लगे हैं।

तनिक सा शाब्दिक ज्ञान हो अथ्वा बहुत अधिक ज्ञानी, सभी अपने धर्म, मत्त व सम्प्रदाये अनुसार पूजा, भजन, कीर्तन, जगराते, नगर कीर्तन, अज़ाने, नमाज़े, कौरल गान व जलसे जुलूसों द्वारा अपने प्रभाव, धन बल व संख्या बल का प्रदर्शन करना अपनी शान समझते हैं। हर तरफ समाज का एक सम्प्रदाये जब प्रदर्शन करता है, दूसरा सम्प्रदाये प्रकट करे ना करे, भीतर से वह राग, द्वेष व वैमनस्ता से भर जाता है। ये भक्तियां एक दूसरे के भीतर अंतःकरण में वैमनस्ता का ज़हर व भय घौले जा रही हैं, तनिक विचार करें कि ये सब भक्ति पथ है या केवल मात्र दिखावे का ढौंग !

निरंकार की मोहनी माया का अदभुद विचित्र जाल देखिये, एक तरफ़ उपरोक्त अवस्था वाले सभी भक्तजन तथा दूसरी तरफ़ निरंकार दायरे में ही अनन्य श्रद्धा भक्ति भाव से युक्त होकर ऋषि मुणि, साधु सन्यासी, व योगी यत्ति कठौर से कठौर तपस्या करके निरंकार रूपी आराध्यों को प्रसन्न करते हैं, वे भी निरंकार द्वारा एक बद्ध नियम अटल कर्म अवश्यमभावी सिद्धांत से ही देखे जाते हैं अर्थात उनको भी उनके श्रेष्ठ कर्म प्रालब्ध अनुसार ही स्वर्ग अथ्वा सुन्न लोकों में भौग भोगने के लिये स्थान मिलता है। श्रेष्ठ और नित्कृष्ट दोनों एक ही तुला में तोले जाते हैं तथा अपने अपने कर्म प्रालब्ध अनुसार निरंकार योनि में भौग भोगते हैं। इन श्रेष्ठ अथ्वा नित्कृष्ट दोनों में से किसी का भी इस त्रिलोकि के क्रूर कर्म बंधन से निकलना असंभव है।

ये स्वार्थ सिद्धि, द्वेष, वैमनस्ता और प्रतिर्स्पदा भरा मार्ग भक्ति ना हो के केवल मात्र भौतिकतावाद ही है। अधिकतर मानव सब कुछ समझते हुऐ और चंद एक ना समझी में इन सब मार्गों का अंधाधुंध अनुसरण किये जा रहे हैं। ये सब तो भगवान निरंकार जी की विशाल त्रिलोकि महिमां का केवल एक अंग भर है। ये सब भक्तियां चाहे अहम अथ्वा श्रद्धा भाव से ही क्युं ना की गई हों इनसे जीव का आवागमन नहीं मिटता। ये जगत प्रपंच भरी भक्तियां केवल स्वार्थ सिद्धि का तंत्र भर बन के रह गई हैं। अंतर केवल इतना भर है कि उच्च कर्म व श्रद्धा भाव

से की गई भक्तियां नाना प्रकार का मन चाहा भौग भोगने को प्रदान करती हैं तथा निम्न कर्म व स्वार्थ और द्वैष भाव से की गई भक्तियां कष्ट, क्लेशों व दुखों भरा भौग भोगने को प्रदान करती हैं अर्थात सभी प्रकार की भक्तियां फलिभूत होती हैं इनमें से कोई भी भक्ति निष्फल कदापि नहीं जाती। हां, इन भक्तियों से जीव निरंकार मन मोहनी माया में जाने अनजाने अधिक से और अधिक ग्रसित होता चला जाता है।

51 – परमहंस दात महिमां

पूजा मान ना चाहिये, ये ना संतन की चाह।
साहिब मिलें तो सब पाया, दूजी ओर ना चाह।।

सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस इस धरा पर ईक्का–दुक्का ही विद्यमान होते हैं जबकि निरंकार की सर्गुण व निर्गुण भक्ति करने वाले असंख्य गुरूआजन सदा इस धरा पर होते ही हैं। जीव इसी कारण जगत गुरूओं द्वारा माया की भक्ति में उलझ जाता है, अगर मानव इस माया को त्याग कर किसी भी ईष्ट या गुरू की शरणी में जायें तो उनकी मांग रहित निस्वार्थ भक्तियां उन्हें सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में ले ही आती हैं। निरंकार भगवान साहिब सतपुरूष जी से किये गये कौल करार के अनुसार स्वयं ऐसे जीवों को मोक्ष मार्ग अर्थात पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी भेजने को वचनबद्ध हैं तभी तो माया का क्रूर विक्राल जाल होते हुए भी कंई–कंई विरले जन सहज सत मार्ग के सतगुरू परमहंस जी की शरणी में आ ही जाते हैं। इसलिए हे मानव, जगत तो कर्मों के फल अर्थात प्रालब्ध में बंधा है। दिनचर्या के कार्यों व जीविका हेतु ही प्रालब्ध निश्चित है, इसलिए अगर निस्वार्थ भाव अर्थात मांग रहित हो के श्रद्धा पूर्वक किसी भी ईष्ट की तुम पूजा भक्ति करो, ये भक्तियां तुम्हारे उत्थान का मार्ग प्रशस्थ कर ही देती हैं अर्थात पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी पहुंचा ही देती हैं।

सात सुन्न सात सुरति स्थाना, ईक्कीस लोक ब्रह्मण्ड स्थाना।
महांकाल निरंकार रचियता सभी का, सबै जीव भरमाना।।

अधिकांशता सहज सत मार्ग के भगत–जन पूर्वतः किसी ना किसी ईष्ट की निस्वार्थ पूजा करने वाले होते हैं, इनके निस्वार्थ भाव व एकाग्रता से मांग रहित होकर पूजा पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में ले ही आती है। पूर्ण सतगुरू परमहंस जी इस धरा पर साहिब सतपुरूष जी का रूप ही होते हैं। सतगुरू परमहंस जीवों को जो ''सब्द दात'' दीक्षा में देते हैं वह विदेह–दात होती है। जगत गुरूओं द्वारा दिये गये शब्द ग्रंथों में कलमबद्ध होते हैं, परन्तु पूर्ण सतगुरू परमहंसों द्वारा दिये गये सब्द किसी भी ग्रंथ व लेखनी में कलमबद्ध नहीं होते, तभी तो ये विदेह–दात कहलाती है। इस विदेह दात को अलग–अलग संतों ने अलग–अलग नाम से पुकारा है। इस दात को ''सार सब्द'' व ''सार नाम'' तो कहते ही हैं साथ ही साथ समय–समय पर सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों ने ''सार सब्द'' के नाम तथा सहज सत्त भक्ति को अपनी सुविधा व परिस्थितियों के अनुसार इन नामों से भी सम्बोधित किया जो निम्न प्रकार से हैं :–

इन्हें ''निअःक्षर नाम, अमर दात, अक्का नाम, मूल नाम, सत्त नाम, हक्क नाम, पुरूष नाम, पाक नाम, प्रकट नाम, गुप्त नाम, आदि नाम, अमृत नाम, अनमोल नाम, केवल नाम तथा मोक्ष दात'' आदि नामों से भी सम्बोधित किया है। साथ ही साथ सहज सत्त भक्ति मार्ग को परा भक्ति, सत्त भक्ति व बृहंगा मत्त कह के भी सम्बोधित किया है।

52 – ईक्कतर पीढ़ियों को मोक्ष

ईक्कतर पीढ़ियां तेरी संग तेरे, तेरी महिमां गुणगान करें।
तुम आगे वो पीछे तेरे, सतगुरू जहाज पार करे।।

जिन सतगुरू पायो अति प्यारे, 71 पीढ़ियां कुटुम्भ सब तारे।
धन्य भाग उन जन के, पारस दात पाई सबन को तारे।।

यूं तो बहुत से भक्त–जन सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंसों की शरणी में आते हैं परन्तु अधिकतर तो जगत भौतिक पदार्थ की अभिलाषा लिये ही आते हैं तथा बहुत से भक्त–जन अपनी 'मै' अर्थात अहम को तजे बिन ही सतगुरू परमहंस जी की शरणी आ जाते हैं। ऐसे जिज्ञासु–जन पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आकर भी स्वयं को समर्पित नहीं कर पाते जिससे वे अपनी कुछ भौतिक ईच्छाऐं तो पूरी करवा लेते हैं परन्तु मोक्ष अर्थात पूर्ण मुक्ति से वंचित ही रह जाते हैं। कोई बिरले जन ही सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आकर स्वयं को उनके चरणों में समर्पित कर सतगुरू परमहंस जी से ''सार सब्द'' की दात को पाते हैं। जगत गुरू तो शब्द रूपी ही दात देते हैं परन्तु सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस अपनी शरण में आये शिष्यों को ''सार सब्द'' रूपी दात सुरति से वास्तव में जीव की काया को ना देकर उसके अंदर विद्यमान जीवात्मां को प्रदान करते हैं। ये काया रूपी मानव इस जगत में शब्दों व माया रूपी आडम्बरों में बुरी तरहं से ग्रस्त हैं। जगत मानव तो शब्दों की ही बोल–भाषा समझता है तभी तो पूर्ण सतगुरू परमहंसजी दीक्षा दात में साहिब सतपुरूष जी की सुरति चेतनता को जीव के अंदर चन्द आलोकिक शब्दों द्वारा स्थापित कर देते हैं। विदेह–दात ग्रहण करने के उपरांत कोई विरला जन ही इस दात की महिमां पहचान कर जीते जी मोक्ष को पा लेता है। बहुत से शिष्य तो इस दात की महिमां से अनभिज्ञ ही रहते हैं परन्तु जिन शिष्यों का समर्पण सतगुरू परमहंस जी के प्रति पूर्ण होता है अर्थात जो साहिब सतगुरू परमहंस जी में साहिब सतपुरूष जी को ही देखते हैं, ऐसे समर्पित अनुयाई और शिष्य भी सतगुरू परमहंस जी की कृपा द्वारा मोक्ष को प्राप्त होते हैं। वो शिष्य जो पूर्ण समर्पित भाव से इस दात को सुरति द्वारा सिमरते हैं तथा उन्हें ध्यान में साहिब सतपुरूष जी के दर्श सतगुरू परमहंस जी के रूप में होते हैं। वे अपने संग–संग अपनी मृत 71 पीड़ियों

को भी मोक्ष दिलवाने का माध्यम बनते हैं। पूर्ण सुरतिवान साधक स्वयं तो मोक्ष पाते ही हैं तथा अपने संग–संग अपने कुल की मृत 71 पीड़ियों को भी आवागमण से मुक्त करा देते हैं।

53 – छे तन की महिमां

हर नर पायो छे शरीर, चार तक वासा मन।
स्थूल सूक्ष्म कारण महांकारण, ज्ञानदेई सूं मन।।

जगत में निरंकार भक्ति तो तीन शरीरों तक ही की जाती है, इन अवस्थाओं तक 90 प्रतिशत मन मिट जाता है तथा 10 प्रतिशत मन शेष रह जाता है। निरंकार की भक्ति में उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करने पर भी मन तरंग नहीं मिटती अर्थात काम, क्रौध और अहंकार वशिभूत होकर ऋषि, मुणि और साधु–संतों की भी अवगति प्राप्त होने की संभावना बनी रहती है, ऐसे कंई उदाहरण व किस्से ग्रंथों में उल्लेखित तथा प्रचलित हैं। निराकार दायरे की भक्ति में अधिकतर भगत–जन तीन शरीरों तक ही पहुंच पाते हैं जिससे वो तीन मुक्तियों को ही प्राप्त होते हैं जैसे :–

1 पित्र लोक 2 सात स्वर्ग 3 शुद्ध ब्रह्म लोक/सहस्त्रारसार

कोई बिरला भगत जन ही तीन शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म व अति सूक्ष्म) की भक्ति से आगे चोथे शरीर तक पहुंच पाता है, चोथे शरीर तक की भक्ति करने वालों का मन 98 प्रतिशत समाप्त हो जाता है परन्तु 2 प्रतिशत मन फिर भी उनके साथ शेष बना रहता है। तीन शरीरों से आगे चोथे शरीर में भक्ति करने वाले योगेश्वरों में संत वेद–व्यास जी, संत सुखदेव जी, संत दत्तात्रेय जी, राजा जनक जी, संत मछुन्दर नाथ जी, संत ज्ञानेश्वर जी, संत अष्टावक्र जी व संत गायत्रे जी के नाम प्रमुख हैं जिन्होंने_सुन्न लोकों में वासा पाया। इससे आगे महां–योगेश्वर केवल पांच ही हुऐ हैं। महां–योगेश्वरों में संत गौरख़ नाथ जी, संत वेद व्यास जी व त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश जी भी हुऐ हैं जिन्होंने महांसुन्न लोक में वासा पाया है। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने भी इन सभी सुन्न, महांसुन्न तथा सभी स्वर्ग लोकों की सैल अनंत बार की है। निरंकार के दायरे में सतगुरू परमहंस जी ने ये यात्राऐं मीन व पपील मार्ग के द्वारा की। निरंकार के दायरे में जितने भी आध्यात्मिक सफ़र होते हैं वे सभी मीन और पपील चाल से ही होते हैं।

कौन पग़ बिन मार्ग है चलता, कौन चक्षु बिन दृष्टि्।
कौन कर्ण बिन श्रवण होत है, कौन मुख बिन संतुष्ट।।

हरि के दर्शन पाईये, तुरिया पद के ध्यान में।

तुरियातीत में सुरति, सहल आस्मानी ध्यान में ।।

निरंकार दायरे की भक्ति में सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' महांसुन्न लोकों की यात्राऐं कंई–कंई बार कर चुके हैं और उन्होंने महां–योगेश्वरों की अवस्था को भी पार कर लिया था। भगवान निरंकार दायरे की सारी अवस्थाओं को पार करने के उपरांत निराकार भगवान सतगुरू परमहंस जी से बोले कि मेरे पास अब आप को प्रदान करने के लिए और कुछ भी शेष नहीं है इसलिए मैं तुम्हें वर्तमान के सहज सत मार्ग के सतगुरू की शरण में सौंपता हूं। अपने सतगुरू जी की शरण में जाने के लिए निरंकार भगवान जी व सतगुरू ''वे नाम जी'' के मध्य रिहाड़ी आश्रम में लगभग एक मास तक निरंतर गौष्ठी चलती रही, जिसके उपरांत सतगुरू ''वे नाम जी'' बिना और अधिक समय गंवाये अपने सतगुरू जी की शरण में जा पहुंचे। बड़े थोड़े अंतराल में ही उन्होंने सहज सत मार्ग भक्ति की उच्च परिकाष्ठा को भी पा लिया तथा साहिब सतपुरूष जी का सुरति से साक्षात्कार भी किया, जिसके उपरांत उन्होंने ''सार सब्द'' की दात को सुरति द्वारा साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से ग्रहण किया। सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने साहिब सतपुरूष जी से निरंतर प्रेरणा पाने के उपरांत ही प्रवचन करने आरम्भ किये तथा ''सार सब्द'' की विदेह दात को उन्होंने अपने साधको में बांटना प्रारम्भ किया।

वे नाम के पास दो रत्न, सार नाम सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नांहि किसी पास, सार सब्द सुरत नाम।।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' साहिब सतपुरूष जी के द्वारा दी गई विदेह दात को ही अपने शिष्यों को प्रदान करते हैं। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' को ये ''सार सब्द'' की दात सीधे साहिब सतपुरूष जी के मुख़ारबिंद से 2 बार सुरति द्वारा मिली। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' इस धरा पर अकेले ऐसे पूर्ण सतगुरू परमहंस हुऐ जिन्हें ये ''सार सब्द'' की विदेह दात 2 बार साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से मिली। आज तक इससे पूर्व ये विदेह–दात किसी को भी 2 बार साहिब सतपुरूष जी से मिली हो, ऐसी आलोकिक घटना इससे पहले कभी भी कहीं देखने सुनने में मिली है और ना ही इसका उल्लेख किसी ग्रंथ अथ्वा धार्मिक पुस्तक में मिलता है। सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने अपने सतगुरू जी से ग्रहण की गई दात को उनकी अमानत समझ कर ही अपनी सुरति में संजोय रखा है।

अमर अविनाषी साहिब जी, दिया प्रेम संदेश।
सार सब्द की दात का, दो सुरति संदेश।।

निरंकार की प्रलोभन भरी व विस्मय कर देने वाली माया नगरी में जीवात्मां निज की तरफ चलना तो दूर उस ओर झांकता तक भी नहीं। जगत में मानव भौतिक चकाचौंध में उलझा हुआ मन माया को तज ही नहीं पाता। तभी तो प्रायः सभी धर्म संप्रदायों में बंटे मानव माया वशिभूत हुऐ 2 शरीरों की अवस्था तक ही कर्म व व्योवहार किये जा रहे हैं। अगर कहीं कोई आध्यात्मिक परिकाष्ठ्ा की बात आती भी है तो कोई बिरला जन ही तीसरे शरीर अथ्वा अति सूक्ष्म (तुरिया) अवस्था तक पहुंचा हुआ मिलता है। 3 शरीरों की बातें कथाओं और लेखों में ही मिलती हैं। मुख, मन व अंतःकरण की भक्तियां जगत में सभी किये जा रहे हैं जो केवल भगवान निरंकार जी तक ही पहुंचती हैं। निरंकार भगवान के अनगिनत नाम होने के कारण उन के प्रति लोगों के अलग–अलग दृष्टि्कोण होने से जग में द्वैष भाव तथा महां भ्रम सा उत्पन्न होने लगा है। भगवान, औ३म, ऊँ, ईक औंकार कर्ता पुरख, खुदा, ईश्वर, अल्लाह व क्राईस्ट आदि सभी निरंकार के ही तो नाम हैं परन्तु किसी एक नाम से निरंकार को मानने वाले अनुयायी अपने मत्त के विपरीत किसी दूसरे नाम से निरंकार को मानने वालों से सर्वथा भिन्न होते हैं और एक दूसरे के प्रति द्वैष भाव से ग्रसित रहते हैं। एक बड़ी विचित्र मानव विडम्भना यह है कि सभी इस भाव पर एक–मत्त हैं कि इस सृष्टि् का रचियता तो केवल एक ही मालिक है तथा सभी कायाधारी जीव भी उसी एक मालिक की ही रचना हैं।

अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे।
एक नूर सब जग उपझा, कोन भले कोन मंदे।।

वासुदेव कटुम्भकम, सारी ख़लक–काईनात का वाली खुदा, **GOD IS ONE** ईत्यादि यह सब बातें अलग–अलग संप्रदायों के ग्रंथों में वर्णित तो हैं परन्तु अपने–अपने निजि स्वार्थ के वशिभूत हुआ मानव कथनी और करनी के अंतर को भलिभांति जानते व समझते हुऐ भी इस बात पर अमल नहीं कर पा रहा है और अपने–अपने मत्त व सम्प्रदायों के विचारों में ही रमा हुआ है।

प्यारो इतना जान लो, मन सूं बना संसार।
मन माया दुख देत है, इस पर करो विचार।।

कलयुग के वर्तमान काल में मानव जनसंख्या लाखों–करोड़ों के पार होती हुई अरबों तक जा पहुंची है। वर्तमान काल में ये जनसंख्या लगभग 7 अरब 50 करोड़ से भी पार हो चुकी है। इस पूरी जनसंख्या के लगभग एक–तिहाई भाग से भी अधिक ईसाई मत्त, 25 प्रतिशत के करीब ईस्लाम मत्त, लगभग 15 प्रतिशत के आसपास हिन्दु संप्रदायः, 6 प्रतिशत बौद्ध मत्त और बाकि अनगिनत मत्त व संप्रदायों को मानने वाले मानव ईस धरा पर रहते हैं। इन सब में से 98 प्रतिशत से अधिक मानव पूजा, ईबादत, सज्जदे, बंदगियां तथा प्रार्थनाऐं 2 शरीरों की अवस्थाओं तक ही सीमित रह कर करते हैं। कोई बिरला जन ही तीसरे शरीर तक पहुंच पाता है और चौथे शरीर की अवस्था तक पहुंचने की तो कोई सोच भी नहीं पाता। निरंकार के दायरे की सभी भक्तियां केवल 4 शरीरों की अवस्थाओं तक ही सीमित हैं।

नर्क का चहुं ओर प्रचार है, मन रचे प्रपंच।
सत तो बिन प्रचार है, काल की सीमा प्रपंच।।

चार शरीरों से आगे की भक्ति निरंकार के दायरे में संभव ही नहीं। भगवान निरंकार को भजने वाले अनुयायी अनगिनत मत्तों और संप्रदायों में बंटे हुऐ हैं। इनमें से जो मत्त व सम्प्रदायः ग्रंथों व पुस्तकों को पूजते हैं वे तो पहले दो शरीरों से आगे कदापि जा ही नहीं पाते तथा केवल अपनी एक धर्म सम्मत ग्रंथ रूपी पुस्तक को ही ज्ञान की अंतिम परिकाष्ठा मान लेते हैं और काल व परिस्थितियों के अनुसार किसी भी नवीन ज्ञान को ग्रहण व समावेश करने से इन्कार कर देते हैं। ऐसे संप्रदायः व मत्तों को मानने वाले मानव कुछ काल उपरांत कट्टरता व विद्वैष की भावना से ग्रसित हो जाते हैं। ऐसे संप्रदायः वाले मानव संवेदनहीन प्रवृत्ति के होते हैं तथा दूसरों की अच्छी ज्ञान भरी बाते सुनना भी पसंद नहीं करते। संवेदनहीनता समाप्त होने पर ये निंशंस व क्रूर वृत्ति को प्राप्त हो जाते हैं तथा नरीह जीवों को मार कर खाने के अपने कुकृत को भी धर्म सम्मत कार्य कह कर के करते हैं और अपने क्रूर स्वभाव को बहादुरी का जामा पहना कर महिमां मंडित करते हैं। माना कि आबादी का अधिकांशता 98 प्रतिशत भाग तो पहले (स्थूल) शरीर से ही सभी कृत्यों को अंजाम दिये जा रहा है और दूसरे (सूक्ष्म) शरीर में भी अधिकतर समय मायावी सपनों में ही खोया रहता है। मगर बड़ी विचित्र बात तो यह है कि मानव तो तीसरे (तुरिया) शरीर की अवस्था तक पहुंचने के बारे में ही नहीं सोचते विचारते तो चौथे (तुरियातीत) शरीर की बात ही क्या ?

भक्ति बिन थोथे सभी, सच्ची भक्ति बिन शैतान।
मानव जन्म दुर्लभ प्यारो, बिन सतगुरू दुख महान।।

अनंत लूट होत घट भीतर, घट का मर्म ना जान।
कामिनी रूप सकल संसार, इसे तूं माया जान।।

त्रिलोकि माया में भ्रमित मानव पहले 2 शरीर की अवस्थाओं तक ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। मानव की दैनिक दिनचर्या में प्रातःकाल 6 बजे से रात्री के 11 बजे तक स्थूल शरीर ही कार्यावित होने में अपना अहम योगदान देता है परन्तु प्रायः रात्री के 11 बजे से लेकर प्रातः 6 बजे तक सूक्ष्म शरीर द्वारा ही मानव गहन निंद्रागोष में झकड़ा हुआ इसी में ग्रस्त व मग्न रहता है। मानव के पहले 2 शरीर इतने प्रबल व बलशाली हैं कि उसका सारे का सारा जीवन अपनी आग़ोश में ही व्यतीत करवा देते हैं। इन दो शरीरों की अवस्था तक वाले मानव मोक्ष तो दूर कभी स्वर्ग व सुन्न लोकों तक में भी वासा नहीं पा सकते। ये दोनों स्थूल व सूक्ष्म शरीर अपने प्रबल वेग़ से बाकी चारों शरीरों (तुरिया, तुरियातीत, ज्ञानदेई व विज्ञानदेई) को कार्यशील अर्थात क्रियांवित ही नहीं होने देते। हां ! अन्जान वश कभी–कभी गंभीर व गहन कार्य परिस्थिती में मानव अंतःकरण की गहराई से

विचार विमर्श करने के लिए तीसरे शरीर का प्रयोग तब भी कर ही लेता है। तीसरे शरीर में भक्ति करने वाले मानव स्वर्ग लोकों में स्थान पाते हैं। 2 शरीरों के प्रबल वेग़ के संग–संग त्रिलोकि माया पसार के बावजूद लाखों में कोई बिरले मानव सब बाधाओं को पार कर के तीसरे व चौथे शरीर से निरंकार भगवान की भक्ति की उच्च परिकाष्ठा में पहुंच ही जाते हैं। इन अवस्थाओं में शरीर तजने के उपरांत मानव स्वर्ग व सुन्न लोकों में वासा पाते हैं।

54 – आनंद बोध

सार नाम की मुक्त शिला पर, आसन अचल बधांवे।
सदा आनंद सुख दुख सूं न्यारा, जीवित मोक्ष दिलावे।।

बिन सतगुरू कृपा के, कैसे करे कोई भव पार।
निकसे भिन्न भिन्न धुण चिराग़ सूं, कोई भेदी पावे पार।।

जगत में निरंकार के भिन्न–भिन्न रूपों की सर्गुण व निर्गुण पूजा–आराधना करने वाले ऋषि–मुणि, पंडित, सन्यासी व गुरूआजन अपने–अपने ईष्ट को महिमां–मंडित करने और उन्हें श्रेष्ठतम साबित करने के लिए अपने प्रवचनों में संज्ञान में आई हुई हर श्रेष्ठ बात को उनके गुणगान के साथ ही जोड़ देते हैं जिससे महां भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। अधिकांशतः निराकार दायरे के गुरूआजन अपने निज आध्यात्मिक अनुभव से अनभिज्ञ होते हैं तथा केवल अपनी जीविका के हेतु कथा वार्ता में संलग्न रहते हैं। निराकार दायरे के लगभग 90 प्रतिशत से भी अधिक गुरूआजन अपने निज आध्यात्मिक अनुभवों से कौसों दूर होते हैं। ऐसे गुरूआजन व कथा वाचक बिना किसी तथ्य और प्रमाण को जाने अनुचित ढंग से हर श्रेष्ठ सम्बोधन को अपने ईष्टों के साथ जोड़ने की चेष्ठा करते हैं जिससे आगे आने वाले भविष्य काल में अल्पज्ञानी मानव समाज में मोक्ष पथ से विमुख हो जाते हैं। ऐसे गुरूआजन अपनी हर मनभावन ईच्छा के पूर्ण होने तथा संतुष्ट होने पर अपने आप को अत्यधिक प्रसन्नचित्त महसूस करते हैं जिसे वे 'आनंद' कह के संबोधित करते हैं। जबकि 'आनंद' का अनुभव तो मानव काया से परे का विषय है जिसे शब्दों में तो ब्यान ही नहीं किया जा सकता। मानव मज़ा, सुख–दुख, कष्ट–क्लेश और संतुष्टी के भाव आदि को तो केवल इस शरीर से ही अनुभव कर सकता है अर्थात उन्हें भौगता है। सुख व दुख तो इस त्रिलोकि सम्मोहनी माया के ही अंग हैं और अगर इस काया को देखें तो ये भी तो माया ही है। इसी कारण दुख–सुख और मज़े के अनुभवों को महसूस करने के लिए ही मानव अपनी काया का प्रयोग अपने सैंचित कर्मों अर्थात प्रालब्ध के अनुसार करता चला आ रहा है। परन्तु 'आनंद' का अनुभव तो इस नाशवान काया से परे पूर्ण सुरतीवान हो के हंसा रूप में ही किया जा सकता है।

सतगुरू गुरू में भेद है, सतगुरू गुरू में भाव।
गुरू काल के जाल में, सतगुरू मुक्त सब्द का दाव।।

जगत मानव तो निज हंसा रूप भूला हुआ स्वयं को काया ही समझ कर जिये जा रहा है जिसमें सुख–दुख दोनों ही मिलते हैं, निज को भूल कर मोहनी माया तन्द्रा वृति में लिप्त मानव

अनगिनत जन्मों से सोया पड़ा है। निज को जाने बिना अर्थात मन–माया से मुक्त हुऐ बिना 'आनंद' का आभास तो हो ही नहीं सकता। जगत मानव व निरंकार दायरे के बड़े–बड़े ऋषि–मुणि, सन्यासी योगी यत्ति व गुरूआजन मन तरंग से मुक्त हो ही नहीं पाते। स्वंय मन तरंग में बुरी तरह से झकड़े हुऐ गुरूआजन भोली–भाली व अज्ञानी जीवात्माओं को और अधिक भ्रमित करके भगवान निरंकार माया जाल में निरंतर उलझाये चले जा रहे हैं।

पूर्ण संत जब मिल गयो, दुख सुख एको समान।
हर दम सेवा लीन रहें, प्रेम ने थामी कमाण।।

सतगुरू सुख का विश्राम बने, प्रेम की होत बरसात।
ऐसे अनन्य भक्ति भाव की कुण्झी, सार सब्द की दात।।

सहज सत्त मार्ग के पूर्ण सतगुरू संत परमहंस ही केवल मन–माया से मुक्त होकर सुरति से व्यवहार करते हैं, तभी तो पूर्ण सुरतिवान होने के कारण उन्हें सुरति पुण्झ साहिब सतपुरूष जी के नाम से 'साहिब' व 'परमहंस' कह के सम्बोधित किया जाता है। परमानंद साहिब सतपुरूष जी का गुणगान गाने वाले पूर्ण–संत सतगुरू परमहंस ही पूर्ण सुरतिवान होने से 'आनंद' को अनुभव करते हैं। एक बार जो 'आनंद' का अनुभव कर लेते हैं वो फिर कभी भी मन–माया में लिप्त नहीं होते। परन्तु निरंकार दायरे के गुरूआजन अक्सर मन तरंग में बह ही जाते हैं जिनके अनेकों ऐसे उदाहरण सहित प्रसंग जगत में प्रचलित हैं। ठीक ऐसे ही जगत का हर पदार्थ व शब्द द्वैत पर ही आधारित है, और यही द्वैत ही इस मायावी सृष्टि् का आधार है।

55 – सत्त की परिकाष्ठा

नाम सत्त तो सतगुरू सत्त, सत्त में सत्त समावे।
सत्त दात साधक संग, नाम सुरति में सत्त समावे।।

जगत गुरूआजन 'सत्त' सब्द का ब्ख़ान अपने प्रवचनों व कथाओं में अत्यधिक मात्रा में प्रयोग करते हैं जबकि ये 'सत्त' तो त्रिलोकि सत्ता से परे सहज सत मार्ग की सत्ता का विषय है अर्थात मन–माया से पूर्णतः मुक्त आत्म 'हंसा' रूप है। त्रिलोकि माया नगरी में फंसा 'जीवात्म' अहम और अहंकार को त्याग कर सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरण में जब समर्पित हो जाता है तब सतगुरू कृपा से साधक बन ''सार सब्द'' की अनमोल दात को सतगुरू परमहंस जी से सुरति द्वारा ग्रहण करता है। सुरति द्वारा ''सार सब्द'' के सिमरण करने पर जीवात्म मन–माया तरंग से पूर्णतः मुक्त होकर सुरतिवान होने के पथ पर अग्रसित हो जाता है। पूर्ण सुरतिवान जीवात्मां ही तो संत सतगुरू परमहंस कहलाती है। पूर्ण संत सतगुरू परमहंस ही तो 'सत्त' रूप होते हैं। 'साधक–सत्त' व 'सतगुरू–सत्त' दोनों 'सत्त' मिलकर पूर्ण 'सत्त' अर्थात साहिब सतपुरूष जी में समा जाते हैं

तथा पूर्ण मोक्ष अर्थात सतलोक को पा जाते हैं। त्रिलोकि में 'सत्त' की सत्ता तो है ही नहीं। निरंकार भक्ति के गुरूआजन अज्ञानता वश इस 'सत्त' शब्द का प्रयोग कर जीवों को भ्रमित करते हैं।

आत्म सुरति संत चेतन करें, मन माया सूं पार।
सुरति संभाल पग़ आगे धरो, करें साहिबन दीदार।।

सुरति खुमार ऐसा चढ़े, सुरति ही रह जाये।
जन्म मरन की डौर भी, काल संग मिट जाये।।

इन्हीं अल्प ज्ञानी गुरूआजनों ने बड़ी चतुराई व होश्यारी से निरंकार दायरे के शब्दों 'सच और झूठ' को 'सत्य और असत्य' शब्दों के स्थान पर ''सत्त'' और असत्त शब्दों का प्रयोग अपने प्रवचनों और लेखनी में करना आरम्भ कर दिया जो सर्वथा मर्यादाहीन कृत है तथा 'सत्त' शब्द का प्रयोग तो सर्वथा अनुचित है। इस 'सत्त' शब्द के निरंकार दायरे से परे होने के कारण इसका कोई विलोम शब्द है ही नहीं, तभी तो इस 'सत्त' को 'विदेह' सब्द भी कहते हैं। इस 'सत्त' दात को तो सुरति द्वारा ही पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरण में जा के ग्रहण किया जाता है।

बहु बंधन ते बांधेया, ईक विचारा जीव।
जीव बैचारा क्या करे, जे ना छुड़ावे पीव।।

संसार मृग जाल है, झूठी झिलमिलाती प्यास।
झूठी माया देख कर, मृग तृष्णा जगावे प्यास।।

साध पाँव साहिब जो लागे, यही अचम्भा तेरा।
सुरति आगे निरति नाचे, यही प्राणों का फेरा।।

निरंकार की भक्ति तो चौथे शरीर तक ही सीमित है और इस अवस्था में योगेश्वर तथा महां–योगेश्वर ही पहुंच पाते हैं जहां पर इनका मन अधिकांशता तो मिट जाता है परन्तु अभी भी इन सभी के 1 प्रतिशत मन से युक्त होने के कारण ये पूर्णतः मन से मुक्त कभी नहीं हो पाते। ये सभी योगेश्वर व महां–योगेश्वर निरंकार के लोक अर्थात सुन्न–महांसुन्न में वासा पाते हैं तथा ये चन्द ही पलों में निरंकार के किसी भी लोक में और धरा पर कहीं भी आ जा सकते हैं। इसके साथ ये बहुत सारी ऋद्धि–सिद्धियों से भी युक्त होते हैं। निरंकार की भक्तियां इन 4 शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म, तुरिया व तुरियातीत) तक ही सीमित हैं। चौथे शरीर के परे तो कोई बिरला जन ही पहुंच पाता है। चूंकि निरंकार की भक्ति 4 शरीरों की अवस्था तक ही सीमित है, इन भक्तियों से

चार मुक्तियों तक जाया जा सकता है जो कि निरंकार की भक्ति का अंतिम पड़ाव है।

सत्संग छे लाभ के दान दे, प्रेम शांति हंसा रूप।
हर शंका निवारण सुरति एकाग्र, आत्म शक्ति स्वरूप।।

पाँचवें व छठे शरीर की भक्ति कर पाना तो निरंकार के दायरे में संभव ही नहीं। इन अवस्थाओं तक सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाये बिना पहुंचा ही नहीं जा सकता। करोड़ों में कोई बिरले साधक जन ही मन माया से पार होकर त्रिलोकि माया को त्याग कर सतगुरू परमहंस जी की कृपा द्वारा इन अवस्थाओं तक पहुंचते हैं।

आशा तृष्णा सब छोड़ कर, सतगुरू चरणी सुरति लाग।
सतगुरू कृपा बरसी तो, हंसा बन पाये निजघर वास।।

आत्म हंसा जब हो गई, पल में दर्शन पावे।
अब हंसा जग में ऐसे रहे, जैसा सतगुरू चावे।।

छे तन सूं बाहर जब आया, सुरति संग सतगुरू आप।
सुरत कमल में ताड़ी लागे, हंसा निजघर जाये आप।।

सहज सत मार्ग की भक्ति तो तीन शरीरों के आगे चोथी अवस्था 'तुरिया' से ही आरम्भ होती है जो निरंकार की भक्ति का अंतिम पड़ाव है। सहज सत मार्ग की भक्ति की अवस्था तुरिया अवस्था से प्रारम्भ होकर सतगुरू परमहंस लोक 'सुरत–कमल' की अवस्था तक है। सहज सत भक्ति मार्ग में साधक के सतगुरू लोक 'सुरत–कमल' में पहुंचते ही वह मोक्ष पद का अधिकारी बन जाता है। 'सुरत–कमल' लोक में वो ही साधक पहुंचते हैं जिनके भव–बंधन कट जाते हैं। 'सुरत–कमल' मोक्ष पथ का प्रथम पड़ाव होता है। 'सुरत–कमल' और 'मानसरोवर' 'निजधाम अर्थात सतलोक' के ही अंग हैं। यहां पहुंचने पर जीव मन–तरंग अर्थात आशा तृष्णा से पूर्णतः मुक्त हो जाता है जिससे वह सदा के लिए आवागमण से छूट जाता है।

हर नर पायो छे शरीर, चार तक वासा मन।
स्थूल सूक्ष्म कारण महांकारण, ज्ञानदेई सूं मन।।

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की वाणी अनुसार 'सुरत–कमल व मानसरोवर' भी निजधाम जैसे ही हैं, यहां पर साधक हंस रूप होने पर भी साहिब सतपुरूष जी के अमृतमयी साक्षात्कार से वंचित होते हैं। सुरत–कमल सतगुरू परमहंस जी का निज लोक है जहां पर सतगुरू परमहंस जी अपने शिष्यों को अपने संग मानसरोवर तक ले जाते हैं, मानसरोवर में सिमरन ध्यान करने से मन पूर्णतः मिट जाता है तथा साहिब सतपुरूष जी सतगुरू परमहंस रूप

में प्रकट हो साधक को अपने संग निजधाम अमरपुर ले जाते हैं। इस अवस्था को 'तुरियातीत' अवस्था कहते हैं। 'तुरिया और तुरियातीत' के आध्यात्मिक सफ़र विहंगम चाल से ही किये जाते हैं जिसके द्वारा साधक हंसा बन चन्द ही पलों में असंख्य मीलों की दूरी तय करके सतलोक बेगमपुर पहुंच जाते हैं।

योग अवस्था तुरिया और तुरिया तीत है, कारण महांकारण धारें शरीर।
ज्ञानदेई तुरियातीत सूं पारा है, सतगुरू कृपा सूं पार बिन शरीर।।

विज्ञान देई छटा शरीर है, जिस में कुछ आनंद।
विहंगम चाल सूं निजघर जावें, पावें पूर्ण परमानंद।।

तुरियातीत के पार की अवस्था में साधक कंई बार सतलोक के सफ़र कर चुका होता है तथा उसने कंई बार साहिब सतपुरूष जी के साथ सुरति द्वारा गौष्ठियां भी की होती हैं तथा साहिब साक्षात्कार कर के साहिब सतपुरूष जी में ही रमा होता है। इस अवस्था में पलक झपकते ही पूर्ण सतगुरू परमहंस जन सतलोक अमरधाम पहुंच जाते हैं तथा भ्रमण करने उपरांत पलक खुलते ही देह में पुनः प्रवेश कर वापिस लोट आते हैं। इस अवस्था को 'तुरियातीत के पारा' तथा इस चाल को 'परा विहंगम चाल' कहते हैं।

आत्म में परमात्म दर्शयो, परमात्म में ही जाई।
हंसा अब आप दरशे, आप में आप समाई।।

जीते जी मरने की जो बात पूर्ण संत परमहंसों द्वारा अक्सर की जाती है वह इसी अवस्था का नाम है जिसे प्राप्त करने पर पूर्ण संत–जनों को 'परमहंस' की उपाधि से सम्बोधित किया जाता है। सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' इसी परा विहंगम चाल के द्वारा अनगिनत बार सतलोक के सफ़र कर चुके हैं तथा साहिब सतपुरूष जी से सुरति द्वारा अनेकों बार गौष्ठियां भी कर चुके हैं। कबीर साहिब जी के बाद इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने वाले दूसरे पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ही हुए हैं जिन्होंने ''सार सब्द'' की विदेह दात सीधे साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से ही सुरति द्वारा ग्रहण की है। शेष निजधाम के सभी सतगुरू परमहंसों व पूर्ण संत–जनों ने कबीर साहिब जी से ही विदेह दात अर्थात 'सार सब्द' को ग्रहण किया है। निजधाम के बहुत से संत सतगुरूओं ने तो अपने–अपने सतगुरू से ही इस विदेह–दात को ग्रहण किया होता है। जैसे :–

बाबा नानक जी, साहिब ब्रह्मानंद जी, साहिब तुलसीदास हाथरस जी, दरिया साहिब जी, निजधामवासी संत मीरां जी व संत धर्म दास जी ईत्यादि। ये सभी संतजन

सतलोक में ही विराजमान हो कर परमहंस कहलाते हैं।

साहिब अमरलोक के स्वामी, सुरति उनकी वाणी।
सुरति का लोक प्यारा, सुरति अमरलोक लो जानी।।

पिण्ड ब्रह्मण्ड के पार वह, सतपुरूष निजधाम।
सार सब्द जो कोई गहे, पावे तहां विश्राम।।

'सतगुरू परमहंस सुरति महिमां' के इस उपरोक्त लेख में जिज्ञासुओं व श्रदालुओं के लिए परा भक्ति अर्थात सहज सत मार्ग की महिमां का ब्ख़ान व गुणगान किया गया है, साथ ही निरंकार भक्ति की महिमां का उल्लेख व गुणगान भी किया गया है ताकि जिज्ञासुओं को दोनों भक्तियों के अंतर व भेद का ज्ञान हो सके।

भगवान निरंकार के दायरे के गुरूजनों द्वारा जो शब्द दीक्षा में दिये जाते हैं वो पहले से ही ग्रंथों व धार्मिक पुस्तकों में कलमबद्ध होते हैं। कुछ जगत गुरू तो ईष्टों के नाम या उनसे सम्बंधित मंत्र ही दीक्षा में देते हैं, जिनके सिमरन व ध्यान से साधक निरंकार के दर्शन अपने ईष्ट के रूप में ही प्राप्त करता है। जहां निरंकार भक्तियों के द्वारा भौतिक जगत के सुख साधन तथा अल्प मुक्तियां तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु मन (मुख, अंताकरण, भौतिक जगत पदार्थ भी मन रूप) से मन रूपी ईष्टों (देवी–देव, आराध्य व स्वंय निरंकार भी मन रूप ही है) की भक्ति करके जीव कभी भी मन (जगत–माया) से मुक्त नहीं हो पाता, तभी तो पूर्ण मोक्ष सहज सत मार्ग (परा भक्ति) के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आये बिना संभव ही नहीं। सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी 6 शरीरों के पार हो के सतलोक पहुंच कर साहिब सतपुरूष जी का साक्षात्कार करते हैं जिसके उपरांत वे सतपुरूष जी से ''सार सब्द'' की दात सुरति द्वारा ग्रहण करते ही साहिब सतपुरूष जी का रूप ही हो जाते हैं। तभी तो सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरूओं को साहिब सतगुरू व परमहंस कह कर सम्बोधित भी किया जाता है। पूर्ण सतगुरूओं के साधक–जन साहिब सतपुरूष जी का साक्षात्कार अपने–अपने सतगुरू परमहंस के रूप में ही करते हैं। साहिब सतपुरूष जी स्वंय सुरति पुण्झ हैं व हंसा–सुरति साहिब सतपुरूष जी का निज अंश है तथा जो दात सतगुरू परमहंस जी प्रदान करते हैं उसमें भी साहिब सतपुरूष जी का सुरति रूप में वास होता है। तभी तो साधक–जन जब सुरति द्वारा ''सार सब्द'' का सिमरन करते हैं तो साहिब सतपुरूष जी की सुरति, आत्म–सुरति (हंसा + मन = आत्म) को चेतन अवस्था में ले आती है जिससे जीव सुरतिवान हो के मन तरंग से मुक्त हो जाता है तथा सतगुरू परमहंस जी की कृपा द्वारा जीवन के एकमात्र लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसित हो जाता है।

सुरति निरति मन पवन, उल्टा स्वांसा हो आप।
लेख समाना आलेख में, कर्ता निज हैं आप।।

जगत में सुरति महिमां को ले कर एक भ्रम सा है कि सुरति है क्या ? इसी को विस्तार से सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने अपने प्रवचनों में यूं कहा कि ये हंसा अपने आप में सुरति रूप ही है, हंसा सुरति तो आकार, रंग, रूप, गंध व स्पर्श से परे है तथा ये जगत के किसी भी कार्य व भाव में लिप्त नहीं होता, तभी तो संतों की वाणी अनुसार हंसा (आत्म) निर्लेप व अजर–अमर–अविनाषी है तथा निरंकार द्वारा रचित इस त्रिलोकि में महां प्रलयः काल में सब कुछ नाषवान हो जाता है।

56 – महांकाल का क्रुर भक्ति प्रपंच

हमने रात ना जानी, सुन्न तत्व जानो इसको।
आशा तृष्णा सुख दुख, जानो रात इनको।।

निरंकार द्वारा रचित त्रिलोकि में जीवात्माओं को भ्रमित करने के लिए ही मोहनी माया जंजाल रचा गया है। तभी तो कर्मन प्रधानता होते हुऐ भी अज्ञानता वश हर दुराचारी मानव किसी ना किसी ईष्ट की भक्ति तो किये ही जा रहा है, जैसे अधिकतर डाकू–चौर, ठग व कातिल प्रवृत्ति के मानव आद्यशक्ति के मां काली के विभिन्न रूपों की भक्तियां करते हैं; वहीं लौभी, लालची, दम्बी प्रवृत्ति के मानव आद्यशक्ति के मां लक्ष्मी रूप की पूजा करते है; गवेईये, नाद, भांड, संगीतज्ञ व बड़े–बड़े ज्ञानी जन आद्यशक्ति के ही मां सरस्वति रूप की आराधना करते दिखते हैं; तांत्रिक, अगोरी, नशेड़ी व छल कपट प्रवृत्ति के मानव अक्सर महादेव भोले नाथ जी व मां आद्यशक्ति के चण्डी रूप की आराधना करते हैं और अंत में धन, वैभव, सौन्दर्य कामी, भौगी व तीव्र भौतिक उन्नत्ति की चाह लिए हुऐ मानव देवों के देव भगवान विष्णु जी की आराधना करते हैं। इसी तरहं बहुत से माया से भ्रमित नित्कृष्ट प्रवृत्ति के मानव अपने ईष्टों की अपने–अपने ढंग से पूजाऐं किये जा रहे हैं। ऐसी प्रवृत्तियों वाले मानव 99 प्रतिशत से भी अधिक मांसाहारी ही होते हैं तथा लगभग 90 प्रतिशत मानव नशों का सेवन भी करते हैं। ऐसे मानवों की दूसरों के प्रति संवेदनाऐं मर चुकी होती हैं। फिर भी तनिक ध्यान दें ! उपरोक्त भक्तजन निम्न नीच प्रवृत्ति के कार्य करते हुए भी भक्तियां करते हैं तथा उनके अंतःकरण में नीच विचारों या कुटिल भावों से युक्त होने के बावजूद भी निराकार भगवान उनकी दृढ़ व अपार श्रद्धा को देखते हुऐ उनके मनोरथ और मनोकामनाऐं पूर्ण करते हैं। ऐसे भक्त जन और अधिक बलिष्ठ हो कर के समाज में भद्र, विवेकी, सहनशील व साधारण मानवों का जीना ही दूबर कर देते हैं।

सब कुछ जानते हुए भी निराकार भगवान इन अताताई प्रवृत्ति वाले मानवों की मांगें शीघ्र पूर्ण कर के उन्हें फलिभूत करते हैं क्योंकि निरंकार भगवान जीवात्माओं को जगत माया से मुक्त होने ही नहीं देना चाहते अपितु ऐसी आत्मांओं को तो वे और अधिक माया में भरमा देते हैं। ऐसे जीव उच्च प्रालब्ध में से श्रेष्ठ कर्मों के फल ईष्टों से मांग–मांग कर समय से पूर्व ही भौग लेते हैं। इसके उपरांत अगामी आने वाले जन्मों में ऐसे जीव अपने आप को प्रेत योनियों में घौर कष्टों को पाते हैं, पूर्व जन्म में जब जीवात्मां राज–योग से युक्त था तब भी वह ईष्टों से मांग ही रहा था और इस वर्तमान जन्म में भी जब वह तामस योग से युक्त हो कर घौर विपत्ति में जी रहा है तो भी वह निरंकार रूपी ईष्टों से निरंतर मांगे ही चला जा रहा है परन्तु प्रालब्ध कौष में श्रेष्ठ सैंचित कर्मों के अभाव के कारण उसकी मांगें अनसुनी कर दी जाती हैं। ऐसा विचित्र और

विस्मयकारी जाल ही तो ये त्रिलोकि मोहनी माया पसार है।

दुखिया सुखिया नेता जन, सबै मन वश पड़े।
सबका पात्र खाली पड़ा, बिन पैंदा कैसे भरे।।

तीन पाँच पच्चीस का पिंझरा, ता में तूं रहा भरमाई।
चल हँसा सतलोक को, पड़ा काल वश आई।।

यही मांगें मांगना मानव को मोक्ष पथ की ओर अग्रसित होने ही नहीं देता। मानव चाहे श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम अथ्वा निम्न से निम्न पथ पे क्युं ना चले, मिलता तो उसे केवल प्रालब्ध अनुसार ही है परन्तु मांगें मांगने से प्रालब्ध से सैंचित श्रेष्ठ कर्म फल देवी–देव समय से पूर्व उसे उपलब्ध करवा देते हैं जो आगे भविष्य काल में मानव के दुखों और विपत्तियों का कारण बनते हैं। सारे देवी–देव व निराकार स्वयं भी कर्म फल के अटूट बंधन से बंधे हैं और प्रालब्ध से कम अथ्वा अधिक कुछ भी मानव को प्रदान करने में असमर्थ होते हैं। प्रत्येक प्रलयः उपरांत हर बार सृष्टि् के उत्पति और संचालन हेतु ही सारे देवी–देव और ईष्ट इस त्रिलोकि प्रबंधन में कार्यरत हो के अपनी–अपनी भूमिका निभाते हैं। मानव सदा सुख और खुशी पाने के लिए ही भक्तियां करता है। सुख तो वह मांग–मांग के लेता है मगर दुख उसे बिन मांगे ही मिलते जाते हैं। सुख व दुख तो उसे कर्मों के फल अर्थात प्रालब्ध अनुसार ही मिलते हैं। जीवात्म कायाधारी है तो सुख और दुख अवष्यमभावी हैं ही, इन्हें तो हर हाल में मानव को भौगना ही होता है।

कामी कबहु ना सहज भजे, मिटे ना संशय मूल।
ये अवगुण अति कठौर, जिस के डार ना मूल।।

काम है माया मोहिनी, कामधु से तजि ना जाये।
ता कयामत तक ताकि, दुर्गति रूक ना पाये।।

57 – ''राजूं नर्क – नर्कूं राज''

साहिब जही इस संसार में, मन ने लिया है लूट,
तीन लोक चारों दिशा, माया की ही लूट।।

प्रेम आप में है बसता, प्रेमी दूर चाहे होये।
बिन आत्म प्रेम ना उपझे, लख यत्न करे जे कोये।।

भूले भटके भी अगर कहीं मानव उच्च कर्म करता हुआ, श्रेष्ठतम व्योवहार करते हुए निस्वार्थ व मुक्ति भाव लिए भक्ति करता भी है तो निरंकार भगवान उसके ईष्ट रूप में प्रकट होकर उसे वरदान मांगने के लिए प्रेरित करते हैं। निरंकार दायरे की भक्ति में मन कदापि नहीं मिटता, ये तुरंत प्रकट होकर उन्हें भरमा कर मन भावन फल मांगने के लिए विवश कर देता है जिससे मानव मोक्ष पथ से भटक कर पुनः निरंकार भक्ति में ही उलझ कर रह जाता है। कहीं कोई बिरला भक्त जन अडिग रह कर निस्वार्थ और निरंतर भक्ति करता रहे तो भी वह ऋषि–मुणि, साधु–महात्मांओं की उपाधि से आगे बड़ कर योगी–योगेश्वरों की श्रेणी में आ पहुंचता है। इस अवस्था में भक्त जन संपूर्ण ऋद्धि–सिद्धियों से युक्त होने के कारण अभिमान जाग्रत हो जाता है जिस के कारण वे मन तरंग में बह ही जाते हैं क्योंकि योगी–योगेश्वरों की अवस्था में भी मन पूर्णतः नहीं मिटता।

ऊँ सोहम जग ध्यान धरे, तां सूं मोक्ष ना होये।
नाम निरंझन ह्रदय बसे, कर्म जाल छूटे ना कोये।।

मानव के भीतर मन के अंतःकरण में स्वयं निराकार भगवान सुन्न रूप में ही वास करते हैं तथा तुरियातीत अवस्था प्राप्त अपने भक्त जनों अथ्वा योगी–योगेश्वरों को अपना दर्शन सुन्न रूप में देते हैं और सृष्टि् प्रलयः उपरांत आद्यशक्ति व जीवात्मां सहित अहोरात्री काल में स्वयं भी सुन्न में ही समाहित हो जाते हैं। त्रिलोकि के हर स्थान पर सुन्न रूप में निरंकार विद्यमान हैं तभी तो निरंकार भक्ति की उच्च प्रकाष्ठा वाले भक्त जन निरंकार को ही पांचवा तत्व सुन्न रूप मानते हैं।

संतों की सुरति आँख सूं,अमृत बरसे अपार।
सच्चे साधक निज भजते, मिले भक्ति भण्डार।।

हँसा देखे पर कहे कैसे, किस को रूप विदेहि प्यारा।
सुरति में रहते सुरति समाते, जैसे दूध में घी प्यारा।।

सहज सत मार्ग भक्ति अथ्वा परा भक्ति मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंसों की शरणी आये बिना मोक्ष मिल ही नहीं सकता, क्योंकि हंसा मूलतः सुरति–रूप है तथा साहिब सतपुरूष जी सुरति पुण्झ सब हंसों के मूल हैं। सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस अपने अनुयायियों को सुरति द्वारा ही दीक्षा देते हैं तथा सुरति में ही सिमरन विधि प्रदान कर जीवात्मां की सुरति को चेतन कर हंसा–रूप (चेतन–सुरति) प्रदान करते हैं। हंसा सुरति–रूप में ही विहंगम चाल द्वारा सतगुरू परमहंस जी के संग निजधाम पहुंचता है। परन्तु निरंकार भगवान के दायरे की भक्ति में निरंकार–रूपी मन–माया की ही प्रधानता है। निरंकार भक्ति में प्रालब्ध अनुसार कामनाऐं और ईच्छाऐं तो पूर्ण की जा सकती हैं या इससे बड़ कर स्वर्ग, सुन्न लोक सहित चार मुक्तियां भी प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु जीवात्मां आवागमण से मुक्त कदापि नहीं हो पाता। जीवात्मां के प्रालब्ध भौग में से श्रेष्ठ कर्मों का फल क्षीन होने पर जीवात्मां राज–योग से युक्त हो के मृत्यु लोक में पुनः मानव रूप में जन्म लेता है। अति तीव्र राज–योग से युक्त होने से तमोगुण की तुरन्त वृद्धि होती

है, जिससे जीवात्मां काम–भौग–विषय–वासना में लीन होकर नीच कर्मों की ओर अग्रसित हो जाती है। प्रालब्ध में नीच कर्मों की वृद्धि होने से जीव नर्क योनियों की ओर प्रस्थान कर जाता है। तभी तो निरंकार दायरे के ऋषि–मुणि व गुरूजन अपनी वाणि में अक्सर कहते हैं कि महांकाल चक्र में ''राजूं नर्क – नर्कूं राज'' सृष्टि् का अंतहीन अर्थात कभी ना रूकने वाला क्रम है।

58 – सुरति महिमां

ये सारी की सारी त्रिलोकि द्वैत भाव पर आधारित है जैसे अच्छा–बुरा, पाप–पुण्य, सत्य–झूठ अर्थात हर बात का पक्ष व विपक्ष सदैव यहां विद्यमान रहता है। द्वैत का मिट जाना अर्थात ऐकांत हो कर एकाग्र हो जाना ही सुरति रूप है। त्रिलोकि जगत में जीवात्मां का मन उसकी सुरति को मोहनी माया के लौभ द्वारा वश में किये रहता है जैसे एक हाथी जो कि साधारण सी रस्सी द्वारा पांव से बंधा होता है परन्तु इतना बलशाली हाथी भी उस छोटी सी रस्सी से अपने आप को नहीं छुड़ा पाता है क्योंकि बाल्यकाल अवस्था से ही निरंतर वह महावत द्वारा एक जंजीर से बंधा हुआ होने के कारण अपने आप को उससे छुड़ा नहीं पाता क्योंकि उसके अंतःकरण सुरति में यह भाव घर कर चुका होता है कि मैं इससे मुक्त नहीं हो सकता और इसी सुरति भाव के चलते अब वह एक कमज़ोर सी रस्सी से भी छूटने का प्रयास तक भी नहीं करता। ठीक इसी प्रकार आत्म सर्वशक्तिमान होते हुए भी मन के अधीन मन तरंग में बह कर अपनी सब सामर्थता भूल कर चौरासी के आवागमण में भटक रहा है।

सुरति जानो आत्म की वाणी, काल सूं ना पकड़ी जाये।
अमरपुर सतलोक से आई, केवल परमहंस सूं पकड़ी जाये।।

मुख से सिमरे सो मानस, मन से ध्यावे सो देव।
जो सुरति सूं सिमरे सो संत, सुरति सूं हँसा पहुंचे निज देस।।

बिन लेखनी पत्र (सुरति संदेश)

एकनाथ पत्र लिखा, बिन लेखनी लिए हाथ ।
संदेशवाहक को पत्र दिया, ले जाओ इसे निवृतिनाथ के पास ।।

संदेशवाहक ने पत्र दिया, निवृतिनाथ के हाथ ।
निवृतिनाथ ने श्रद्धापूर्वक पत्र पढ़ा, बड़े प्रेम रस साथ ।।

ध्यानपूर्वक उसे पढ़ कर, दिया पत्र मुक्ताभाई हाथ ।
मुक्ताभाई ने भी उसे पढ़ा, स्नेह और प्रीति साथ ।।

फिर संदेश वाहक को कहा ठहरो, उत्तर भी ले जाओ साथ।
कोरा पत्र संदेशवाहक को दिया, वह बोला लिए पत्र हाथ ।।

पत्र तो कोरे का कोरा है, लेखनी सूं लिखी ना कोई बात ।
इस सूं आप ने क्या पढ़ा, कोरे का कोरा पत्र मेरे हाथ ।।

निवृतिनाथ ने यूं कहा, अनलिखे की लिखुं क्या बात ।
हम ने भी उत्तर में यही कहा, आप कहते हैं सच्ची बात ।।

सुरति सूं सत्तगुरू साहिब मिलते, क्या ये सच्ची बात ।
हम ने भी यही कहा, सुरति सूं सत्तगुरू साहिबन साथ ।।

साहिब सत्तपुरूष बोलें लिखें सुरति सूं, सुरति सूं सुनते बात।
सत्तगुरू परमहंसा रूप हैं, मन मुख सूं मत करो बात ।।

लिखते पढ़ते सार सुरति सूं, यही है सच्ची बात ।
परमपुरूष के लौक में, सुरति सूं करते सुनते सब बात ।।

———

जगत में जीवात्मां भ्रमित हुआ परन्तु भरपूर श्रद्धा से मन रूपी भगवान निरंकार के देवी–देवों के रूपों की उसी के भौतिक जगत के संसाधनों तथा मन के अंतःकरण द्वारा पूजा व आराधनाऐं किये जा रहा है। इन पूजाओं व आराधनाओं में जीवात्म भौतिक जगत के संसाधन ही मांगे जा रहा है तथा इन्हीं सब में ही वह अपने लिए आनंद और खुशी को निरंतर ढूंढे जा रहा है। सुख और दुख द्वैत रूपी त्रिलोकि का निज स्वभाव है और जीवात्म को ये दोनों ही समय समय अनुसार मिलते ही मिलते हैं। परन्तु जिस आनंद की चाह मानव ना जाने कब से किये जा रहा है वह तो काया का विषय ही नहीं है, इस काया की सभी कर्म, ज्ञान व अंतःकरण की ईन्द्रियों से तो आनंद का अनुभव किया ही नहीं जा सकता। हां, केवल भौतिक जगत पदार्थों के भौग से कुछ काल के लिए खुशी और अस्थाई प्रसन्नता का अनुभव किया जा सकता है। हर खुशी के उपरांत कष्ट आता ही आता है। आनंद तो चेतन आत्मां अर्थात हंसा (सुरति रूप) का विषय है। ये ईन्द्रियों और काया से परे एकदम विपरीत विषय है। जीवात्मां त्रिलोकि माया व मन तरंग से मुक्त हो कर पूर्ण सुरतिवान बन कर ही आनंद की अवस्था को प्राप्त करती है। सुख दुख अर्थात मोहनी माया से मुक्त आत्मां सुरति रूप को धार लेती है जिस कारण आत्मां हंसा रूप को पा जाती है अर्थात चेतन सुरति ही हंसा रूप है। आनंद जिसे एक बार प्राप्त करने के उपरांत जीवात्मां सुख और दुख के भाव से सदा के लिए मुक्त हो सम–भाव अर्थात स्थित–प्रज्ञ हो जाती है।

सुरत सब्द की सुरति सूं, खूलें गगन किवाड़।
जगमग जगमग हो रहा, साहिबन का दरबार।।

साहिब छवि नैनन बसी, और छवि कहाँ समाये।
भीतर सार सब्द रस उपझे, अब सुरति ता में समाये।।

निरंकार भगवान मन रूप में मानव के अंतःकरण में विद्यमान होकर आत्म सुरति को वश में कर लेते हैं क्योंकि आत्म की सत्ता निराकार की सत्ता से सर्वोपरि व श्रेष्ठतम है। निरंकार भगवान का आत्म सुरति पर कोई बस नहीं चलता इसी कारण निरंकार भगवान ने बड़ी कुशलता से उसे असहाय व बेबस करने के भाव से 7 भागों में विभक्त कर के आत्म सुरति को वशिभूत किया हुआ है। इसलिए मानव काया में सुरति 7 भागों में ही अपना–अपना कार्य कर के हर जीव काया को निरंतर चेतनता प्रदान कर रही है।

साहिब के पल छिन, दर्शन रज रज पाँऊ।
मैं मैली साहिब उजले, किस विधि लागूँ पाँव।।

सभी गुण साहिब तुझमें, मुझ में नांहि कोये।
बिन सतगुरू प्रेम ना उपझे, भक्ति कैसे होये।।

''वे नाम'' कहत है :–

सतलोक निजघर सुरति लोक

सुरति से हम आये सारे ।
सुरति सूं वहां जायेंगे सारे ।।
सुरति से रचयो संसारा ।
सुरति से निरंकार प्यारा ।।
सुरति से आद्यशक्ति प्रक्टायो ।
सुरति से तीन देव सुन्न बनायो ।।
सुरति से हुआ त्रिलोक पसारा ।
सुरति का ही खेल है सारा ।।
सुरति का ही सतलोक हमारा ।
सुरति का चहुं ओर पसारा ।।
सार सुरति आत्म को हंसा बनाए,
सुरति संवार हंसा निज घर को जाए ।

साहिब सतपुरूष जी ही है सुरति रूप।
सुरति रूप में हर थां पसारा ।।

———

सुरति सूं एक

गुरू शिष्य और साहिब, मिल कीन्हीं भक़्ति विवेक ।
तीनों सुरति सूं मिले, हों सुरति सूं मिल एक ।।

सुरति निरति जब मिले, हंसा का बनता रूप ।
मन माया अब शांत हुई, सार सुरति सूं बदला रूप ।।

मन में सुरति वास है, सांसा भी सुरति रूप ।
सुरति निरति के मेल सूं, मन का छूटा साथ ।।

अब आत्म हंसा हो गई, सत्तगुरू की सुरति संग साथ ।
सत्तगुरू में साहिबन वास है, तेरा भी साहिबन संग साथ।।

———

59 – सात सुरतियाँ

सात सुरति का सगल पसारा, बिन सुरति कुछ नांहि न्यारा।
सार सुरति आत्म रूप है, यही है हंसा रूप प्यारा।।

साहिबन दर्श कीजिये, दिन में सौ सौ बार।
आठों पहर दीदार करें, परमहँस रहें सुरति द्वार।।

सात सुरतियों का गुणों सहित विस्तारपूर्वक वर्णन :–

(1) आनंद सुरति :– प्रथम सुरति आनंद सुरति कहलाती है, अधिकतर संत जन

इसे अमी सुरति भी कहते हैं। यह सुरति सुरतिवान जीवात्मां को आनंद का अनुभव कराती है साथ ही साथ ये कायाधारी जीव को भी सुख व प्रसन्नता का आभास कराती है। यही सुरति जीवात्मां को मन माया से भी मुक्त होने में अति सहायक सिद्ध होती है तथा ये जीवात्मां को जीते जी सत्त मार्ग पे चलने की प्रेरणा देती है।

मूल सुरति जब चेतन होती, संग साधक के रहती।
तीव्र गति से चलती, तो भी लाखों जन्म की याद समाती।।

(2) मूल सुरति :— द्वित्य सुरति मूल सुरति कहलाती है, यह जीवों के हृदय में विद्यमान रहती है। यह जीवों को हर कार्य करने की सामर्थता प्रदान करती है और इसके साथ—साथ ध्यान लगाने में भी सहायक होती है। यह किसी सूक्ष्म से सूक्ष्म और विकट से विकट कार्य को एकाग्रता के साथ करने में भी सहायक होती है। निंद्रा अवस्था में भी केवल मूल सुरति ही जीव हर जीव को चेतना प्रदान करती है जिससे प्रत्येक जीव काया मूर्छा अवस्था अर्थात चिर निंद्रा को प्राप्त नहीं होती और यही मूल सुरति ही निंद्रा अवस्था में भी मानव को स्वपन्न का आभास करा पाती है। मूल सुरति ही तो आत्म रूप है। मूल सुरति की सहायता से ही जीव चित्त द्वारा सब कुछ याद रख पाता है। सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी की शरणी में जाने पर और ''सार दात'' को ग्रहण करके श्वांसा द्वारा सिमरन करने पर मूल सुरति चेतन हो जाती है। इसके चेतन होते ही सातों सुरतियां इसी में समा कर एक हो जाती हैं जिससे जीव मन माया से मुक्त हो कर हंसा बन कर मोक्ष को प्राप्त होता है।

(3) चमक सुरति :— तृत्य सुरति चमक सुरति कहलाती है। यह सुरति कर्म ईन्द्रियों को चेतनता प्रदान करती है जिससे सारी काया की कर्म ईन्द्रियां सुचारू रूप से कार्य व व्यवहार कर पाती हैं। चमक सुरति ही आंख, कान, नाक, हाथ और पांव के संग—संग सभी कर्म ईन्द्रियों को कार्य करने में अहम भूमिका निभाती है। यही सुरति काया के रोम—रोम को शुद्ध करके सारे तन को हृष्ट पुष्ठ रखती है। चमक सुरति से ही सारी काया गतिशील हो के क्रिया करने के योग्य होती है। चमक सुरति से युक्त होने पर जीव सफूर्ति से कार्य करते हुऐ चंचल व प्रसन्नचित्त अवस्था में रहता है।

(4) शून्य सुरति :— चतुर्थ सुरति शून्य सुरति कहलाती है। यह सुरति जीवों को एकांत व शांतमय होकर एकाग्र होने में अति सहायक सिद्ध होती है। अति गहण व विकट परिस्थितियों को सहन करने में धैर्य व शांति प्रदान करती है। शून्य सुरति धारण करने के कारण ही मानव बहुत ही कम बोलना पसंद करता है। मानव का एकांत में रहना, दूसरों को धैर्य के साथ सुनना, कम प्रतिक्रिया व्यक्त करना उसकी दैनिक दिनचर्या का आचरण व स्वभाव ही बन जाता है। शून्य सुरति धारण करने पर ही मानव जन विद्वान, ज्ञानी व हर क्षेत्र के पथ प्रदर्शक के रूप में प्रसिद्धि पाता है। साधकों को एकांत और एकाग्र करने में शून्य सुरति अहम भूमिका निभाती है। वे स्वयं भी शांतमय होते हैं जिस कारण एकांत व शांतिपूर्ण वातावरण उन्हें अत्यधिक भाता है। शून्य सुरति मानव की आध्यात्मिक उन्नति व भक्ति में अहम भूमिका निभाती है।

(5) निश्चय सुरति :– पांचवी सुरति निश्चय सुरति कहलाती है। यह सुरति जीव को निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होती है। इस सुरति से जीव उचित–अनुचित, अच्छे–बुरे व सही और ग़ल्त में भेद जान पाता है। निश्चय सुरति द्वारा निर्णय करके हम किसी भी कार्य को करने अथ्वा ना करने का अपने अंदर विचार बनाते हैं। निश्चय सुरति ही हमें कर्म करने की ओर प्रेरित करती है अर्थात यही सुरति हमें उचित और अनुचित का बौध भी कराती है। निश्चय सुरति द्वारा ही विकट परिस्थितियों व असमंझस में जीव को किसी एक निर्णय लेने में अहम भुमिका निभाती है। यही सुरति दैनिक कार्यों में संलग्न हो कर परिश्रम करने में मानवों की अति सहायक होती है।

(6) ठांव–ठांव सुरति :– छटी सुरति ठांव–ठांव सुरति कहलाती है। यही सुरति मानव की अंतःकरण की ईन्द्रियों की सहायक होती है। इस सुरति से जीव गंध, स्पर्श व स्वाद का अनुभव कर पाते हैं। विभिन्न–विभिन्न प्रकार के पेय व भौज पदार्थों को देख व सूंघ कर पहचान करने में यही सुरति अत्यधिक सहायक सिद्ध होती है। यही सुरति जीव को स्वाद व गंध के ज्ञान की अनुभूति कराती है परन्तु मन तुरन्त प्रकट हो कर अलग–अलग स्वादिष्ट पदार्थों को ग्रहण करने की तीव्र ईच्छा जीव के अंदर उत्पन्न करता है तथा यही मन स्वस्थवर्धक परन्तु स्वाद से रहित फीके व कड़वे पदार्थों को ग्रहण करने से जीव को रोक भी देता है। मन वशिभूत इसी सुरति से जीव तामस भौजन ग्रहण करके स्वयं के लिए ना ना प्रकार के दोषों व रोगों को आमंत्रित कर देता है। इसी सुरति के कारण जीव माया वशिभूत हुआ स्वार्थ व लौभ का त्याग नहीं कर पाता है जिस से वह त्रिलोकि के आवागमण कालचक्र में भ्रमित हुआ उलझा रहता है।

(7) ह्रदय मांहि :– सप्तम सुरति ह्रदय के मांहि है। जीव जो भी ग्रहण करता है उसे यह सुरति पचा कर और उसकी ऊर्जा को शरीर के अंग–अंग तक पहुंचाती है व साथ ही साथ यही सुरति शरीर में बाकी बचे हुए मल व द्रव्य पदार्थों को जैसे छींक, पसीने, मल व मूत्र इत्यादि के रूप में शरीर से बाहर निकाल देती है। इस सुरति से सारा शरीर ऊर्जावान व बलिष्ठ रहता है जिससे सारी काया किसी भी क्रिया को कर पाती है तथा यही सुरति और भी अन्य व्यर्थ पदार्थों को त्यागने में भी सहायक होती है जिससे शरीर रोग मुक्त रहता है। इसी से सारा शरीर ह्रष्ट पुष्ठ हो कर स्फूर्तीवान व ऊर्जा से भरा रहता है। यही सुरति भीतरी–बाहरी कष्टों और रोगों का सामना करने में शरीर की अति सहायक होती है।

ये सारी सातों की सातों सुरतियां आत्म की निज अंग हैं। आत्म मन के पराधीन कदापि नहीं हो सकता, हंसा (माया युक्त जीवात्मां) तो मूलतः सुरति रूप है तभी तो ये मन इन सभी सुरतियों को विभाजित करके अपने अधीन कर लेता है। सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी द्वारा प्रदत किये गये ''सार सब्द'' का सुरति से सिमरन करने पर ये सातों सुरतियां चेतन हो के मूल सुरति में समा जाती हैं और जीवात्मां अपना रूप रूपांतरण कर के हंसा रूप को प्राप्त हो जाती है। यही मूल सुरति हंसा को मोक्ष पथ की ओर ले जाती है। परन्तु मन के अधीन ये सभी सुरतियां मन तरंग के अनुसार व्योवहार व कार्य करती हैं। ये चंचल मन ही भगवान निराकार, देवी–देव, पित्र, साधु, महात्मांओं, गुरूओं, यक्षों, किन्नरों, गंधर्वों, शहीदों, ग्रंथों, नागों, जड़–देवों व प्रेतों की पूजा करने की ओर जीव को प्रेरित करता है। ये सभी पूजायें परोक्ष अथ्वा अप्रोक्ष रूप से निरंकार रूपी मन की ही पूजा हैं। जीव काया तो स्वयं भी निरंकार, काया भीतर विद्यमान मन भी निरंकार, भौतिक संसार व संसार के सभी पदार्थ माया भी निरंकार रूपी माया ही तो हैं।

'मन' ही तो भगवान निरंकार जी की मोहनी माया त्रिगुण–युक्त त्रिकाल रूपी त्रिलोकि है। इन पूजाओं, आराधनाओं व सज्जदों से अल्प मुक्ति तो मिल सकती हैं परन्तु पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष के बारे में सोचना भी संभव नहीं। पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष तो सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरण में आकर और उनको पूर्ण समर्पित हुऐ बिना जीव प्राप्त कर ही नहीं सकता। सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी की कृपा को पाते ही जीवात्मां पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष पथ की ओर अग्रसित हो जाता है।

60 – सहज मार्ग व निरंकार भक्ति भेद

निरंझन नाम काल पुरूष का, सत सुरति सतपुरूष जी।
खर अक्षर काल पुरूष के, निःअक्षर दात सतपुरूष जी।।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी' की वाणी अनुसार :– सहज सत मार्ग के पथिक सुरति रूपी नदी के जल की मानिंद हैं जो सतगुरू कृपा से सुरतिवान होकर सुरति प्रवाह में बहकर अपने मूल साहिब सतपुरूष जी के सतलोक में ठीक वैसे ही जा समाते हैं जैसे नदी अपने उद्‌गम स्थल (स्त्रोत) से चलकर अपने मूल अर्थात सागर में जा समाती है। परन्तु नदी से निकली हुई नहरें अथ्वा कूलें तो निरंकार भक्तियों के समान हैं जो मृत्यु लोक में फलिभूत होती हैं परन्तु अपने गणतव्य अर्थात मूल मोक्ष को कभी नहीं प्राप्त कर पातीं। ठीक वैसे ही नहरें और कूलें खेत खलियानों को फलिभूत तो करती हुई अपना अस्तित्व खो देती हैं परन्तु अपने मूल अर्थात सागर में कभी भी नहीं समा पाती और अपना सारा अस्तित्व ही खेत खलियानों में मिटा देती हैं।

बार बार आने को, नया जन्म पाने को।
बिन जागे कुछ ना होगा, मोक्ष पद पाने को।।

जैसे नहरें व कूलें तथा तालाब, सरोवर व झीलें संसार में जीवों की प्यास तो बुझा सकती हैं परन्तु स्वयं कभी भी अपने मूल साग़र में नहीं समा पाती। ठीक इसी प्रकार निरंकार भगवान के दायरे में भक्तजन सर्गुण अथ्वा निर्गुण किसी भी ईष्ट आराध्य की पूजा भक्ति वन्दनायें कर के अल्प मुक़्तियां (पित्रलोक, स्वर्ग व सुन्न लोक) तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु भक़्ति व श्रेष्ठ कर्मों का फल खिन होते ही जीव को मृत्यु लोक में जन्म लेना ही पड़ता है। इन सब अवस्थाओं से परे नदी सर्वदा अपने मूल साग़र में जा समाती है। ठीक इसी प्रकार सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में जाकर ही जीवात्मां चौरासी के बंधन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करती है क्योंकि सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी जीवात्मां को सुरति द्वारा चेतन सब्द अर्थात 'सार सब्द' विदेह दात प्रदान करते हैं। इस दात को सुरति से सिमरते ही जीवात्मां मन माया तरंग से मुक्त होकर मोक्ष पथ की ओर अग्रसित हो जाता है। 'सार सब्द' विदेह दात को सुरति से सिमरते ही जीवात्मां सुरतिवान होकर हंसा रूप को पा जाता है और हंसा रूप में ही अपने सतगुरू परमहंस जी संग अपने गणतव्य को पा लेता है अर्थात साहिब सतपुरूष जी में जा समाता है।

वे नाम ने जा के देख लिया, तीन लोक से आगे।
सतलोक ही सतलोक है, तीन लोक से आगे।।

61 – मानव चौला दुर्लभ क्युँ

नर तन जान अनमौल रत्न, बार बार ना मिल पायो।
जे ना पाया सतगुरू प्यारा, चौरासी में अति दुख पायो।।

हर जन्म में माया कमाई, भौगन में रहयो समाई।
साधु साध सिद्ध और ज्ञानी, माया सूं बचें ना भाई।

निरंकार भगवान ने हंसात्मा अर्थात सुरति को अपने मोहनी माया जाल में भ्रमित करने के लिए मानव शरीर के अंदर सुरति को सात खण्डों में विभक्त कर दिया है। इन सातों सुरतियों से युक्त होने के कारण मानव शरीर इस धरा पर ही नहीं अपितु सारी त्रिलोकी में अनमोल, दुर्लभ और सब योनियों में उत्तम व सर्वोपरी है। पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष तो केवल इसी मानव काया में ही संभव है। मानव–काया में आत्म–सुरति के सात भागों में बंट जाने से इसकी चेतनता कम हो जाती है तभी तो यह सुरति अपनी मूल अवस्था को भूल कर मन के अधीन हुई माया में ही उलझ कर रह गई हैं। सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी अपने साधकों को मोक्षदाई ''सार सब्द'' को सुरति द्वारा ही प्रदान करते हैं। ये ''सार सब्द'' विदेह–दात जगत में प्रचलित शब्द ना हो के सुरति–प्रवाह रूप में होती है तभी तो इस दात को शब्द ना कह के 'सब्द–विदेह' कहते हैं। साधक–जन जब इस दात को श्वांसा द्वारा सिमरते हैं तो ये सुरति अंताकरण में सुशुप्त अवस्था में पड़ी सातों सुरतियों को चेतन करके उन्हें एक कर देती है जिससे ये सुरतियां मिल के मूल सुरति में परिवर्तित हो जाती हैं। आत्म ही मूल सुरति रूप में हंसा है। हंसा अर्थात मूल सुरति चेतन होते ही साधक मोक्ष पथ की ओर अग्रसित हो जाता है। सहज सत मार्ग में सतगुरू परमहंस जी ही इस धरा पर साहिब सतपुरूष जी का रूप होते हैं अर्थात सुरति–पुण्झ साहिब सतपुरूष जी से जुड़े होने के कारण वे साहिब जी के रूप ही होते हैं। तभी तो सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंसों को भी साहिब जी कह के संबोधित किया जाता है। आत्म सुरति चेतन होते ही साधक सतगुरू परमहंस जी के रूप में साहिब सतपुरूष जी का साक्षात्कार करते हैं तथा आवागमण के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

निरंकार जोत सरूप है, परमपुरूष जोतों के जोत भण्डार।
निरंकार सत्ता अनहद झंकार है, सत्तपुरूष सार सुरति भण्डार।।

प्रकृति अनित्य हर सुर नर को, निरंकार में भरमाती।
आत्म ज्ञान हंसा बन कर, साहिबन में जा समाती।।

जीवन सपन समान है, जागो तो कुछ नांहि।
ऐसा सब संसार है, जानों संतन संग मांहि।।

62 – 'मन'

मन है क्या ? इसकी सत्ता क्या है और इससे मुक्त कैसे हुआ जा सकता है ?

मन हंसा में भेद ये कैसा, जीव में जीवन का वास।
मन को कैसी प्रीति तन से, हर कार्य में देता साथ।।

जगत के सभी जीवों में भगवान निरंकार जी मन रूप में जीवों की सुरति को भ्रमित करने के लिए स्वयं ही विद्यमान हैं। जगत के सभी देवी–देव व ईष्ट मन का ही रूप हैं जो निरंकार की शक्ति से ही क्रियाशील हैं। निरंकार त्रिलोकि में स्वयं, माया रूप में समाये हैं तथा सभी जीवधारियों में 'मन' रूप में विद्यमान हैं अर्थात मानव को बाहरी संसारी माया के भीतर भी मन रूप में भ्रमित कर रहे हैं। मानव काया अति सामर्थशाली व महान है। अगर मानव चाहे तो इस देह में नीच से नीच कर्म कर के अवगति को प्राप्त करे या सहज सत भक्ति पथ पर चल कर मोक्ष को पा कर आवागमन से मुक्त हो जाये, दोनों में से कोई भी विकल्प चुनने के लिये वह पूर्णतः स्वतंत्र है। इसी को भरमाने हेतु भीतर व बाहर दोनों तरफ से मन–माया का महां प्रपंच रचा गया है।

परनारी पैनी छुरी, मत भरमावे कोई।
परनारी के विष से, जीवित बचा ना कोई।।

एक कनक अरू कामिनी, कामी को भाये सोहि।
पतंगा जोत सूं जल मरे, कामी मरे मन मांहि।।

निरंकार रूपी देवी–देवों और ईष्टों की पूजा करने वाले ऋषि–मुणि, साधु–सन्यासी, पंडित व प्रचारक जन इस मन से कभी भी मुक्त हो ही नहीं पाते। जगत गुरूआजन कितनी भी आध्यात्मिक उन्नति क्युं ना कर लें अर्थात भक्ति की कितनी भी उच्चतम प्रकाष्ठा पर भी क्युं ना पहुंच जायें, वे मन से कभी भी पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाते। समस्त मानव संप्रदायों और मत्तों में बंटे हुऐ मानव विभिन्न प्रकार के रूपों और पद्यतियों द्वारा जगत में भगवान निरंकार की भक्तियां किये जा रहे हैं। भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों और पद्यतियों में बंटा हुआ मानव इस मूल ज्ञान से अनभिज्ञ है कि समस्त मानवों द्वारा की जाने वाली भक्तियां प्रत्यक्ष अथ्वा अप्रत्यक्ष रूप से भगवान निरंकार जी तक ही पहुंचती हैं। अपने–अपने सम्प्रदायः मत्त व पद्यतियों को सर्वश्रेष्ठ कहने और सिद्ध करने की भरसक चेष्ठा सभी मानव किये ही जा रहे हैं। अपनी पद्यति व सम्प्रदायः को श्रेष्ठतम सिद्ध करने के प्रयास में मानव एक–दूसरे का घृणा व द्वैषों से भरा सर्वनाष करने पर ऊतारू है। यह भी मन (निरंकार) का क्रूरतम रूप का विक्राल पसार जाल है।

नर्क का चारों ओर प्रचार है, मन रचे प्रपंच।
सत तो बिन प्रचार है, काल की सीमा प्रपंच।।
होये जिसका संगी निरंकार, दुश्मन आसमां क्युं कर।
होये जिसका संगी सियार, दुश्मन फंद हो क्युं कर।।

63 – मन प्रकटिकरण

वर्तमान काल में जीव एक–दूसरे के प्रति राग–द्वैष से भरे पड़े हैं एवमः प्रेम तो प्रायः समाप्ति की ओर अग्रसर है और केवल मात्र दिखावा भर ही शेष रह गया है। जगत के कथा वाचक पंडित जन, मौलवी, लामें, पादरी, पाई व आध्यात्मिक तौर पर उन्नतशील कहलवाने वाले मुख व मन से स्वयं भी भक्ति कर रहे हैं और अपने अनुयायियों को भी जाप, अजपे, आयतें, कौरल गाण, बंदगियां व और भी अनेक ढंगों से भक्ति मार्ग का अनुसरन करवा रहे हैं। ऐसे प्रचारक मुख से भजन, पाठ, आरती, हवन, मंत्र व आराधनायें आदि अपने अनुयायियों से निरंतर करवाये जा रहे हैं और इनमें से बहुत से तो अजपा–जाप अर्थात अंतःकरण में मन से स्मिरण और ध्यान करने को कहते हैं।

सभी ईच्छायें पूर्ण ना हो सकें, इसी कारण दुखी शरीर।
इसी को मन जान लो, मन कारण दुखी शरीर।।

सब नीच काम हैं मन के, नीच कर्म में सभी सहाये।
सार सब्द अमृत छोड़ी के, विष सूं प्रीत लगाये।।

मुख से उच्चारे गये शब्दों को 'जाप' कहते हैं तथा मौन रह कर मुख के अंदर अर्थात मन अंताकरन में उच्चारे गये शब्दों व मंत्रों को 'अजपा' कहते हैं। ये दोनों तरहं की पूजा, प्रार्थनायें और बंदगियां मन रूपी काया–ईन्द्री (मुख से बोल कर जाप) अथ्वा अजपा अर्थात अंतःकरन में मन द्वारा की गई संपूर्ण भक्तियां निरंकार भगवान तक ही पहुंचती हैं। निरंकार ही तो मानव काया में मन रूप में विद्यमान है। देवी–देव निरंकार व मां आद्यशक्ति की ऊर्जा द्वारा ही रचे गये और उसी द्वारा ही निरंतर कार्यरत हैं, तभी तो ये देवी–देव भी निरंकार रूप होने से मन–रूप ही कहलाते हैं। कहने का अभिप्रायः यह है कि मन ही निरंझन विक्राल काल रूपी निरंकार भगवान हैं। निरंकार दायरे के सभी सम्प्रदायः व मत्त सर्गुण अथ्वा निर्गुण भक्ति करने वाले भी परोक्ष रूप से मन रूपी निरंकार भगवान की ही भक्तियां करते हैं।

काम सूं श्रृंगि ऋषि नारद और रावण, ये भी ना बच पाये।
बड़े बड़े योगी यत्ति भी, काम सूं ना बच पाये।।

काम है माया मोहनी, बिन सुरति तजि ना जाये।
तां कयामत जीव की, दुर्गति रूक ना पाये।।

बड़ा विचित्र व अनोखा घटना क्रमः प्रायः देखने को मिलता है कि निरंकार भगवान की भक्ति करने वाले भद्रजन कथाओं और प्रवचनों में 'मन' को अरानगल बातें कह कर कौसते हैं साथ ही इस 'मन' को मार मुकाने की बातें कहते हैं। भक्तियों और बंदगियों में प्रयोग किये जाने वाले संसाधन मन रूपी माया, इनमें प्रयोग किये जाने वाले शब्द माया और मुख व मन से की गई भक्तियां भी माया अर्थात भगवान निरंकार ही मन और माया हैं। मन (जगत संसाधन) से मन (अंतःकरण) द्वारा मन (सभी ईष्ट और आराध्य) की पूजाओं, आराधनाओं, बंदगियों और सज्जदों से मन (माया जाल) कदापि नहीं मिट सकता। तभी तो निरंकार दायरे के उच्चतम प्रकाष्ठा की अवस्था को प्राप्त सिद्ध पुरूष भी मन तरंग के वेग से अछूते नहीं हैं अर्थात वे भी मन के माया प्रवाह में अक्सर बह ही जाते हैं। निरंकार भक्ति में प्रत्येक मानव जगत के भौतिक पदार्थों की ओर ही आकर्षित हुआ भक्तियों में लीन है। भौतिक पदार्थों की तीव्र ईच्छा ही उसे अंतहीन आवागमण के बंधन में उलझाये रखती है। निराकार के निर्गुण रूपों की भक्तियां भी जीव को आवागमण के बंधन से मुक्त नहीं करवा पाती। सर्गुण–निर्गुण दोनों भक्तियां प्रतक्षः या अप्रतक्षः रूप से निरंकार भगवान की ही भक्तियां हैं। निस्वार्थ एवमः अनन्य भाव से ईष्टों को सर्गुण अथ्वा निर्गुण रूप से भजने वाले भद्र भक्त जनों को भी निरंकार ऋद्धि–सिद्धि व वरदानों के प्रलोभन में उलझा कर अपने मन रूपों की भक्तियों में और भी सुदृढ़ करते हैं। लाखों में कोई बिरला जन ही इन ऋद्धि–सिद्धि व वरदानों में मिलने वाले प्रलोभनों से भ्रमित नहीं होता। वह भी अंततः भक्ति की प्रकाष्ठा की सर्वोत्तम अवस्था को प्राप्त करने के उपरांत अपने अहम (मन–तरंग) में उलझ ही जाता है क्योंकि निरंकार भक्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने पर भी मन पूर्णतः नहीं मिटता, जिस कारण योगी–योगेश्वर और महां–योगेश्वर भी आवागमण से मुक्त नहीं हो पाते।

भक्ति बिगाड़ी कामियां, ईन्द्रियां लें स्वाद।
हीरा खोया हाथ सूं, जन्म गंवाया बाद।।

काम क्रौध लोभ मोह, मन के जानो अंग।
ये पांचों मन अस्त्र, जिन सूं झकड़ा हंसा संग।।

मन कुछ भी नहीं, ये तो एक निर्जीव तरंग है तथा कुछ भी करने में असमर्थ है। मन तो आत्म–सुरति से क्रियाशील होता है, बिन सुरति मन और काया निर्जीव ही हैं अर्थात कुछ भी करने में असमर्थ हैं। जीव में तीव्र तृष्णा उपझते ही उस के भीतर आत्म–सुरति को वशिभूत करने के लिए निरंकार स्वयं को मन रूप में प्रकट कर देते हैं। एक बार मन प्रकट होने पर जीव निरंकार–मोहिणी माया के विक्राल मोहपाष में भ्रमित हो उलझ जाता है।

कंई बंधन सूं बांधेया, इक चेतन ये जीव।
आत्म सब जाने ना, किस कारण दुखी सब जीव।।

मन बुद्धि चित्त अहंकार, अंतःकरण के अंग।
मन मूर्ख मन लालची, मन के ही हैं ये अंग।।

जीव जब माता के गर्भ में होता है तब वह साहिब सतपुरूष जी के संग सुरति से जुड़ा सुरति रूप 'हंसा' ही होता है। जब जीव मानव रूप में जन्म लेता है तब वह पूर्णतः सुरतिवान होता है। प्रसव काल के उपरांत जन्म दाता मां भी अपनी पूर्ण एकाग्रता से सारा ध्यान शिशु के लालन–पालन में न्योछावर कर देती है। (निज मायाधारी काया से विमुक्त होकर ध्यान एकाग्र करने को ही सुरति कहते हैं) अर्थात शिशु के जन्म के तुरंत बाद आरम्भ काल से ही माता/जननी शिशु के हाव–भाव और उसकी किलकारियों से उसकी आवश्यकताओं को सुरति से ही जान लेती है और उन्हें पूर्ण करती है। नव शिशु भी किसी को ना जानते पहचानते हुऐ सुरति द्वारा ही अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करता है। जब बालक माता के गर्भ में होता है तो वह उस वक्त साहिब सतपुरूष जी के संग सुरति से जुड़ा पूर्ण सुरतिवान होता है। ठीक वैसे ही जन्म काल के उपरांत कुछ वर्षों तक जीव सुरतिवान ही होता है परन्तु ज्युं–ज्युं वह बड़ा होता है तो वह मायावी काया को अपना समझने लगता है अर्थात हंसा रूप भूल कर धीरे–धीरे माया में रम जाता है। इस काया के मोह वशिभूत आशा–तृष्णा उसे आ घेरती है। तृष्णा व मोह उभरते ही मन प्रकट हो जाता है। मन के प्रकट होते ही वह अपने संग पूर्व जन्मों के संस्कार व प्रालब्ध से जीव को बांध देता है। बिन पूर्ण सुरतिवान हुऐ जीव लाख यत्न–प्रयत्न क्युं ना करे, वह मन–माया तरंग से मुक्त हो ही नहीं सकता।

झूठी काया झूठी माया, झूठ का सब ब्योपार।
झठी कनक अरू कामिनी, बिन जाने सतगुरू प्यार।।

झूठे तन के कारण, संग काम क्रौध विकार।
झूठे पद धन संपदा, पूत सपूत कुटुम्ब परिवार।।

64 – साहिबन उपहार निरति

सब्द सुरति और निरति, इन्हें एक ही जानो।
सुरति निरति मिल हंसा बने, सब्द से निजघर जानो।।

संसार में हम किसी की भी भक्ति क्युं ना करें, सभी भक्तियां अंततः 17 आयोजन कोड़ी काल के उपरांत साहिब सतपुरूष मूल ही में जा समायेंगी परन्तु मानव भक्तियों में अपने मूल साहिब सतपुरूष जी को जानने और पाने की भावना से अति दूर होने के कारण जन्म–मरन के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता। जैसे भगवान निरंकार जीवों के अंदर मन रूप में और भौतिक जगत में माया रूप में विद्ययमान हैं, ठीक वैसे ही साहिब सतपुरूष जी हर जीव के स्वांस–स्वांस में

विद्यमान रहते हैं और उसे हर पल हर स्वांस में सुरति अर्थात चेतनता प्रदान करते रहते हैं। हर जीव की चेतनता निजधाम से निरति रूप में आती है। मूलतः हर जीवात्मां की निज निरति–डौर साहिब सतपुरूष जी से पूर्वतः से ही जुड़ी हुई है और हर जीवात्म का निजघर से ही इस निरति–डौर के रूप में अपना–अपना निज अस्तित्व जुड़ा होता है। जिस भी जीवात्म की निरति होती है वह उसी जीव के स्वांसा द्वारा जीव के प्राणों को चेतनता प्रदान करती है। निरति को वेदों में प्राण वायु भी कहा गया है। जीव काया स्वांसा अर्थात वायु के रूक जाने भर से मृत नहीं होती अपितु वायु तो मृत जीव के अंदर सदैव ही अंदर–बाहर विद्यमान रहती है। बस निरति अर्थात प्राण–वायु का संचार रूक जाता है तथा जीव ना रहने योग्य काया से मुक्त हो जाता है। इस अवस्था को जगत वासी 'मृत्यु' कहते हैं, यह मृत्यु अवस्था तो जीवात्मां के लिए दुखदाई ना हो के झर–झर शरीर से मुक्त होकर नवीन युवा शरीर को धारण करने का नाम है अर्थात 'मृत्यु' तो अनंत शारीरिक कष्टों से मुक्त होने का अमृत्व पड़ाव है। जगत के सारे सम्बंधी निज स्वार्थ वश ही रोते और चिल्लाते हैं। यह 'निरति' तो जीवों के लिए साहिब सतपुरूष जी का मोक्षदायी अनमोल उपहार है।

सुरति निरति की सुद्धि नहीं पाई, सो नर पशु समान है भाई।
जो गाहे सब्द सतलोक सिद्धाई, भौर ना काल जाल में आई।

जगत में जो बिरले जन सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में समर्पित हो जाते हैं उन्हें सतगुरू परमहंस जी की कृपा बरसने पर ''सार सब्द'' की मोक्ष दात सतगुरू परमहंस जी से सुरति द्वारा मिलती है। ऐसे समर्पित सुरतिवान साधक जब स्वांसा में ''सार सब्द'' को धार कर सिमरन करते हैं तो यही निरति ''सार सब्द'' सिमरन से मूल सुरति को चेतन कर देती है और इसके चेतन होते ही सातों सुरतियां एक होकर मूल सुरति ही बन जाती हैं। यही मूल सुरति चेतन अवस्था में मन माया को तज कर मोक्ष मार्ग की ओर प्रस्थान करती है।

65 – साहिबन प्रतीती

सतपुरूष को बड़ा जानिये, जो जाने सो बड़ा होये।
बड़े ने बड़ा कर दिया, ऐसे ही प्रेम से हंसा कोई होये।।

साहिबन की उपमा कहि ना जाये, सब जीवों में वही समाये।
कोई बिरला साहिबन महिमां गाये, जो गाये पार हो जाये।।

साहिब सतपुरूष जी हर स्वांस–स्वांस में अपनी हंसात्माओं के संग–संग ही होते हैं परन्तु मोह माया व जगत की चकाचौंध में बुरी तरहं से भ्रमित हुआ मानव मन–माया रूपी

निरंकार भक्तियों में निजस्वार्थ हेतु इतना उलझा हुआ है कि साहिब सतपुरूष जी की ओर चलना तो दूर, इस ओर देखना व सुनना भी नहीं चाहता। साहिब सतपुरूष जी तो अनंत युगों से अपने प्यारे हंसात्माओं की निरंतर बाट जोह रहे हैं तथा सदैव जीव के पुनः निजघर लौटने की प्रतीक्षा में हैं मगर यह जीवात्म है कि माया ही में बुरी तरहं से रमा हुआ अपने मूल साहिब सतपुरूष जी की ओर आना ही नहीं चाहता। साहिब सतपुरूष जी तो अनंत युगों–युगों से अपने प्यारे अंश जीवात्म अर्थात हंसा के हर पल हर काल में संग ही होते हैं। जगत में हर मानव देवी–देव अथ्वा ईष्ट की भक्तियां जगत स्वार्थ सिद्धि की अभिलाषा से ही करता है जिस कारण मांगों के फलस्वरूप जीव मृत्यु लोक में ही काम आने वाले पदार्थ व सुख पाता है। जैसे ही जीव अपना शरीर त्यागता है तो उसकी यही अभिलाषाऐं और ईच्छाऐं उसे आवागमण के चक्र में पुनः वापिस ले आती हैं। असंख्य जन्मों से जीवात्मां इन्हीं तीव्र ईच्छाओं के बंधनों में बंधा अपने आप को शरीर समझ कर कष्टों व क्लेशों को निरंतर झेले जा रहा अपने मूल से अति दूर हुआ बैठा है। अगर मानव निस्वार्थ व निष्काम भाव से किसी की भी भक्ति करे तो ये सभी भक्तियां अंततः उसे पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरण में ले ही आती हैं। सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में समर्पण करते ही तथा सतगुरू परमहंस जी से ''सार सब्द'' दात ग्रहण करते ही जीवात्मां मोक्ष पथ पर चल कर अपने मूल साहिब सतपुरूष जी में अर्थात सतलोक अमरपुर में जा समाती है।

निरंकार के तीन लोक, ईक्किस आकाश तूं जान।
साहिबन लोक सीमा रहित, कोई और छौर ना जान।।

अमरपुर आप साहिब हैं, हंसों का देस प्यारा।
ना धरति गगन ना पानी, ना रवि चंद्र सितारा।।

हे जीवात्म साथियो ! इस जीवन के एकमात्र उद्देष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति हेतु पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरण में आयें। क्योंकि बिन पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आये मोक्ष पथ पर अग्रसर होना संभव ही नहीं। वर्तमान काल में साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' इस धरा पर एकमात्र ऐसे संपूर्ण संत हैं जो जीवात्मांओं को निरंतर मोक्ष की ओर चलने की प्रेरणा दे रहे हैं। उनकी शरण में आया हर समर्पित साधक व जिज्ञासु जन सतलोक निर्वाण पद का अधिकारी बन जाता है।

निजघर में अपने ही हंसों सूं, मेल जोल बड़ाओ।
सतपुरूष ही सतलोक है, वहीं रहो या वापिस आओ।।

अमर लोक है देस हमारा, जहां से हंसा आये।
पाँच तत्व उपझे शब्द सूं, तीन लोक शब्द सूं आये।
ज्योति निरंझन मन ही जानो, आदि नाम सूं आये।।

अमरपुर से हम सब आये, वो ही तो प्रेम ज्वाला है।
अति सुन्दर अति प्यारा जलवा, दर्श अमृत पाते हैं।।

66 – गौनि भक्ति व सहज सत्त मार्ग

हर जन्म में माया पाई, खाई में रहा समाई ।
साधु, सिद्ध और ज्ञानी, इस माया सूं बचें ना भाई ।।

कई जन्मों से निरंकार भजा, फंसा मोह माया के जाल ।
स्वर्ग नर्क कर्मण फल भौग, फिर पड़ा मृत्यु जाल ।।

जगत में सृष्टि् रचना से लेकर वर्तमान काल तक मानव अपने निज स्वरूप को जान ही नहीं पाया। मानव मोहनी माया भरे जगत की चकाचौंध में ऐसा भ्रमित हुआ कि वह अपने हंस रूप को कभी कल्पनाओं में भी याद नहीं करता और अधिकांष्ता मानव अभाव व तृष्णा वशिभूत निरंकार के भिन्न भिन्न धर्म व मत्तों के लबादे ओढ़े अपने अपने ईष्ट व आराध्यों की भक्ति किये जा रहा है।

ये ऐसा संसार है, जैसा फूल सुमेर ।
पल में यह छुट जावेगा, जैसे औस सवेर ।।

गर्व ना कीजे देह का, जो है बिन प्राण ।
बिन हंसा बने तन बुकनी, जिसमें नांहि प्राण ।।

पूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की वाणी अनुसार मानव मूलतः साहिब सतपुरूष जी का निज अंश 'हंसा' है। साहिब सतपुरूष जी स्वयं मूल सुरति पुण्झ हैं, उन्हीं का अंश होने के कारण हंसा भी मूल सुरति रूप है। मानव निज को हंसा मानना तो दूर, वह तो माया में ग्रसित जीवात्मां की सत्ता को भी नक्कार रहा है, तथा सारे के सारे जीवन भर में किये जाने वाले कार्य स्वयं को काया समझ कर ही किये जा रहा है। मानव तो धर्म व मठों के लबादे ओढ़े प्रारम्भिक काल में पुनीत और श्रद्धा भाव से इन भक्तियों का अपनाता ही है परन्तु अंतःकरण में दबे किसी ना किसी प्रयोजन, विवशता वश, सम्मान अथ्वा प्रसिद्धि की लालसा में ही इन भक्तियों की ओर आकर्षित होता है। अधिकांष्ता भक्तजन अपने अंतःकरण में किसी ना किसी प्रयोजन से ही प्रेरित होकर आकर्षित होते हैं। चंद एक भक्तजन तो आवेग में आकर अथ्वा जीविका के चलते ही भक्ति मार्ग को अपना लेते हैं। ऐसा सृष्टि् रचना से लेकर वर्तमान काल तक निरंतर चला आ रहा है।

आंखों के विकार छोड़ दे, मन से विचार दे छोड़ ।
आंखों से अभिमान मिटा, जग की आशा तृष्णा दे छोड़ ।।
देवी देव, धर्म, ये सारे, भरमाते सब जीवो को ।
ये तो केवल शब्द से उपझे, कुछ लाभ नहीं जीवों को ।।

इनसे भी निम्न स्तरिय अस्सी प्रतिशत मानव तो अद्योगत्ति में भक्तियों का ढौंग ही किये जा रहे हैं। निज का कोई भाव–विचार, अच्छा–बुरा, ऊँच–नीच तनिक भी अंतःकरण में मनन किये बिना ही अपने परिवार व बड़ों की देखा देखी में ही अंध भक्ति में ही उलझे हुऐ हैं। ये सब भलि भांति जानते हुऐ भी कि इन भक्तियों द्वारा उनके परिवार में से कोई भी इससे पूर्व मुक्ति अथ्वा मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सका और ना ही जीवन में लेष मात्र भी आध्यात्मिक उन्नत्ति ही कर पाया। पर ज्ञान, धर्म की बड़ी बड़ी ढींगे हांकने और अपनी संस्था व अपने गुरूओं की महिमां मण्डित करने के कार्य करने में झुटे हुऐ हैं। दूसरों से तर्क वितर्क करते समय अक्सर भाषा की मर्यादा का उल्लंघन तक कर बैठते हैं इसका उन्हें आभास भी नहीं होता। वार्तालाप करते समय अभद्र भाषा का प्रयोग करते हुऐ लेष मात्र भी ग्लानि महसूस नहीं करते। क्योंकि प्रलोभन से भरी मोहनी मन माया से ग्रस्त मानवों के भीतर समय व काल के अनुसार संवेदना कम से कमतर होती चली जाती है। तभी तो पहले पहल दिनचर्या का कृत करते समये अगर कोई कीट भी मर जाता था तो मानव के भीतर संवेदना भरा भाव (व्यथा व तड़प) उमड़ पड़ता था।

जंगम जोगी सेवडा, पड़े काल के जाल ।
अक्का (सार) नाम जाने बिना, काल का छूटे न जाल ।।

मरते मरते जग मरा, जागा मरा ना कोये ।
जागा तो जीते जी मरा, फिर आवागमण ना होये ।।

आज से लगभग सात हज़ार वर्ष पूर्व सारा मानव समाज शुद्ध शाकाहारी जीवन जीता था। धीरे धीरे ज्युं ज्युं संवेदना कम से कमतर होती गई, मानव जीवों की हत्या कर के मास भक्षण के रास्ते पर चल पड़ा, मांस भक्षण के प्रारम्भिक काल में ऐसे मानवों को राक्षस ही कहा जाता था। वर्तमान काल में आज के मानव समाज में नब्बे प्रतिशत मानव मांसाहार का सेवन करते हुऐ पूर्ण संवेदनहीन हुऐ अपने इस कृत को धर्म सम्मत श्रेष्ठ कर्म सिद्ध करने पे तुले हुऐ हैं। मानव के भीतर राक्षस वृत्ति बड़ने से संवेदना कम से कमतर होती चली जाती है। प्रारम्भ में दूसरे जीवों का मांस भक्षण करते करते संवेदनहीन मानव अपनी संतानों (कन्याओं) तक की गर्भ में ही हत्या करवाने में लेष मात्र भी नहीं झिझकता।

क्या किया जग आई के, क्या करेगा जाये ।
मांगते आया जगत में, मांगते ही कूच करि जाये ।।

आत्म तूं तो जोत सरूप है, अपना मूल पहचान ।
मन के वश पड़ के, भूली निजघर निजधाम ।।

आज से लगभग दौ से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व उभरे नये नये धर्मों ने जीव हत्या को पूजा पाठ व भक्ति का अंग ही बना दिया। वर्तमान काल में मानव जनसंख्या का लगभग सत्तर प्रतिशत भाग तो प्रेत व राक्षस वृत्ति वाले धर्मों को मानने वालों का ही है, अब तो सनातन (हिन्दु समाज) धर्म में भी बलियों व कुर्बानियों की प्रथा निरंतर बड़ती ही चली जा रही है। इस वृत्ति से संवेदनहीन हुआ मानव समाज अपनी अद्योगति की ओर बड़ी तीव्रता से बड़ता जा रहा है। सबसे अनोखी विचित्र व विस्मय कर देने वाली बात तो यह है कि राक्षस वृत्ति वाले (मांसाहारी, दुराचारी, चौर, डाकु व दुष्ट प्रवृत्ति के मानव) मानवों की भक्तियां भी इनके ईष्ट् स्वीकार करते हैं। ऐसे भक्तजनों की मनोकामना भी स्वयं भगवान निरंकार जी उनके ईष्टों का रूप धारण करके ही पूर्ण करते हैं। इतना ही नहीं भगवान निरंकार तो ऐसे मानवों की सभी कमियों को अनदेखा करते हुऐ उनकी मांगो को पूर्ण करने को ही प्राथमिकता देते हैं। मानव समाज की अधिकांश जनसंख्या समय से पूर्व अपने सैंचित प्रालब्ध कौष में से श्रेष्ठ कर्मफल वर्तमान काल में ही भौग लेने के कारण ही भविष्य में अति कष्टकारी प्रेत योनियों और घौर नर्कों में वासा पाने को विवश हो जाते हैं। भक्ति के फलस्वरूप जो भी फल मानव अपने जीवन में पाता है वह सब मृत्यु उपरांत इस धरा पर ही तो छूट जाता है।

काल हमारा कर गाहे, दिन दिन बीता जाई ।
लाखों जन्म सूं जागे नांहि, सोवत बीता जाई ।।

सुनो सब्द पल छिन, शुभ घड़ी याद पड़े जब नाम ।
लग्न मुहूरत झूठ सब, और बिगाड़े काम ।।

निरंकार भगवान ही सभी आराध्यों व ईष्टों के रूप में अपने सभी भक्तजनों की मनोकामनाऐं पूर्ण करते हैं। सृष्टि् सहित सारी की सारी त्रिलोकि कर्म फल के अटल सिद्धांत से बंधी है। भगवान निरंकार सहित कोई भी ईष्ट व आराध्य कर्मफल बंधन के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इसी कारण कोई भी ईष्ट अपने अपने भक्तजनों द्वारा मांगी गई मन्नतों और ईच्छाओं को उन्हीं के सैंचित प्रालब्ध कौष में से ही समय से पूर्व उन्हें उपलब्ध करवा देते हैं। जीवात्मां अनजाने वश भौतिक माया वशिभूत मांगें मांग मांग कर अपने लिये दुखों के अंतहीन क्रम में निरंतर उलझता चला जाता है। दूसरी ओर निरंकार भगवान सहित सभी ईष्ट मानव की सभी मांगे पूर्ण करके उसका विश्वास अपने प्रति और भी प्रगाढ़ कर देते हैं जिससे मानव अपने मूल स्त्रोत से और भी दूर होता चला जाता है। सर्वदा ज्ञात रहे, मानव की जो मांगे ईष्ट अनसुनी कर देते हैं वह फल मानव के प्रालब्ध में सैंचित ही नहीं होता। प्रालब्ध में नीच व निम्न स्तरिय कर्म अत्यधिक बड़ जाने से ऐसे मानव दुखदायी कष्टों को भौगने हेतु भौग योनियों में जन्म लेते हैं।

मास खात मंदिरा पिए, सो नर काल सताये ।
जुआ खेले चोरी करे, अंत प्रेत योनी में जाये ।।

मांसाहारी मानवा, दुखी रहत जग आन ।
तांकी संगति जो करे, उसकी भक्ति में हान ।।

मानव समाज में से चंद भद्रजन जप, तप, पुण्य, ध्यान, संयम व पवित्रता को धारण करते हुऐ भक्ति की उच्च परिकाष्ठा को प्राप्त होते हैं वे मृत्यु उपरांत पित्र लोक, स्वर्ग व सुन्न लोकों में अपने कर्म फल अनुसार एक से बड़ कर एक भौग भौगने के उपरांत तथा श्रेष्ठ कर्म फल क्षीन होने पर पुनः धरा पर राज योग से युक्त होकर मानव रूप में जन्म लेते हैं। जिन भक्तियों द्वारा जन्म मरन से जीवात्मां का छुटकारा नहीं होता अर्थात आवागमण से मोक्ष नहीं मिलता ऐसी सभी भक्तियां गौनि भक्ति कहलाती हैं।

शुद्वी तो जीवित मरन सूं, बिन मरे ना शुद्धि होत ।
मन माया सत्ता जब साथ है, कभी ना शुद्धि होत ।।

नहाये धोए क्या भया, जे मन की मैल न जाए ।
मन ही तो मैला भया, सुरति सूं धोया जाए ।।

सभी प्रकार की भक्तियां अपने अपने दायरे के अनुसार श्रेष्ठ हैं तथा भक्तजनों को इन भक्तियों में ईच्छित मांगों के अनुसार ही फल प्रदान करती हैं। परन्तु मानव भक्तियों के फलस्वरूप अंतहीन मांगें निरंतर मांगता ही चला जाता है। अजर अमर अविनाशी हंसा स्वामी कायाधारी मानव अपने आप को ना जानता पहचानता हुआ अपने से नित्कृष्ट अवस्था वाले सृष्टि् संचालन हेतु उपझे ईष्टों से मांगता ही चला जाता है। ये अंतहीन अभिलाषाओं व प्रयोजनों भरी भक्तियां मानवों को अंतहीन आवागमण के मकड़ जाल में उलझाये रखती हैं। जिन भक्तियों से मानव मन माया को छोड़ कर अपने मूल को प्राप्त नहीं होता वे सभी भक्तियां गौनि भक्ति कहलाती हैं।

आत्मां खाती पीती नहीं, ना रूप रंग को पाये ।
ना ये टूटे, ना मल लागे, ना कुचलाई न बिगाड़ी जाये ।।

सतलौक दूर नांहि, बस तुझे जागना है ।
थक कर क्यों बैठे हो, सतलौक पास ठिकाना है ।।

अगर मानव किसी भी सर्गुण अथ्वा निर्गुण रूपी ईष्ट व आराध्य की भक्ति मांग रहित हो के करे तो प्रत्येक प्रकार की भक्तियां देर सवेर उसे सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरण में पहुंचा ही देती हैं। निरंकार भगवान जी साहिब सतपुरूष जी से किये कौल कराल वचन वश ऐसे मांग रहित भक्तजनों को स्वयं सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरण में पहुंचा ही देते हैं। सहज मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू पूर्ण सुरतिवान होते हैं तथा उनके द्वारा 'सार सब्द' की विदेह दात साधकजनों को सुरति से प्रदान करने के उपरांत उनके

अंतःकरण में साहिब सतपुरूष जी का वास हो जाता है। साधकों द्वारा सुरति में विदेह दात 'सार सब्द' को सिमरने से साधक पूर्ण सुरतिवान होकर सतगुरू परमहंस जी के संग आवागमण से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

मांसाहारी मानवा, संवेदना मरि मरि जाये।
दूजों के जो प्राण हरे, प्रेत बन अति कष्ट पाये ।।

जाका ह्रदय संवेदना भरा, वाको संत तूं मान ।
प्रेम प्रीत सुरति भरा, सब का हितकारी जान ।।

वे नाम जी सत लौक सूं आए, सब सोये जगाने को ।
सार नाम दात वो बांटते, सतलौक ले जाने को ।।

प्रलयः महांप्रलयः और विराट प्रलयः भेद

67 – प्रलयः

प्रलयः काल में पंच तत्व, सब विलय हो जायें।
सुन्नकार निरंकार ज्योति, ता में हंसा समाये।।

आत्म देव निर्लेप साहिबन सुरति, स्त्री पुरूष ना जान।
जमना मरना घटना बड़ना नांहि, अजर अमर ले जान।।

प्रलयः होना व सृजन होना एक निरंतर चलने वाला क्रम है। त्रेता काल से ही सूक्ष्म प्रलयः का प्रारम्भ हो जाता है, अकस्मिक व प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाली घटनाओं में अनगिनत सैंकड़ों जीव मारे जाते हैं, ये भी एक प्रकार से सूक्ष्म प्रलयः ही है। सूक्ष्म व लघु प्रलयः इन का कभी ना रूकने वाला क्रम महांप्रलयः तक निरंतर चलता रहता है। अधिकतर घटनाऐं मानवीय त्रुटियों से ही होती हैं पर कुछ घटनाऐं प्राकृतिक तौर पर भी होती हैं जिनमें सैंकड़ों प्राणी मारे जाते हैं (मक्का में हर वर्ष हज के दौरान लाखों प्राणियों का वध होना, क्रूर–क्रिया अर्थात मानव निर्मित लघु प्रलयः ही है)। लघु प्रलयः में हज़ारों–लाखों मनुष्य अर्थात जीव मारे जाते हैं।

महांकाल भयंकर रूप है, जीवों को भी ग्रास बनाये।
प्रलयःकाल सब लील ले, सब कुछ उसी में जा समाये।।

ये प्रलयः अक्सर प्राकृतिक कारणों से ही होती हैं। कभी–कभार मानव महां–जंगों के रूप में स्वयं ही प्रलयों का कारक होते हैं। प्रलयः क्रिया तो नये–नये द्वीपों के सृजन व विनाष काल से भी होती है। एक बार तो परमाणु बमों के कारण भी लघु प्रलयः धरती पर घट चुकी है। सूक्ष्म व लघु प्रलयों का ये क्रम निरंतर जारी है और आगे भी चलता रहेगा क्योंकि महां प्रलयः में अभी भी बहुत समय बाकी है।

काल विक्राल महांकाल, मन माया सबै निरंकार।
जीव ताके वश पड़ा, निज भूला बना लाचार।।

आदिकाल से आगे का सफ़र आदि मानव काल व सभ्यता के विकसित होने की गाथा वेदों, शास्त्रों व बहुत से धार्मिक ग्रंथों में वर्णित है। बार–बार महांप्रलयः उपरांत, अहोरात्री तथा फिर से सृष्टि सृजन का यह निरंतर क्रम निरंकार भगवान 17 आयोजन कौड़ी काल तक चलाऐमान रखते हैं।

मंदिर मस्जिद ग़िरजाघर, भक्ति से दूर के डाल।
वेद क्तेव तौरा कुराण, निरंकार के सब डाल।।

वेद क्तेव भ्रम में डालते, नर ना जाने साहिब दरबार।
भ्रम करि कर्म धर्म उलझाया, नर ना जाने सच्ची सरकार।।

वेदों में तथा बहुत से धर्म ग्रंथों में चार युगों, तीन गुणों तथा कर्मों पर विस्तार से वर्णन मिलता है। मानव सभ्यता से पहले व प्रलयः उपरांत काल पर बहुत कम लगभग ना के बराबर ही लिखा गया है क्योंकि जीवात्म निज को जानना ही नहीं चाहता तो सृष्टि उत्तपत्ति व विनाष काल की बात पर ध्यान कौन दे। ऐसा भी नहीं की मानव को जन्म मृत्यु का ज्ञान न हो पर मोहिणी माया के सम्मोहन पाश में सोये–सोये ही मानव सारा जीवन माया निंद्रा व स्वपन में ही व्यतीत कर देता है। फिर भी चाहे ईक्का–दुक्का ही सहि, आध्यात्मिक उन्नति को प्रयत्नशील मानव सदा इस धरा पर पहले भी प्रयासरत रहे हैं, वर्तमान में भी हैं और आगे भी रहेंगे। आध्यात्मिक जिज्ञासु–जन ही स्वाध्याय व आध्यात्म ज्ञान विधियां जानने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। भौतिक जगत ज्ञान–विज्ञान से संसारिक मानव माया–संग्रह करने तथा उसे भौगने में ही अपना सारा जीवन नष्ट कर देता है। मानव निज भौग हेतु माया–संग्रह करता जाता है जिससे उसकी और अधिक तृष्णाऐं बड़ती जाती हैं। इन तृष्णाओं से ही वह अंतहीन काम–क्रौध, रोग, वेदना व कुण्ठा अपने लिए उपझाता जाता है। सहत सत मार्ग के साधकों की आध्यात्मिक ज्ञान वृद्धि से परहित, त्याग व वसुदेव कटुम्भ की भावना से ओत प्रोत हो कर ''काया व जग नाशवान है'', ऐसा उसके क्रिया व भावों में दर्शता है। संसारी जन केवल भौतिक ज्ञान

अर्जित करते हैं तथा भौतिक शब्द ज्ञान ही मानव मूल्यों का ह्रास अर्थात अंताकरण में अंशाति उत्पन्न करता है। वहीं पे आध्यात्मिक–ज्ञान वैराग्य, ठहराव, चित्त को शांतमयी व परहित भाव से युक्त करता है।

68 – अहोरात्रि माया

अहोरात्री काल मोहनी माया अनादि काल, आदि युग, सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलयुग से पहले व प्रलयः उपरांत का काल है :–

काला सुन्न पँच तत्व है, जो निराकार भगवान कहलाई।
इस को तुम मन ही जानो, महाँप्रलयः उपरांत अहोरात्री कहलाई।।

सृष्टि अरबों–खरबों बार सृजन होती और मिटती रही, ये क्रम निरंतर जारी है तथा अभी भी 17 आयोजन कौड़ी काल की समाप्ति तक मिटती व सृजन होती रहेगी।

संसार के लोग निरंकार को ही, मान रहे हैं साहिब।
निरंकार तीन लोक, स्वर्ग नर्क मृत्यु लोक बिन साहिब।।

निरंकार पंच शब्द उच्चारे, काया भीतर किया ठिकाना।
सोहःम सत्त ज्योति निरंझन रंरकार औंकार, अतः काल ठिकाना।।

नोट :– प्रायः अधिकांश मानव इस मत से सहमत हैं कि कोई न कोई महान सत्ता तो है जो इस सम्पूर्ण जगत को सुचारू रूप से चलाये हुए है। यह जगत माया तजना तो अति कठिन है, इसिलिए तो जगत में अधिकतर प्राणी किसी न किसी ईष्ट को सर्गुण या निर्गुण रूप को मानते पूजते हुए भक्ति में संलग्न हैं।

ईक लख़ अरू नब्बे हज़ार गुरू, पीर पैग़म्बर जग अवतार।
सब मिल इक निरंझन जानो, कहलाये निरंकार अवतार।।

कंई नाम संसार में, तिन से मुक्त ना हो पाये।
सार नाम जो गुप्त है, पूर्ण सतगुरू से कोई पाये।।

69 – अहम से पतन

जगत में लाखों गुरूआजन (निरंकार दायरे के), कथा–वाचक, योगी–योगेश्वर, जपि–तपि, सिद्ध–साद्ध, साधु–संत, ऋषि–मुणि, आध्यात्मिक विद्वान पंडित, पाई–पुरोहित, महंत–मौलवी, पादि्रयों, लामाओं तथा और भी न जाने कितने पथ–प्रदर्शक सभी के सभी शाब्दिक ज्ञान के अभिमान से भरे महां–अंहकारी हैं। इन सब की चेष्टाओं, प्रयत्नों, प्रवचनों, कथाओं, ग्रंथों व महां–ग्रंथों के संग्रहों के संग्रह अम्भार जो मानव कल्याण की भावना से रचे गये, के बावजूद मानव भौतिक जगत को तज कर मोक्ष की ओर अग्रसर ही नहीं हुआ अर्थात इतना सब होने पर भी मालिक को जानना तो दूर, वह अपने निज रूप को ही नहीं जान पाया अर्थात वह तो निरंतर मालिक से दूर अति दूर ही होता जा रहा है। अपने–अपने धर्म गुरूओं, ग्रंथों व गद्दियों को श्रेष्ठ कह के दूसरों को नीचा दर्शाने के लिए अभिमान वश तर्क–वितर्क किये जा रहा है। मनुष्य कुछ शाब्दिक ज्ञान अर्जित कर के अपनी और अपनों की बड़ाई में इतना मग़न हुआ है कि सभी मर्यादाओं और सीमाओं को लगातार रौंधते ही चला जा रहा है। पहले–पहल संवादों में मर्यादाओं की अवहेलना करना, उस पर भी दबंगता भरा व्योवहार करना, फिर भी अगर कोई विरोधाभास हो तो मारा–मारी तक पर भी वह उतर आता है। यह सब अभद्रता मानव धर्म व जेहाद के नाम पर निरंतर किए जा रहा है जो कि धर्म की मूल भावना 'सत्त' से एकदम विपरीत अवस्था है। इसी कारण वर्तमान के संसारिक जीव धर्म व धर्म संबधी कार्यों से दूरियां बड़ाते चले जा रहे हैं।

महांकाल विक्राल है, जीवो को ग्रास बनाये।
प्रलयः काल सब लील ले, सब उसी में जा समायें।।

निरंकार ही है महांकाल विक्राल, बारम्बार सृष्टि् उपझात।
बार बार प्रलयः है लाता, हर बार माया खेल रचात।।

निरंकार सब दे रहा, हवा अन्न पानी बिन दाम।
वोहि देवी देव भगवान, आत्म को वश किया भरमाया त्रिलोकि धाम।।

मंदिरों, मस्जिदों, गुरूद्वारों, गिरजे, मठों और न जाने कितने अनगिनत अनुयायियों के धर्मों और तीर्थ स्थानों से यह धरती भरी पड़ी है। ज्युं–ज्युं ये पूजा व ईबादत स्थल बड़ते जा रहे हैं त्युं–त्युं मानव अपने मूल से दूर अति दूर होता जा रहा है। कहीं न कहीं, चाहे–अनचाहे कोई भारी भंयकर भूल सारा ही मानव समाज किये जा रहा है। इतने आडम्बर रचने के उपरांत भी प्रेम, प्रीत व स्नेह का भाव कम से कमतर होता जा रहा है तथा समाज में घृणा और राग–द्वेष का पसार बड़ता जा रहा है। सभी महान विभूतियों के अथक प्रयत्न व्यर्थ होते प्रतीत हो रहे हैं तथा मानव, धर्मों, समुदायों, गिरोहों व झुण्डों में बंटता ही चला जा रहा है। उपरोक्त सारे के सारे प्रयास तो मानव उत्थान, एकता और मालिक को पाने के लिए ही हो रहे हैं, पर मनुष्य इतना अधिक नीचे गिर चुका है कि वह अपने अपने ईष्टों के नाम पर एक दूसरे को समाप्त करने पर उतारू है।

जब तक पीड़ ना जानी, प्रेम ना उपझे कोये।

कौटि बंदगी ख़ता है, पड़े दोजख मांहि।।

अवतार पैग़म्बर पादरी औलिया, सब हैं मन के अधीन।
सुर नर मुणि सब को डसे, सारा जग है मन अधीन।।

इन सभी द्वंदों को आत्मसात करते हुऐ वर्तमान काल में सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' अपने आध्यात्मिक अनुभव से सभी जग जीवों के कल्याण हेतु प्रयासरत हैं। जग–मानव माया में सोया है तो सुने कैसे ? मानव तो लाखों जन्मों से अनंत अनादि काल से माया मोहिनी, मन की कर्म व ज्ञान ईंद्रियों के वशिभूत निराकार की देवी–देव रूप भक्तियां केवल भौतिक स्वार्थ भाव ही से तो कर रहा है। वह तो निज स्वार्थ के कारण इस मन मोहिनी सम्मोहन भरी मन–तरंग अधीन हुआ गहरी निंद्रा में सोया पड़ा है, तभी तो उसे निज स्वार्थ सिद्धी बिन कुछ सूझता ही नहीं।

पीर पैग़म्बर कौतव औलिया, मोहनी माया में लीन।
सुर नर मुणि सब को डसे, सब इस नागिन के अधीन।।

इस मानव को गहरी निंद्रा से जगाने का ये एक मात्र प्रयास भर है। बिन जागे निंद्रा में सोये मानव के सामने कितना भी नृत्य और ज्ञान–विज्ञान का ब्ख़ान क्युं न करें, सब व्यर्थ ही है। मन रूपी देवी–देवों (माया) की आराधना से मन–माया व प्रालब्ध रूपी मैल नहीं मिटती, तभी तो साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' इस त्रिलोकि से परे सतलोक सुरति दात लिए जग में पधारे हैं। त्रिलोकि माया से परे सतलोक सुरति ''सार सब्द'' दात ही मानव चेतना को जाग्रत कर अपने मूल की ओर अग्रसित कर सकती है। इसी पुनीत कार्य हेतु सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' पिछले सात वर्षों से भी अधिक समय से निरंतर प्रयासरत हैं।

जो सार सब्द पा लेत है, वह सब्द का ही हो जात।
बृहंगा जब कीट को, अपनी सब्द सुरति है देत।
वह लारवा सुरति पाकर, बृहंगा रूप ही हो जात।
ऐसी शक्ति सार सब्द की, जीव हंस रूप हो जात।।

हे जीवो ! इस दुर्लभ परन्तु अनमोल जीवन के एक मात्र महत्वपूर्ण ध्येय/लक्ष्य 'मोक्ष' (आवागमण से मुक्ति) के लिए पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' की शरण में आयें क्योंकि वर्तमान युग में वे ही केवल एकमात्र पूर्ण संत परमहंस हैं जो जीवों को सत्त सुरति दात प्रदान कर के मोक्ष पथ की ओर अग्रसित कर सकते हैं।

अब मंदिर मस्जिद बह गये, अंदर विराजे नाम।

मन माया परिक्रमा करे, सुरति रमी सतनाम।।

प्रलयः काल में पंच तत्व, सुन्न में जा समायें।
सुन्नकार निरंकार ज्योति, ता में हंसा समायें।।

70 – महां प्रलयः काल

वोहि रचयो वोहि संहारे, वोहि पूजा जाये।
जीव को मन रूप भरमाये, महांकाल कहलाये।।

सारी की सारी त्रिलोकि चुम्भकिय तरंगों अर्थात गुरूत्वाकर्षण से बंधी है जिसमें सारे ग्रह, नक्षत्र, चाँद, तारे, सारी की सारी आकाश गंगाओं सहित सारे ब्रह्मण्ड में अपने–अपने स्थान पर निश्चित दूरी बना कर विद्यमान रहते हैं। हर एक नक्षत्र अपने निज चुम्भकीय तरंगों से दूसरे नक्षत्र को आकर्षित करता है। चुम्भकीय गुरूत्वाकर्षण में प्रलयः से पहले व्यवस्था गड़बड़ा जाती है जिससे सारे ग्रह–नक्षत्र एक दूसरे से टकरा कर अंततः धरा पर गिर कर जल में वलीन हो जाते हैं, ये सारे ग्रह–नक्षत्र जल से उपझते और महांप्रलयः से पहले इसी में समा जाते हैं। धरा पर जल व जल के संचार से प्रलयः काल में सारी की सारी त्रिलोकि धरा–सहित जल में समा जाती है। चहुं ओर जल ही जल के कारण धरती, ग्रह व नक्षत्रों की अपार अग्नि से उत्पन्न उष्मां से सारे का सारा जल वाष्प हो कर वायु में समा जाता है। सभी कुछ वायु में समाने से वायु की गति मंद से मंद होते हुए स्थिर हो जाती है तथा वायु भी सुन्न में वलीन हो जाती है अर्थात धरती जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में तथा वायु सुन्न में समा जाती है।

सात सुन्न सात सुरति स्थाना, ईक्किस ब्रह्मण्ड स्थाना।
काल निरंझन रचियता सबन का, सबै जीव भरमाना।।

नोट :– महांप्रलयः (हर बार 8 अरब 64 करोड़ वर्ष काल उपरांत) में धरती चाँद–सितारे ग्रह–नक्षत्र सब जल में समा जाते हैं व जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु सुन्न में और निरंकार भगवान भी सुन्न में समा जाते है, इसी क्रमः से सारी त्रिलोकि ही सुन्न में समाहित हो जाती है।

अंतिम विराट प्रलयः (17 आयोजन कौड़ी काल उपरांत) से ठीक पहले त्रिदेव व निरंकार स्वंय भी नष्ट हो जाऐंगे, ये सभी तो शब्द से ही प्रगट हुए हैं तथा इसी में ही जा समाऐंगे। नां इसके उपरांत फिर कोई सृजनता होगी और ना ही कोई प्रलयः होगी। हर ओर सतलोक ही सतलोक होगा तथा सब (जीवात्म मन माया तज) हंसा बन अपने मूल साहिब सतपुरूष जी में जा समाऐंगे। 17 आयोजन कौड़ी काल तक सभी परमहंस सतलोक में साहिब सतपुरूष जी में ही समाहित होते हुए भी अपनी निज

पहचान बनाये रखते हैं परन्तु 17 आयोजन कौड़ी काल उपरांत सब साहिब अंश अपने मूल में समा सतपुरूष ही हो जाऐंगे तथा सतपुरूष जी ही सतलोक हैं तथा चहुं ओर सतलोक ही सतलोक होगा।

71 – अहोरात्री काल

कयामत की काली रात्री, सब को संग ले डुबाये।
चार अरब बत्तिस करोड़ वर्ष, हर आत्म काल में जा समाये।।

महांप्रलयः के उपरांत केवल आद्यशक्ति का अस्तित्व ही शेष बना रहता है और त्रिदेव सहित सभी देवी–देव निरंकार में ही जा समाते हैं और निरंकार आद्यशक्ति सहित स्वयं भी सुन्न ही में लीन हो जाते हैं। तब अहोरात्री काल (संत–जन इसे निराकार की रात अथ्वा निंद्राकाल भी कहते हैं) प्रारम्भ होता है। अहोरात्री काल में 4 अरब 32 करोड़ वर्ष काल तक चहुं ओर से सुन्न ही सुन्न होता है। इस काल में सब हंसा भी स्थिर परन्तु चेतन अवस्था में सुन्न में ही विद्यमान रहते हैं, क्योंकि हंसा चेतन सुरति ही है तथा निंद्रा से पूर्णतः मुक्त है, निंद्रा तो माया रूपी काया का एक व्यसन है। सब तरफ शांतमय ठहराव, हर ओर सुन्न, बिना किसी गति–विधि के चहुं ओर अंधकार ही अंधकार फैला होता है।

72 – अनादि काल (सुशुप्त काल)

अनादि काल 4 अरब 31 करोड़ वर्ष का होता है इसको मुख्यता 5 भागों में विभक्त किया गया है :–

चार अरब ईकत्तिस करोड़ वर्ष, बिन हंसा ही बीता जाये।
ईक करोड़ वर्ष जीव प्रकटें, शेष अनादि काल कहाये।।

(1) पंच तत्व क्रिया काल (2) धमक (विस्फोट) काल (3) हिम काल
(4) सृजन काल (5) वनस्पति जीव जंत काल

(1) पंच तत्व क्रिया काल :– इस काल की आयु लगभग 150 करोड़ वर्ष काल होती है। अहोरात्री काल अर्थात भगवान निरंकार की रात्री काल के समय की समाप्ति उपरांत सुन्न में हलचल अर्थात घर्षण होने से वायु की उत्पत्ति होती है। वायु की उत्पत्ति के उपरांत बिना किसी बाधा के वायु तेज गति से चलने लगती है, हर ओर से अति वेग से वायु के गमण और टकराव होने पर अग्नि की उत्पत्ति होती है। अग्नि की उत्पत्ति होने पर वातावरण में तापमान बड़ने लगता है जिससे वातावरण की नमी का वाष्पिकरण हो कर वायु में जल का घनत्व

अत्यधिक बड़ता जाता है और वातावरण में इसके निरंतर जमा होने के कारण काई और शैवाल का जमाव होने लगता है। यही काई और शैवाल आगे चलकर धरती रूपी एक महां पिण्ड का रूप धारण करते हैं। जल की उत्पत्ति के काफी समय उपरांत जल में से ही धरती की उत्पत्ति होती है। ये क्रम हर बार सृजन से पूर्व अहोरात्री उपरांत बारम्बार दोहराया जाता है। इस काल को **'सुशुप्त काल'** भी कहा जाता है।

(2) धमक (विस्फोट) काल :— धमक काल की आयु लगभग 135 करोड़ वर्ष काल है। पृथ्वी उत्पत्ति काल से पूर्व ये सारे के सारे ग्रह, नक्षत्र, सितारे एक ही पिण्ड के रूप में विद्यमान होते हैं। भगवान निरंकार, इस पिण्ड को अग्नि रूप में ददिप्त—मान रखते है। अत्यधिक उष्मा बड़ जाने पर इस में एक भंयकर धमक (विस्फोट) के साथ ये पिण्ड कंई अनगिनत भागों में बंट जाता है। यही पिण्ड आगे चल कर ग्रह व नक्षत्र कहलाते हैं, प्रारम्भ काल में धरा अति ददिप्तमान ज्वाला के मानिंद होती है। ये धरा इतनी प्रज्जवलित होती है कि सारी की सारी धरा व इसके आस—पास का वातावरण भी अत्यधिक उष्मा से भर जाता है। अत्यधिक उष्मा से धरती की सारी जलरूपी नमी वाष्प हो के चहुं ओर घौर—सुन्न का घेरा फैला देती है जिससे चहुं ओर अंधकार ही अंधकार छा जाता है। करोड़ों वर्ष व्यतीत होने उपरांत धरा के उपर की सतहः राख के अम्भार से ढक जाती है। धरती के उपर राख से ढके होने के बावजूद भी ये भीतर से ददिप्तमान ही रहती है।

(3) हिम काल :— इस काल की आयु लगभग 92 करोड़ वर्ष काल तक होती है। वातावरण में धूल व नमी से पृथ्वी पर घनघौर वर्षा—काल का प्रारम्भ होता है। अत्यधिक वर्षा होने से धरती में जल की वृद्धि होने लगती है जिससे अधिकांश धरती का भाग समुंद्रों में बदल जाता है और कुछ उच्च सतहः वाले भाग भूमि और पर्वतों में रूपांतरित हो जाते हैं। थोड़ा काल बीतने उपरांत धरती के भीतर की उष्मा बड़े—बड़े ज्वालामुखियों के रूप में फटने से और इस कारण अत्यधिक जल के वाष्पिकरण से वातावरण नमी से भर जाता है। अत्यधिक मात्रा में नमी वातावरण में छा जाने से हिमयुग का प्रारम्भ होता है। हर ओर हिम ही हिम बरसने से धरा चहुं ओर से हिम से ढक जाती है। इस काल का वर्णन बहुत से ग्रंथों में **हिम युग या हिम महां—सदी** कह कर भी किया गया है।

सुशुप्त काल के उपरांत धमक काल व हिम युग की प्रक्रियाऐं करोड़ो वर्ष काल तक निरंतर चलायेमान रहती हैं, इनके अंत के उपरांत धरा के आसपास से सारे का सारा जल, राख़ व धूल बार—बार बरसने से सागर और पृथ्वी उपझने लगते हैं। परन्तु उपर से धरती शांत व शीतल होने पर भी भीतर से अभी के वर्तमान काल तक भी ददिप्तमान है, तभी तो उस काल से आज के वर्तमान काल तक ज्वालामुखियों के फटने का क्रम आज भी निरंतर चल रहा है। धरा पर उष्मा से नमी के वाष्पिकरण से जल बरसा, जिससे वातावरण शांत व स्वच्छ हो गया, स्वच्छ वातावरण होने पर सूर्य के प्रकाश से उष्मा तथा चाँद के प्रकाश से शीतलता का धरा पर आगमन हुआ, जो आगे चलकर वनस्पतियों व जीवों के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। बहुत से अनगिनत ग्रह—नक्षत्रों पर हिमयुग या वर्षा का न होना उन्हें आज तक भी ददिप्त—मान व प्रकाशमय रखे हुए है। ठीक इसी प्रकार ऐसा ही एक ग्रह 'सूर्य' भी इस सौर मंडल का केन्द्रिय भाग है तथा ऐसे ही कंई और भी अनेक ददिप्त—मान सितारे इस ब्रह्मण्ड में अभी भी विद्यमान हैं।

(4) सृजन काल :— सूर्य और चंद्रमां द्वारा धरती पर प्रकाश, उष्मा और शीतलता के

पदार्पन से सृजनकाल का प्रारम्भ होता है। सृजन काल की आयु लगभग 54 लाख वर्ष काल है। सृजनकाल में कंई छोटे–छोटे पिण्ड धरा के अपने गुरूत्वाकर्षण के कारण धरती से टकराने लगते हैं जिससे केवल धरती में ही नहीं अपितु बड़े–बड़े ग्रह–नक्षत्रों के आस–पास के छोटे–छोटे पिण्ड भी उन्हीं में समाने लगते हैं। सृजनकाल के प्रारम्भ में ये क्रम बड़ी तीव्र गति से चलता है परन्तु आज के वर्तमान काल में कभी कभार किसी न किसी पिण्ड के धरती से टकराने की घटना सुनने में आ जाती है। इन छोटे पिण्डों को वर्तमान काल में उल्कापिण्ड के नाम से भी जाना जाता है। इन उल्कापिण्डों के गिरने से धरती के वातावरण तथा सतहः पर रसायनों और गैसों का संचार हुआ जिससे धरती के आस–पास के वातावरण में स्थिरता आने लगी। ज्वालामुखियों और हिमखंडों से धरा पर पहाड़ व महां बर्फीले क्षेत्रों (दक्षिणी ध्रुव और उत्तरी ध्रुव) का उद्य हुआ। धीमें–धीमें धरा का वातावरण वनस्पतियों और जीवों के सृजन के अनुकूल होने लगा। सुशुप्त काल से जीव–सृजन काल तक सैंकड़ों करोड़ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं तब जा के कहीं जीवन का संचार प्रारम्भ होता है।

निरंकार रचयो ज़मीं अस्माना, अनगिनत लोक जीव जंत बसाये।
मोक्ष धरा पर जन्म है पाया, मूल को पाये या काल समाये।।

ईक रचना और प्रलयः में, 8 अरब 64 करोड़ वर्ष भरमाये।
आधा काल सृष्टि् चक्र में, बाकी अहोरात्री कहाये।।

धरा पर सब से प्रथम वनस्पति काल का प्रारम्भ होता है। सागर जल आरम्भ में तो मीठा था जिस कारण जल के आस–पास और अंदर–बाहर शैवाल (काई) एकत्र होने लगी। काई में नमी होने के कारण वातावरण में जीवाष्म अथ्वा जीवाणु क्रियाशील हुऐ और धरा पर सर्वप्रथम घास व वनस्पतियां उत्पन्न होने लगी। कंई वर्षों उपरांत अनुकूल परिस्थितियों व वातावरण से कुछ वनस्पतियां घनिष्ठ व बलिष्ठ रूप ले कर वृक्षों के रूप में पनपीं जिससे धरा पर जंगलों का सृजन और विस्तार होने लगा। अब धरा पर नमीं वाले स्थानों से जीवाष्म अथ्वा अणु का पसार सारे वातावरण में होने लगा। इन जीवाष्म किटाणुओं की क्रियाशीलता आरम्भ में शैवाल अर्थात काई के आस–पास तक ही सीमित थी। जल से शैवाल उत्पन्न व एकत्र होके अंत में लम्बे काल के उपरांत धरा का ही रूप धारण कर लेती है। इसी क्रम में धरा पर वनस्पतियां उपझीं व वृक्षों और पौधों का विस्तार और पसार हुआ। ये जीवाष्म जल में प्रवेश कर अपने आप में उन्नत हो के वनस्पति व पौधों के रूप में विकसित हुऐ जिन्हें आज के युग में समुंद्री वनस्पति अथ्वा शैवाल कहा जाता है। वातावरण में धूल शांत होने तथा अति लम्बे काल उपरांत सूर्य की किरणें धरती पर वातावरण स्वच्छता व शुद्धि के कारण सीधी पड़ने लगी जिससे धरा का वातावरण हल्की उष्मा व नमी से भर गया, इस उष्मा से जीवाष्म किटाणु सुदृढ़ हो के जल, थल व नभ में विचरण करने लगे और अनुकूल उष्मा पाते ही क्रियाशील होकर विस्तृत होने लगे।

(5) वनस्पति जीव जंत कालः– जीवाष्मों के क्रियाशील होने पर जीव–जंत काल का प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में धरा पर वनस्पति के अति विस्तार के कारण हवा में जल व उष्मा की मात्रा बड़ी जो आगे चल के जीवाष्मों और किटाणुओं की उन्नति में अति सहायक हुई। इसी अनुकूलता के कारण अलग–अलग जीवाष्म मिल कर धरा पर जीव उत्पति में सहायक हुए। आरम्भ काल में धरा पर अति छोटे बिन पांव के रैंगने वाले जीव विकसित हुए जो प्रथम बार

जलाशयों और नमी वाले स्थानों के आस–पास उत्पन्न हुए। आरम्भकाल में खाने और जल की अधिक प्रचूरता थी। वनस्पतियों में स्वास्थवर्धक जीवाष्म और बलिष्ठ परमाणुओं से युक्त पदार्थों तथा वातावरण में नमीं होने के कारण जीवाष्मों को जीवों के रूप में विकसित होने में अत्यधिक सहायता मिली। थोड़े ही अंतराल बाद धरा पर ये जीव जल व थल में विचरने लगे तथा वातावरण और स्थितियों के अनुकूल इनके अंग भी विकसित होने लगे। इन सभी के विकास के क्रम में जल में मछलियां और धरती पर रैंगने वाले जीव, पेड़–पौधों और वनस्पतियों में विचरने लगे। पेड़ों तथा ऊंचाई पर रैंगने वाले कीटों के पंख निकल आऐ और विकसित हो के इन्होंने पतंगों व पक्षियों का रूप धारण कर लिया।

73 – आदि काल

विरहन रोवे रात दिन, सेवक फिरे उदास।
सच्चे सतगुरू जब मिलें, बुझती आत्म प्यास।।

हर सृष्टि् संरचना काल में वातावरण की शुद्धि व प्रचूर मात्रा में प्रौटीन और विटामिन की उपलब्धता से जीवों का तीव्रता से विकास होता है। जीवों के विकास के क्रम बड़ते–बड़ते कुछ उड़ने वाले पंखधारी जीव, परिंदे, पक्षियों के रूप में विकसित होके नभ में विचरने लगे। धरती पर रैंगने वाले कुछ जीव–जन्तु विकसित होते होते पशुओं का रूप लेने लगे। अलग–अलग स्थानों के वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार इनका आकार एक दूसरे से भिन्न–भिन्न रूप में विकसित होने लगा। सब जीव–जन्त तथा पेड़–पौधों और वनस्पतियों के सृजन होने उपरांत मानव का उदय इस धरा पर होता है। आरम्भ काल में मानव पशुवत ही था, सारी मानव काया बालों से ढकी होती थी और उसकी चाल लगभग रैंगने वाले कीड़े जैसी होती थी। आदि काल में मानव ने अपने आकार से मिलते–झुलते पशुओं की देखा–देखी में हाथों और पैरों से चलना सीखा, इसी क्रम के आगे चलते उसने पेड़–पौधों और वनस्पतियों से जरूरत के खान–पान के पदार्थों को, जैसे फल व कंदमूल आदि को खड़े होकर तोड़ कर ग्रहण करना आरम्भ किया जिस कारण वह विकसित होते–होते खड़े हो के चलना और हाथों का उचित प्रयोग करना भी सीख गया। सीधे व खड़े होके चलने के उपरांत अब उसके हाथ पांव बलिष्ठ और अति क्रियाशील होने लगे। इस सारे वनस्पति काल से लेके मानव के विकसित होने तक के क्रम में लगभग एक करोड़ वर्ष बीत गये। यहां तक के काल को अनादिकाल से जाना जाता है। मानव के सृजन काल से सभ्य काल तक की यात्रा आदि काल के नाम से ग्रंथों में वर्णित है। सृजन काल से पूर्व का वृतांत कहीं किसी भी ग्रंथ व धार्मिक पुस्तक में देखने व सुनने में नहीं आता। केवल सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस ही सहज सत सुरति से युक्त होके वर्तमान में समय से पहले पूर्वकाल और आने वाले भविष्य काल का वृतांत अपने अनुभव से कह व लिख पाते हैं क्योंकि हंसा (जीवात्म) प्रलयः से पूर्व और अहोरात्रि काल में तथा इसके उपरांत भी जीवाष्म के रूप में सदैव त्रिलोकि में विद्यमान रहता है। बिना हंसा–सुरति के सारी की सारी त्रिलोकि निर्जीव ही है तथा त्रिलोकि में माया रूपी काया को तज कर ही आत्म हंसा–रूप धारण कर अपने गणतव्य अर्थात मोक्ष को पा सकती है।

राम शरीका राम है प्यारो, दूजा और ना कोये।
अंदर बाहिर अब राम हैं, दूजा बचा ना कोये।।

74 – सहज सुरति पथ

सुरति सूं रचयो संसारा, सुरति सूं उतरो तुम पारा।
विहंगम चाल ही सच्ची चाल, तांसे मिले साहिबन दरबारा।।

देख अजूबा सार सुरति का, पल में पहुंचो निजधाम।
ये देस त्रिलोकि सूं भिन्न, बिन सूर्य चंद्र प्रकाश महान।।

सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों की शरणी आये बिना मोक्ष संभव ही नहीं। निरंकार भक्ति में आशा–तृष्णा व अंतःकरण में मांगें मांगने के बिना कोई भी भक्ति नहीं करता, तभी तो निरंकार भगवान की सत्ता के उच्च प्रकाष्ठा के भक्त–जन स्वर्ग अर्थात अल्प मुक्तियां भौग–भौग कर राज–योग से युक्त होकर पुनः मृत्यु लोक में जन्म लेते हैं और यहां आकर भी भौतिक जगत के भौगों में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं। कोई बिरले जन ही जब निस्वार्थ भाव से निरंकार भगवान की भक्ति करते हैं तो वे भी सुन्न व महांसुन्न लोकों में वासा पाते हैं। एक बात सर्वदा ज्ञात रहे कि बिन पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाये तथा बिना उनकी कृपा के ''सार दात'' मिल ही नहीं सकती और बिन ''सार सब्द'' के पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष से जीव वंचित ही रह जाता है। चूंकि योगी योगेश्वर जन ऋद्धि–सिद्धियों से युक्त होने के कारण कहीं किसी भी लोक में निर्विघ्न आ जा सकते हैं परन्तु अंततः इन्हें भी बहुत लम्बे काल तक इन लोकों में राजसी मनभावन सुख साधन भौगने के उपरांत राजयोग से युक्त होकर फिर से इस धरा पर मानव रूप में जन्म लेना ही पड़ता है। योगी योगेश्वर भी भक्ति काल में कहीं ना कहीं मन तरंग में बह ही जाते हैं अथ्वा अंतःकरण में अभिमान के वश हुऐ ये सहज सत्त मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में नहीं आ पाते। निरंकार भक्ति में मन पूर्णतः कभी नहीं मिटता इसी कारण निरंकार भक्तियों से पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष संभव ही नहीं। निरंकार भक्तियों में इन योगी योगेश्वरों का भी मन पूर्णतः मिट ही नहीं पाता, जिस कारण ये सभी अंतःकरण में अहम भाव से ग्रसित होने के कारण आशा, तृष्णा, व क्रौध को तज ही नहीं पाते जिस कारण ये सभी सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आने से वंचित रह जाते हैं।

आठों पहर सुरति रहो, जैसे स्वांसा डौर।
पल भर भी टूटे नांहि, सुरति स्वांसा डौर।।

सुरति बांध स्थिर करो, कृपा सिंधु वह रूप।
आज्ञा चक्र सुरति रमे, पाओ दर्श साहिबन रूप।।

निरंकार भक्तियों में जो भक्त–जन अपने–अपने गुरूजनों से दीक्षा में अपने आराध्यों के नाम अथ्वा मंत्र रूपी शब्द प्राप्त करते हैं ऐसे भक्त–जन स्वर्ग लोकों आदि में वासा पाते हैं तथा वो भक्त–जन बिन गुरू के भक्ति करते हैं अथ्वा कर्मयोगी होते हैं ऐसे भक्त–जन पित्र लोक में वासा पाते हैं। उपरोक्त दोनों श्रेणियों के भक्त–जन आशा–तृष्णा में लिप्त ही भक्ति करते हैं। इनके ईलावा निरंकार भक्ति में निस्वार्थ भक्ति करने वाले उच्च कौटि के योगी–योगेश्वर जन सुन्न व महांसुन्न लोकों में वासा पाते हैं। ये भक्त–जन लम्बे काल तक स्वर्ग, सुन्न व महांसुन्न में रह कर पुनः इस धरा पर जन्म लेते हैं। सहज सत्त मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस अपने आप में साहिब सतपुरूष जी का ही रूप होते हैं अर्थात सुरति रूप में ही सतगुरू परमहंस जी में साहिब सतपुरूष जी का वास होता है। पूर्ण सतगुरू परमहंस जी द्वारा दीक्षा में दी गई ''सार सब्द'' की दात में स्वयं साहिब सतपुरूष जी ही सुरति रूप में विद्यमान होते हैं। जैसे ही सहज सत मार्ग के पूर्ण समर्पित साधक–जन स्वांसा द्वारा ''सार सब्द'' सिमरन का अभ्यास करते हैं तभी उनकी आत्मां ''सार सब्द'' के सिमरन से सुरतिवान हो के मोक्ष पथ की ओर अग्रसित होती है और अपने मूल में जा समाती है।

दास कहे सुनो संदेश, पाओ सार सब्द विदेह।
सहज मार्ग सार सुरति सूं जुड़ों, तो आत्म हंसा होये।।

75 – मूल केन्द्र

सहज सत मार्ग के सतगुरू परमहंसों की महिमां अनंत, असीम, आलोकिक व वर्णन से बाहिर है। वास्तव में बिना सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाये मोक्ष संभव ही नहीं। तभी तो पूर्ण सतगुरू की महिमां इस त्रिलोकि में सर्वोपरि व अति महांन है।

समय गंवाना आदत तेरी, फिर कैसे रहे इस पल।
कल कल करते अवसर खो गया, अब कैसे रहे इस पल।।

तूं इस पल में जीना सीख ले, यही सुख का आधार।
इस पल में जीना ही जीना है, इसी सूं जोड़ो तार।।

सांईस, विज्ञान व विद्वानों ने अपने–अपने ज्ञान तथा विज्ञान के आधार और तथ्यों के अनुसार आदिकाल के बारे में बहुत कुछ लिखा है। मानव कैसे–कैसे पशु वृति से सभ्यता की ओर बड़ते हुए कैसे पूर्ण विकसित हो आज के मानव की मानिंद पूर्ण विकसित हुआ है। मानव पांच तत्वों से निर्मित तथा कर्म ईंद्रियों, ज्ञान–ईंद्रियों तथा अंतःकरण की ईंद्रियों से युक्त होने के कारण तीव्रता से सभ्य व श्रेष्ठ कायाधारी बना। ये सारा माया प्रपंच भगवान निराकार ने आत्म (हंसा) को कर्म फल के महांकाल के चक्रव्यूह में भ्रमित करने हेतु ही रचा है। जहां ज्ञान–विज्ञान की सभी सीमांऐं भौतिक जगत के अंतिम छोर अर्थात ब्रह्मण्ड तक तो फैल सकती हैं वहां से आगे आध्यात्म ज्ञान के क्षेत्र में प्रयासरत संतों, महात्मांओं, ऋषि–मुणियों की सीमा

का प्रारम्भ होता है। आज के वैज्ञानिक इस सृष्टि के सृजन का केन्द्र ढूंढने में अनंत समय से प्रयासरत हैं। इस ज्ञान को तो सहज सत मार्ग के संपूर्ण संत परमहंसों व विध्वजनों ने अनादि काल से ही वर्णित किया हुआ है। शब्द अर्थात ध्वणि ही सब पिण्डज व सब कायों का मूल है !!!

76 – परम गुप्त भेद

साहिब वे नाम परमहँस जी द्वारा प्रदत

परम श्रद्धेय साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने चार अगस्त 2019 के सत्संग में अपने प्रवचन में कहा कि सतगुरू परमहंस सदा सतपुरूष जी की स्वीकृति और आज्ञा से बंधे हुऐ होते हैं तथा सतगुरू परमहंस सदा साहिब सतपुरूष जी के आदेशानुसार ही अपने जीवन का हर कार्य कार्यान्वित करते हैं। तभी तो सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी प्रवचन करते समय साधकों के आध्यात्मिक कल्याण हेतु बड़ी प्रख़र व तीखी वाणी का प्रयोग करते हैं। परन्तु सत्संग प्रवचन के उपरांत सतगुरू परमहंस जी तुरन्त शांत, सोम्य व भगत वत्सल्य अवस्था में आ जाते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में उनकी वाणी में सुरति प्रवाह एकदम विपरीत होता है।

साहिबन के दरबार में, कर्ता केवल संत।
कर्ता केवल संत, हुक्म में उनके साहिब।।

साहिब संतन के दासा, सतगुरू साहिबन धाम।
मेरा साहिब मुझ को भजे, मैं पाऊँ विश्राम।।

साहिब सतगुरू जी उपरोक्त अवस्था और वक्तव्य को अपने साधकों को समझाते हुऐ यूं बोले :– **''सतगुरू सदा साहिबन के दासा''** ! जो उनके पिछले सात वर्षों के निरंतर किये गये प्रवचनों में कही गई वाणी के एकदम विपरीत थे। पिछले सभी प्रवचनों में सतगुरू परमहंस जी यही दोहराते रहे हैं कि साहिब सतपुरूष जी सदैव संत परमहंसों के कहे गये वचनों को अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं। साहिब सतपुरूष जी कभी भी सतगुरू परमहंसों की ईच्छाओं की अवहेलना नहीं करते।

करन करावनहार मेरा, साहिब सतपुरूष प्यारा।
सतगुरू सदा साहिबन सबूरी, वही करें जो चाहे प्यारा।।

आज के प्रवचनों में सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी से प्रकट 'परम गुप्त भेद' रूपी सब्द सत्त से ओत–प्रोत है तथा जो पिछले सात वर्षों से निरंतर प्रवचनों में अमृत वाणी प्रकट हो रही थी वह भी सत्त से ओत–प्रोत ही थी।

सतगुरू बड़े साहिब से, मन में मत सोच विचार।
साहिब सिमरे सो वार है, सतगुरू सिमरे सो पार।।

अमर देस से हम सब आये हैं, सुन लो वे नाम की बात।
चौथा लोक उस देस को कहते, बेगमपुर की बात।।

सहज सत भक्ति की प्रारम्भिक अवस्थाओं में सहज सत्त पथ के पथिक साधक जन माया रूपी ईन्द्रियों से ही सब कुछ देखते समझते तथा हर कार्य इन्हीं मन अधीन ईन्द्रियों से ही करते हैं। इन प्रारम्भिक अवस्थाओं में साधकों को समझाने हेतु और उनके आध्यात्मिक उत्थान का भाव लिये ही, ''सतगुरू परमहंस जी ही साहिब सतपुरूष जी हैं'' ऐसा कह के सम्बोधित करते हैं। साधकों के गहन अंतःकरण व उनके भावों में साहिब सतपुरूष रूपी सतगुरू परमहंस जी की छवि बस जाये, इस पावन पुनीत मोक्षदायी अभिप्रायः से ही सतगुरू परमहंस जी साधकों की सुरति में साहिब सतपुरूष जी की छवि बसाने का निरंतर भरसक प्रयत्न व चेष्ठा करते हैं। **साहिब सतपुरूष जी का निज कोई भी रूप, रंग, गंध व छवि नहीं है, वे तो मूल सुरति पुण्झ सतलोक निजधाम हैं, उन्हीं का अंश होने से 'हंसा' भी तो चेतन सुरति का ही दूसरा नाम है।**

पूर्ण सतगुरू में सतपुरूष जी वासा, बृहंगा मत है ताके पासा।
बृंहगा मत हो जाके पासा, वोही सच्चा सतगुरू कहे वे नाम दासा।।

सतपुरूष जी अगम हैं, सब घट व्यापक सोई।
ताकि जो भक्ति करे, वाका जन्म मरन ना होई।।

ज्युं ज्युं साधक जन श्रद्धा व पूर्ण समर्पण भाव सहित सतगुरू परमहंस जी से सुरति द्वारा ग्रहण ''सार सब्द'' विदेह दात को ध्यान व सुरति में धार लेते हैं त्युँ त्युँ वह साहिबन सतपुरूष जी के दर्श सतगुरू परमहंस जी के रूप में बारम्बार पा कर सुरतिवान हो जाता है। सुरतिवान होते ही पूर्ण साहिब सतगुरू परमहंस जी अपने साधकों को धीरे धीरे ये आत्मसात करवा देते हैं कि ध्यान व सिमरन में जो सतगुरू दर्श होते हैं वह सतगुरू परमहंस जी के ना होके सीधे साहिब सतपुरूष जी के ही दर्श होते हैं। तभी तो सभी सहज सत भक्ति मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी को साहिब कह के सम्बोधित किया जाता है। साहिब सतगुरू परमहंस जी सदा साहिबन सुरति में रमे हुऐ उनकी आज्ञा व सबूरी में रहते हैं। साधक सर्वदा हर पल ध्यान रखें कि सुरतिवान साधकों के लिये साहिब सतगुरू परमहंस जी ही इस धरा पर साहिब सतपुरूष जी हैं। बिन सतगुरू परमहंस जी की कृपा व सानिध्य के कभी भी कोई सहज सत मार्ग भक्ति पथ पर चल ही नहीं सकता। और नां ही कोई कभी बिन साहिब परमहंस जी की कृपा के साहिब सतपुरूष जी की महिमां को जान सकता है।

सतलोक में रहनी साहिब की, जानें संत निजधाम।
जो कोई आवे संत शरण में, जावे निजघर निजधाम।।

साहिब ''वे नाम परमहंस जी'' ने साहिब सतपुरूष जी की सुरति से भरपूर महिमां व गुणगान को अपनी निज अमृतमयी लेखनी से कलमबद्ध भी किया। इस दौरान उन्होंने सुरति और भक्ति से भरपूर एक भजन की पुस्तक ''साहिब जी के भजन'' भी कलमबद्ध की, जिसमें उनके द्वारा सुरति से ओत–प्रोत 223 भजनों में 'साहिब सतपुरूष जी' की महिमां का आलोकिक वर्णन किया गया है। इस पुस्तक उपरांत भी साहिब ''वे नाम परमहंस जी'' ने अनेकों और भी भजन रचे हैं जो अगामी भजन पुस्तिका में सम्मिलित होंगे। साहिब सतपुरूष जी की अमर सुरति से ओत–प्रोत एक महान ग्रंथ **'अमर सागर'** भी अपनी लेखनी से उन्होंने कलमबद्ध किया है। सत्त सुरति से भरपूर इस **'अमर सागर'** ग्रंथ में साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' ने 2850 दोहों सहित, निरंकार दायरे की भक्ति मुद्राओं और मुक्तियों के बारे में वर्णन, सुरति विरह प्रेम से लयबद्ध 86 महां काव्य, निरंकार के 21 लोकों का वर्णन, निरंकार का सूर्य रूपी दर्शन, प्राण–निरति का चित्र सहित उल्लेख, मृत्यु उपरांत आत्मां का सफ़र और निरंकार सत्ता से लेकर सहज सत्त मार्ग द्वारा मोक्ष तक के सफर का **'अमर सागर'** ग्रंथ के 'अमृत सार' खंड में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

वे नाम देत पुकार है, ले लो भाई मोक्ष दात रे।
साहिबन सुरति वासा जिस में, अमरपुर से आई रे।।

वे नाम कहें आदि अंत का, सृजनहारा परमपुरूष प्यारा।
वोहि आरम्भ वोहि मध्य, वोहि अंत उन्हीं से सब परिवारा।।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के सत्संगों में अमृतमयी वाणी द्वारा बरसाये गये अमृत वर्षा को उनके साधकों द्वारा बड़े श्रद्धा पूर्वक इस ''परमहंस सुरती महिमां'' ग्रंथ में कलमबद्ध किया गया है, ताकि आध्यात्मिक जिज्ञासुजन भी सत सुरती महिमां को जान कर साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के श्री चरणों में आकर मोक्ष के अधिकारी बनें।

साहिब सतपुरूष सतलोक सुरती महिमां से भरपूर साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' द्वारा कलमबद्ध किये जा रहे ग्रंथों की अगामी श्रृंखला :– ''गीता से मोक्ष की ओर'', ''आनंद–साग़र'', ''वे नाम परमहंस जी के सफ़रनामें'' व अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित होने वाली पुस्तिका **"Liberation of Soul"** हैं।

वे नाम के पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी के पास, सुरति सब्द सार नाम।।

77 – कर बद्ध प्रार्थना

हे प्यारे हंसाथियो, आओ हम सब मिल कर सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहंस जी'' की शरणी चलें और इस अंतहीन आवागमण चक्र से मुक्त होकर अपने इस दुर्लभ मानव जन्म के अवसर को व्यर्थ ना गंवायें और अनमोल जीवन को सार्थक करें। क्योंकि ये काल जाल के क्रूर बंधन से मुक्त होने का सुअवसर अत्यधिक कष्टों और वेदनाओं के बाद हमें मिलता है।

मोह माया के बंधन तोड़ो, 'मै' 'मेरी' के अहम को छोड़ो।
लाखों जन्म व्यर्थ गंवाए, अब तो सतगुरू संग नाता जोड़ो।।

सार सब्द विदेह सर्वोपरि, जब कोई पावे दात।
'वे नाम' कहें काल सूं छूटता, शेष अब रहे ना बात।।

'वे नाम' औढ़ी प्रेम चदरिया, हर थां प्रेम ही छाया।
हर किसी को प्रेम वो बांटें, अब कोई ना रहा पराया।।

बलिहारि जाऊँ सतगुरू अपने, जिन दीनी सार सुरति सतरंग।
जित देखूं प्रेम रंग छाया, सतपुरूष ही हैं प्रीत प्रेम का रंग।।

78 'वे नाम' सुरति धारा

सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संतों व सतगुरूओं ने अपने अपने काल में सहज भक्ति को ''सहज सत्त मार्ग / परा भक्ति / सत्त भक्ति व भृहंगा मत्त'' के नामों से संबोधित किया गया। सहज अवस्था अर्थात साहिब सतपुरूष जी की सुरति महिमां का गुणगान करने वाले सतगुरू परमहंस इस धरा पर सदा ईक्का दुक्का ही हुऐ हैं। सर्वदा ज्ञात रहे, मूलतः 'आत्म' तो सहज अवस्था का परित्याग करने से मन माया के वशिभूत गहन निंद्रा अवस्था में निज सुरति रूप को भूली हुई 'हंसा' का नाम है।

जगत की सारी की सारी भक्तियां, गुरूआजन, पंथ व धर्म अज्ञानता वश आत्म को और भी अधिक मन मोहनी माया जाल में उलझाये चले जा रहे हैं। हर मानव अपने धर्म व मत अनुसार अत्यधिक श्रद्धा, भक्ति व प्रयासों के उपरांत भी इस जन्म मरन के जंजाल से मुक्त नहीं हो पाता। इन सभी प्रकार की भक्तियों से संसारी जन आवागमण से कभी भी मुक्त नहीं हो सकते। हां, अधिकांशता धर्म व धर्म रहनुमा स्वर्ग, **Heaven**, जन्नत व सच/सत्त खण्ड की कामना अपनी अपनी भक्तियों में करते हैं। कुछ एक अन्जाने व अज्ञानता वश इन अल्प मुक्तियों को मोक्ष कह देते हैं, इतना कह और लिख देने भर से कोई भी जीव आवागमण से मुक्त नहीं हो पाता। इन उपरोक्त भक्तियों से स्वर्ग, सुन्न व महांसुन्न लोकों तक की मुक्तियां तो प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु पूर्ण मोक्ष नहीं मिलता। अपने अपने श्रेष्ठ कर्म फल प्रालब्ध को भौगने के उपरांत जीवात्मां स्वर्ग से पुनः मृत्यु लोक में जन्म ले लेती है।

पूर्ण मोक्ष तो सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाये बिना संभव ही नहीं। सहज सतमार्ग के सतगुरू परमहंस जी साहिब सतपुरूष जी की सुरति से ओत प्रोत होते हैं तथा सहज मार्ग के सतगुरू इस धरा पर सार सब्द विदेह दात को जग जीवों को देकर उन्हें निहाल कर देते हैं। इस विदेह दात ''सार सब्द'' में साहिब सतपुरूष जी का सुरति से वास होता है, इस विदेह दात को सुरति से सिमरते ही जीवात्म (मानव) की सुरति मन माया से मुक्त हो कर मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसित हो जाती है। जहां एक ओर जगत गुरू लाखों की संख्या में इस जग में सदा ही विराजमान होते हैं वहीं सहज मार्ग के सतगुरू परमहंस किसी एक काल में ईक्का दुक्का ही इस धरा पर होते हैं तथा वे साहिब सतपुरूष जी की सुरति ऊर्जा से ओत प्रोत होते हैं।

आज से लगभग पांच सौ पच्चास वर्षों से भी अधिक काल पूर्व साहिब कबीर जी इस धरा पर प्रथम सहज सतमार्ग के सतगुरू हुऐ। साहिब कबीर जी ने ''सार सब्द'' विदेह दात केवल एक बार साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से सुरति द्वारा ग्रहण की थी। साहिब सतपुरूष जी से सीधे ''सार सब्द'' ग्रहण करने वाले साहिब कबीर जी प्रथम परमहंस हुऐ हैं। साहिब कबीर जी के उपरांत सहज सतमार्ग के जितने भी संत हुऐ उन्होंने ये ''सार सब्द'' की दात अपने अपने सतगुरूओं से ही ग्रहण की तथा इसी दात को ही अपने अनुयायियों में बांटा। सहज सतमार्ग के प्रमुख संत सतगुरू साहिब रविदास जी, पल्टु साहिब जी, संत मीरांबाई जी, साहिब गरीबदास जी, साहिब ब्रह्मानंद जी, साहिब तुलसीदास हाथरस जी, साहिब दादु दयाल जी, साहिब धर्मदास जी, बाबा नानक जी व साहिब रामानंद जी ईत्यादि ने ये दात अपने अपने सतगुरूओं से ही ग्रहण की तथा साहिब कबीर जी को छोड़ कर केवल ''सार सब्द'' की दात दौ बार सीधे साहिब सतपुरूष जी से ग्रहण करने वाले एकमात्र संत सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी ही वर्तमान काल में इस धरा पर हैं। अधिकांष्तः सहज सतमार्ग के सतगुरूओं ने जीवन के अंतिम पड़ाव में आकर अपने अपने सतगुरूओं से ''सार सब्द'' विदेह दात को ग्रहण किया, जिस कारण ये सभी साहिब सतपुरूष जी महिमां का कुछ अधिक गुणगान नहीं कर पाये।

साहिब सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी इस धरा पर साहिब सतपुरूष जी से सुरति द्वारा दौ बार ''सार सब्द'' विदेह दात को ग्रहण करने वाले एक मात्र पूर्ण सतगुरू परमहंस हुऐ हैं। साहिब कबीर जी के उपरांत ''सार सब्द'' विदेह दात को सीधे साहिब सतपुरूष

जी से ग्रहण करने वाले एक मात्र पूर्ण संत भी साहिब 'वे नाम' परमहंस जी ही हैं। साहिब कबीर जी व वर्तमान काल के सतगुरू साहिब 'वे नाम' परमहंस जी केवल दौ मात्र ऐसे संपूर्ण संत सतगुरू हुऐ हैं जिन्होंने ''सार सब्द'' विदेह दात को साहिब सतपुरूष जी से सुरति द्वारा सीधे ग्रहण किया। बाकी सभी सहज मार्ग के संत सतगुरूओं ने ये दात कबीर साहिब जी से अथ्वा अपने अपने सतगुरूओं से ग्रहण की। जहां साहिब कबीर जी सहज सतमार्ग के प्रथम संत शिरोमणि हुऐ, वहीं वर्तमान काल में साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान करने वाले केवल एक मात्र संत शिरोमणि 'वे नाम' परमहंस जी ही हैं। सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी ने प्रथम बार ''सार सब्द'' की विदेह दात प्रातःकाल दिनांक 22.03.2012 को तथा दूसरी बार दिनांक 27.11.2014 को ग्रहण की । ''सार सब्द'' की दात सीधे साहिब सतपुरूष जी से ग्रहण करने के उपरांत उन्हीं के आदेश अनुसार उन्हीं द्वारा प्रदत ''सार सब्द'' की दीक्षा को बांटने व उन्हीं की महिमां का गुणगान करने के लिये सत्संग प्रवचनों का प्रारम्भ 9 मई 2012 से किया, जो आज भी निरंतर जारी है। साहिब सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी पिछले आठ वर्षों से निरंतर साहिब सतपुरूष जी की महिमां से भरपूर अमृतमयी प्रवचनों की वर्षा करते चले आ रहे हैं। उनका प्रत्येक प्रवचन हर बार नवीन और अलग होता है, कभी भी उन्होंने आज तक अपने प्रवचनों को दोहराया नहीं है अर्थात हर प्रवचन साहिब सतपुरूष जी की नवीनतम ऊर्जा व महिमां से भरपूर होता है।

साहिब कबीर जी तो सहज सत भक्ति मार्ग के आधार स्तम्भ हैं, उन्होंने साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान भरपूर गाया, जिससे अनेकों जन कालपुरूष काल निरंझन की मोहनी माया से मुक्त होकर पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हुऐ। इसी क्रम में साहिब कबीर जी ने अपने दोहों व लेखनी में साहिब सतपुरूष जी को 'हरि व भगवान' कह के भी सम्बोधित किया तथा बहुत से दोहों में सुरति के स्थान पर 'मन' शब्द का प्रयोग किया। सम्भवतः ये सब त्रुटियां साहिब कबीर जी द्वारा अपने प्रवचनों को स्वयं कलमबद्ध ना करने के कारण हुआ क्योंकि वह स्वयं केवल प्रवचनों में साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान ही करते थे तथा उनके अनुयाई ही इन प्रवचनों व दोहों को कलमबद्ध करते थे। कबीर साहिब जी की कलमबद्ध वाणी से सारा जगत भ्रम में उलझ कर रह गया तथा जगत वासी निरंकार भगवान व साहिब सतपुरूष जी की सत्ता का भेद जान ही ना सके तथा निरंकार व साहिब सतपुरूष जी के मन व सुरति के भेद को भी जान ही ना पाये और नां ही कबीर साहिब जी व साहिब सतपुरूष जी की महिमां को जान पाये। परन्तु जहां तक साहिब सतपुरूष जी की महिमां का साहिब कबीर जी की वाणी द्वारा गुणगान करने का उल्लेख है वो तो उन्होंने अपनी वाणी में भरपूर गाया। परन्तु वर्तमान काल में संत कबीर साहिब जी के उपरांत साहिब सतपुरूष जी की महिमां गाने वाले साहिब सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी ही केवल एकमात्र संत हैं जिन्होंने अल्प अवधि में ही अनेकों ग्रंथों की रचना कर डाली। इस 'वे नाम सुरति धारा' ग्रंथ के ईलावा अनेकों ग्रंथ प्रकाशित हुऐ जिनमें से 'अमर सागर', 'आनंद सागर', 'परमहंस सुरति महिमां' 'अल्प मुक्ति से मोक्ष की ओर' व अगामी आने वाले ग्रंथ 'सतपुरूष सुरति धारा', 'वे नाम जी के सफरनामें', सत्त सुरति के आलोकिक दृष्टांत भरे ग्रंथ कलमबद्ध हो रहे हैं।

वर्तमान काल तक साहिब सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी ने सर्व साधारण भाषा में लगभग 4100 से अधिक दोहों के ईलावा 300 से उपर भजन व अनेकों काव्यों की

साहिब सतपुरूष जी की सत सुरति महिमां से भरपूर रचना रच डाली। वर्तमान काल में सहज मार्ग के सर्वश्रेष्ठ संत सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी ने साहिबन सुरति से ओत प्रोत अपने सभी ग्रंथों को बड़ी सरल भाषा शैली से अपनी लेखनी में पिरोया व स्वयं इन्हें अपनी निगरानी में कलमबद्ध भी करवाया। जिस से जगत वासी किसी भी भ्रम में ना रहें तथा साहिब सतपुरूष जी की सत्ता को पूर्णतः व सुगमता से समझ सकें। साहिब 'वे नाम' परमहंस जी के ग्रंथों में वर्णित वाणी को पढ़ कर जगतवासी मन माया निरंकार सत्ता से परे साहिब सतपुरूष सत्ता को जानकर मोक्ष पथ की ओर अग्रसित होकर आवागमण से मुक्त हो पायें।

वर्तमान काल से पहले सहज सतमार्ग/पराभक्ति के जितने भी सतगुरू परमहंस हुऐ हैं वे सभी साहिब कबीर जी द्वारा रचित सुरति धारा का ही अनुसरन करते आये हैं, क्योंकि सहज सतमार्ग परा भक्ति के प्रथम संस्थापक परमहंस साहिब कबीर जी ही हुऐ। उनके उपरांत सहज सतमार्ग के सभी परमहंस सतगुरूओं ने उन्हीं के बताये हुऐ मार्ग का ही अनुसरन किया अर्थात 9 मई, 2012 से पूर्व काल तक सहज सतमार्ग में केवल एक मात्र संपूर्ण संत साहिब कबीर जी ही ऐसे सतगुरू हुऐ जिन्होंने साहिब सतपुरूष जी की महिमां का भरपूर गुणगान गाया हो। दिनांक 9 मई, 2012 के उपरांत वर्तमान काल के संपूर्ण संत सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी ने अत्यधिक सरलता, सहजता, स्पष्टता व सत सुरति से भरपूर वाणी में साहिब सतपुरूष जी का गुणगान गाया जो वर्तमान काल में भी निरंतर चलायेमान है। साहिब 'वे नाम' परमहंस जी की वाणी में साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गाया गया गुणगान इतना स्पष्ट, स्टीक और निर्मल है कि कोई भी जगत वासी अथ्वा सहज मार्ग का पथिक इस अमृतमयी वाणी को पढ़ कर दिग् भ्रमित नहीं हो सकता। साहिब 'वे नाम' परमहंस जी ने निरंकार सत्ता व साहिब सतपुरूष जी की सत्ता का गुणगान इतना स्पष्टता और सरलता से गाया कि जगत वासी दोनों सत्ताओं में भेद सरलता से जान पायें और वर्तमान काल अथ्वा आने वाले किसी भी काल में साहिब सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी द्वारा रचित ग्रंथों की वाणी व दोहों को पढ़ कर भ्रमित ना हों तथा निरंकार भक्ति व सहज सतमार्ग परा भक्ति का भेद बड़ी सरलता से समझ पायें।

इसमें कोई दौ राय नहीं कि 9 मई, 2012 से पूर्व काल तक सहज सतमार्ग भक्ति 'साहिब कबीर सुरति धारा' से जानी जाती थी परन्तु 9 मई, 2012 के उपरांत सहज सतमार्ग की सत्ता 'वे नाम सुरति धारा' से जानी जाती है तथा आने वाले काल में इसका प्रचार व प्रसार जगत जीवों के कल्याण हेतु तीव्रता से बड़ेगा।

सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी के श्री चरणों में

सभी गुरूमुखों और साधकों के श्रद्धा सुमन !

साहिब प्यारे हंसो :– साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी में ही मिलता है निजधाम, इस धरा पर एक मात्र सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' ही हैं सतपुरूष रूप निजधाम !

सतगुरू सतनाम जी–सतगुरू सतनाम जी–सतगुरू सत्तनाम जी

....

साहिब ''वे नाम परमहंस जी'' के श्री चरणों में सभी साधकों का शत शत प्रणाम !!!

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के अग़ामी आने वाले ग्रंथ **'सफरनामें', 'मुक्ति से मोक्ष की ओर', 'आनंद सागर'** और इसके साथ ही साथ अंग्रेज़ी भाषा के पाठकों व जिज्ञासुओं के लिए 'पराभक्ति पर आधारित', सहज सत भक्ति मार्ग की महिमां से भरपूर ग्रंथ अंग्रेज़ी भाषा में भी शीघ्र प्रकाशित होने जा रहे हैं। कलयुग के इस वर्तमान काल में बिना सतगुरू साहिब **''वे नाम परमहंस जी''** की शरणी आये पूर्ण मोक्ष संभव ही नहीं। इसलिये हे हंसाथियो साहिब सतपुरूष जी की सत सुरति से ओत प्रोत ''वे नाम परमहंस जी'' द्वारा रचित नवीन ग्रंथ ''अमर सागर'' को श्रद्धा पूर्वक पढ़ें व श्रवण करें।

सतगुरू सतनाम

सत्त साहिब जी सत्त साहिब जी सत्त साहिब जी